समाधितंत्र प्रवचन भाग-१

(श्री समाधितंत्र शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्री के १९७४-७५ के समाधिभाव प्रेरक अक्षरशः प्रवचन)

श्री महावीरस्वामी

श्री सीमंधारस्वामी

श्री समाधितंत्र

श्री पूज्यपाद आचार्य

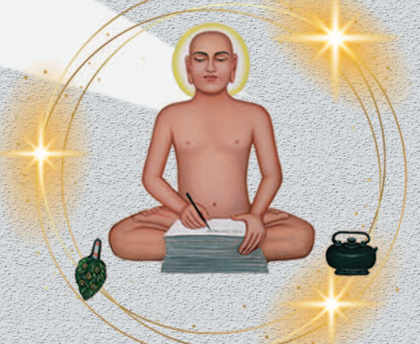

श्री प्रभाचंद्र आचार्य

पूज्य सदगुरुदेवश्री कानजीस्वामी

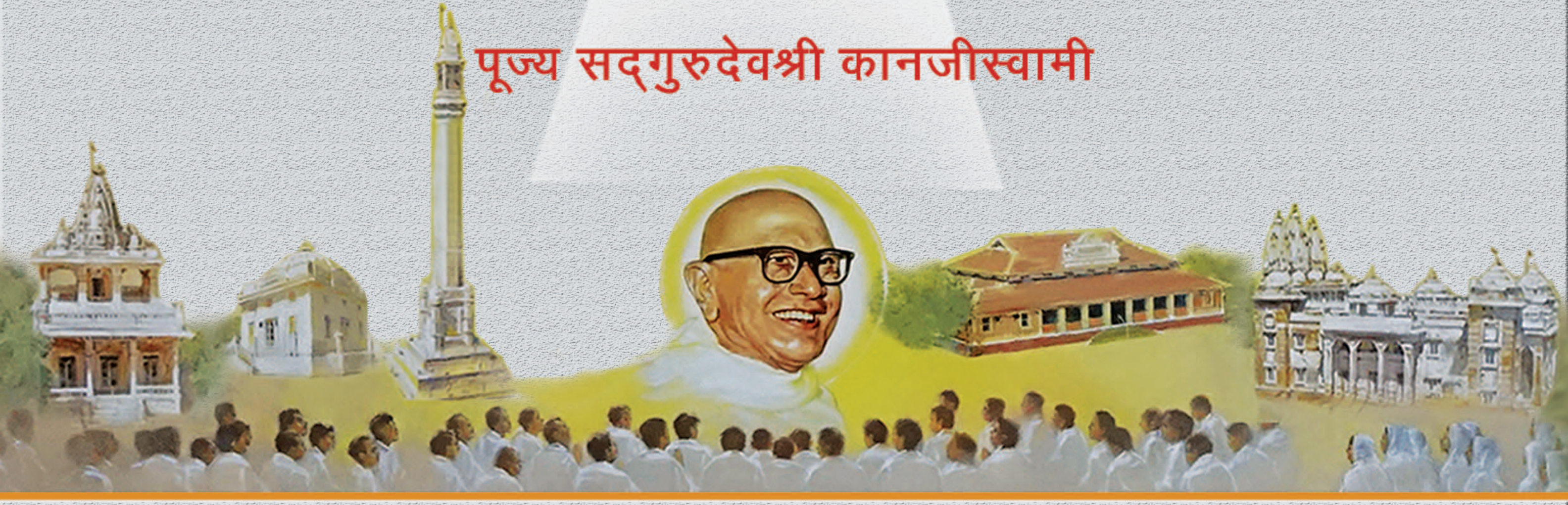

प्रकाशक :-श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ले, मुंबई

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

समाधितन्त्र प्रवचन

(भाग-1)

(**श्रीमद् देवनन्दी अपरनाम पूज्यपादस्वामी** विरचित **श्री समाधितन्त्र शास्त्र** पर **अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के शब्दशः प्रवचन)
(गाथा-1 से 7, प्रवचन-1 से 15)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

विक्रम संवत
2077

वीर संवत
2546

ई. सन
2020

—: प्रकाशन :—
अष्टाह्निका महापर्व
कार्तिक शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा
के पावन अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—
1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान, गौतम गणधर तत्पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करके भरत में आये हुए, श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं, यह जगत विदित है। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं। ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के भरतक्षेत्र पर महान उपकार हैं। उन्हीं आचार्यदेव की परम्परा में हुए श्रीमद् देवनन्दि अपरनाम पूज्यपादस्वामी द्वारा रचित ग्रन्थ समाधितन्त्र पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल प्रवचन 'समाधितन्त्र प्रवचन', भाग-1 पाठकवर्ग के हस्तकमल में प्रदान करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

वर्तमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में जो कहा जा रहा है, उसे प्रत्यक्ष झेलनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके अनन्य भक्त, कि जिनकी विद्यमानता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विदेहगमन के समय साक्षात् थी, ऐसे प्रियवर पूज्य कहान गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का क्या कहना! जो विषय वचनगोचर नहीं, विकल्पगोचर नहीं, उसे कथंचित् वक्तव्य करना वह कहान गुरुदेवश्री की समर्थ प्रचण्ड शक्ति के दर्शन कराते हैं, और भावि में ॐकार ध्वनि खिरने की सूचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रस्तुत प्रवचन अध्यात्म के अनेकविध रहस्यों को व्यक्त कर रहे हैं। आचार्य पूज्यपादस्वामी के हृदय में प्रवेश कर उनके भावों को स्पष्ट करने का सामर्थ्य प्रस्तुत प्रवचनों में व्यक्त होता है। अनन्त काल से मिथ्यात्वदशा में भ्रमण करता अज्ञानी जीव बहिरात्मदशा को नष्ट करके, अन्तरात्मपना प्रगट करके परमात्मदशा किस प्रकार प्राप्त करता है, उसका रोचक

विवेचन पूज्यपादस्वामी ने समाधितन्त्र में तो किया है परन्तु वर्तमान मुमुक्षु समाज को सादी और सरल भाषा में पूज्य गुरुदेवश्री ने स्पष्ट किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक प्रवचनों में भावभासनपूर्वक की समझ को अधिक महत्ता दी है। ऐसी शैली भी व्यक्त हो रही है। प्रत्येक प्रवचन भेदज्ञानपूर्ण है। पूज्य गुरुदेवश्री की सातिशय ज्ञाताधारा के दर्शन भी प्रत्येक प्रवचनों में हो रहे हैं। अखण्ड एकरूप स्वरूपाश्रित परिणतिपूर्वक समझाने का सामर्थ्य प्रवचनों में उभरकर बाहर आ रहा है। जिनके एक प्रवचन श्रवणमात्र से जिनके भव का अन्त आया, ऐसे पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानी का उल्लेख अनेक प्रवचनों में आता है। यहाँ इस बात का उल्लेख इसलिए किया गया है कि पूज्य गुरुदेवश्री की सातिशय देशना का सामर्थ्य तो महापवित्र है ही, परन्तु प्रवचन सम्बन्धित विकल्प के निमित्त से मुमुक्षु जीव के भव का अन्त आ सकता है वह इस बात का प्रमाण है। जिनके विभावअंश में इतना सामर्थ्य है तो उनकी पवित्र ज्ञानदशा के दर्शन से मुमुक्षुजीव का आत्मकल्याण न हो, यह बात अस्थानीय है। ऐसे सबके प्रिय पूज्य गुरुदेवश्री का जितना गुण संकीर्तन किया जाये, उतना कम ही है, इसलिए इस प्रसंग पर उनके चरणों में भक्तिभावपूर्वक शत-शत वन्दन हो, वन्दन हो!

पूज्य गुरुदेवश्री के आन्तरिक जीवन और भावितीर्थाधिनाथपने की प्रसिद्धि करनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री की अनन्य भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री को भी इस ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर भाववन्दन करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग में आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सुरक्षित रखा, तदर्थ उसके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाई (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया जा रहा है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का विशेष लाभ जनसामान्य ले कि जिससे यह वाणी शाश्वत् सुरक्षित बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप समाधितन्त्र ग्रन्थ पर हुए प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य गुजराती भाषा में पूजा इम्प्रेशन द्वारा किया गया है। जिसे जाँचने का कार्य श्री सुधीरभाई सूरत, और श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज को इन प्रवचनों का विशेष लाभ प्राप्त हो, इस उद्देश्य से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण और सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर और जवाबदारी पूर्ण होने से जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश अथवा अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से निवेदन करता है कि यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का कष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में उसे सुधार किया जा सके।

यह प्रवचन ग्रन्थ (www.vitragvani.com) तथा वीतरागीवाणी ऐप पर उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

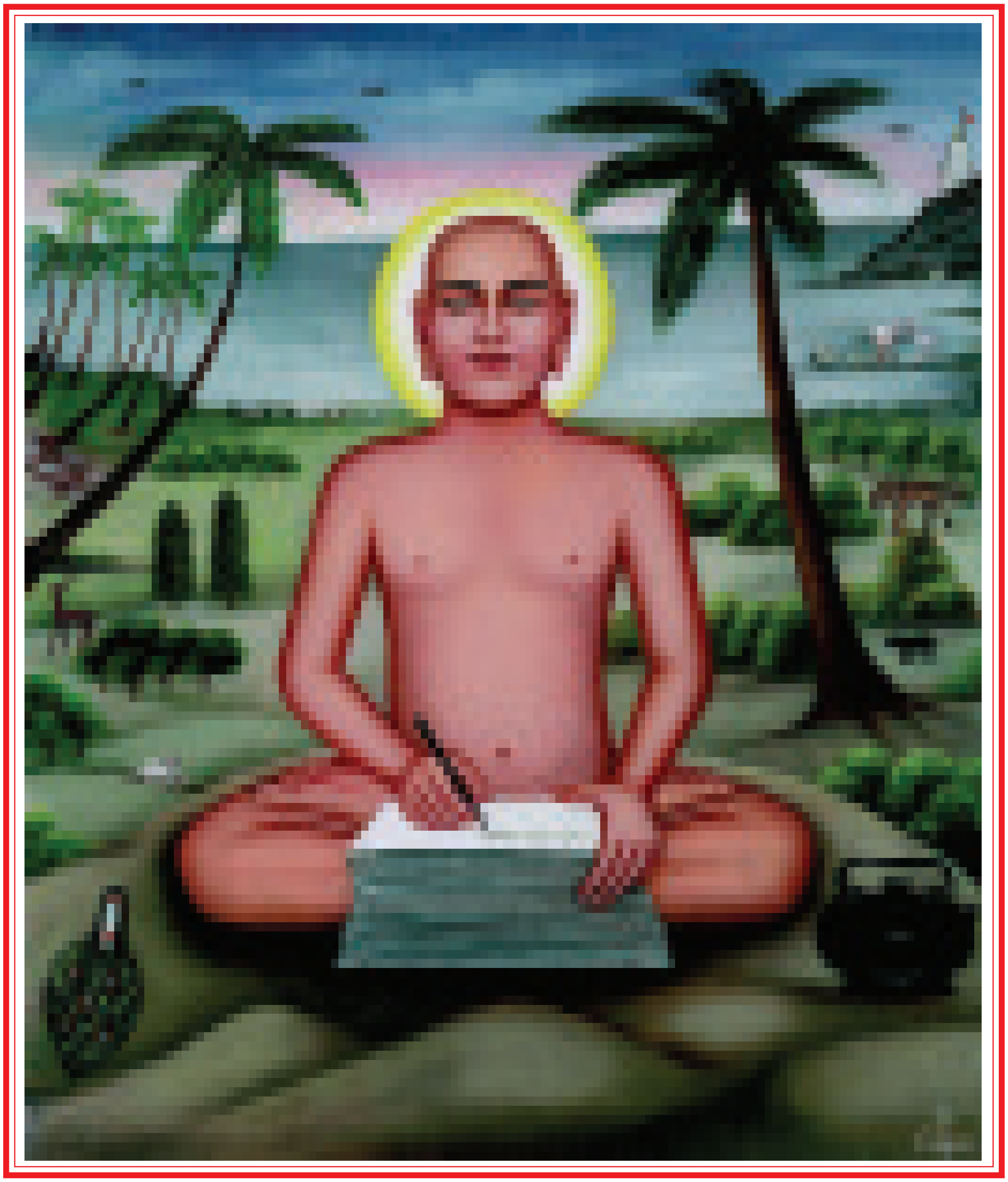

श्रीमद् देवनन्दी अपरनाम पूज्यपादस्वामी

प्रस्तावना

समाधितन्त्र ग्रन्थ के रचयिता श्रीमद् पूज्यपादस्वामी आचार्य, मूलसंघ अन्तर्गत नंदिसंघ के प्रधान आचार्य थे। वे सुप्रसिद्ध, बहुप्रतिभाशाली, प्रखर तार्किक विद्वान और महान तपस्वी थे। श्रवणबेलगोला के शिलालेखानुसार पूज्यपादस्वामी श्री समन्तभद्राचार्य के पश्चात् हुए हैं और वे उनके मतानुयायी थे। शिलालेख और उपलब्ध जैन साहितत्य से विद्वानों ने निर्णय किया है कि यह सुप्रसिद्ध आचार्य ईस्वी सम्वत् पाँचवीं शताब्दी में और विक्रम की छठवी शताब्दी में हो गये हैं।

आप कर्नाटक देश के निवासी थे। कन्नडा भाषा में लिखे हुए 'पूज्यपादचरिते' तथा 'राजा वलीकथे' नामक ग्रन्थों में आपके पिता का नाम 'माधवभट्ट' और माता का नाम 'श्रीदेवी' दिया है और लिखा है कि वे ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। उपलब्ध शिलालेखों से यह बात प्रसिद्ध है कि आप देवनन्दी, जिनेन्द्रबुद्धि और पूज्यपादस्वामी नाम से प्रसिद्ध हैं। देवनन्दी—यह उनके गुरु ने दिया हुआ दीक्षा नाम है, बुद्धि की प्रकर्षता—विपुलता के कारण उन्हें बाद में जिनेन्द्रबुद्धि नाम प्राप्त किया और उनके चरणयुगल की देवताओं ने पूजा की इसलिए बुधजनों ने उन्हें पूज्यपाद नाम से विभूषित किया।

उपलब्ध शिलालेखों से उनके जीवन काल दौरान घटित अनेक अद्भुत घटनाये द्रव्यव्य हैं। श्री पूज्यपाद ने धर्मराज्य का उद्धार किया, देवों के अधिपतियों ने उनका पादपूजन किया, इसलिए वे पूज्यपाद कहलाये। उनके द्वारा उद्धार प्राप्त शास्त्र आज भी उनके विद्याविशारद गुणों का कीर्तिगान करते हैं। उन्होंने कामदेव को जीता था, इसलिए कृतकृत्यभावधारी उच्च कोटि के योगियों ने उन्हें जिनेन्द्रबुद्धि नाम से वर्णन किया है।

और वे औषधऋद्धि के धारक थे। विदेहक्षेत्रस्थित जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से उनका गात्र पवित्र हुआ था। उनके पादोदक (चरण-जल) के स्पर्श से एक बार लोहा भी सोना हो गया था। तदुपरान्त घोर तपश्चर्यादि से उनके आँख का तेज नष्ट हुआ था परन्तु 'शान्त्यष्टक' के एकाग्रतापूर्वक पाठ से नेत्र-तेज पुनः प्राप्त हुआ था। महान योगियों के लिये ऐसी घटनायें असम्भवित नहीं हैं।

आपश्री ने अनेक ग्रन्थों की रचना भी की है। जैसे कि 'जैनेन्द्र व्याकरण', 'सर्वार्थसिद्धि', 'जैनाभिषेक', 'छन्दशास्त्र', 'समाधितन्त्र-समाधिशतक', 'इष्टोपदेश'। इनमें इष्टोपदेश तथा समाधितन्त्र

आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं, जो मुमुक्षुजीवों को आत्मकल्याण होने में महानिमित्तभूत है। समाधितन्त्र ग्रन्थ के अन्त में दी गयी प्रशस्ति अनुसार ग्रन्थ के टीकाकार श्री प्रभाचन्द्र (प्रभेन्दु) इस ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार हैं। कितने ही विद्वानों के मतानुसार वे श्री समन्तभद्राचार्य द्वारा रचित रत्नकरण्ड श्रावकाचार के भी संस्कृत टीकाकार हैं।

प्रस्तुत प्रवचनों में समाधितन्त्र ग्रन्थ के मूल श्लोक, हिन्दी अन्वयार्थ, भावार्थ आदि तथा श्री प्रभाचन्द्र विनिर्मित संस्कृत टीका के गुजराती अनुवाद के हिन्दी अनुवाद सहित पाठक वर्ग की सुविधा के लिये लिये गये हैं।

अन्ततः पूज्य गुरुदेवश्री के सातिशय दिव्य प्रवचनों का भावपूर्वक स्वाध्याय करके पाठकवर्ग आत्मकल्याण को साधे, ऐसी भावनासहित विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध–विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्यर्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का**

श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित

सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	श्लोक	पृष्ठ नम्बर
01	11.12.1974	1	01
02	12.12.1974	1	23
03	13.12.1974	1	37
04	14.12.1974	2	50
05	15.12.1974	2	67
06	16.12.1974	2, 3	82
07	17.12.1974	3	100
08	18.12.1974	3, 4	113
09	19.12.1974	4	133
10	20.12.1974	4, 5	150
11	21.12.1974	5	170
12	22.12.1974	5, 6	185
13	23.12.1974	6	202
14	24.12.1974	6, 7	216
15	25.12.1974	7	232

ॐ

श्री परमात्मने नमः

समाधितन्त्र प्रवचन

(भाग - १)

(श्रीमद् देवनन्दि अपरनाम पूज्यपादस्वामी द्वारा रचित समाधितन्त्र ग्रन्थ पर अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः प्रवचन)

श्री प्रभाचन्द्र विनिर्मित संस्कृत टीका

(मङ्गलाचरण)

सिद्धं जिनेन्द्रममलाऽप्रतिमप्रबोधम्
निर्वाणमार्गममलं विबुधेन्द्रवन्द्यम्।
संसारसागरसमुत्तरणप्रपोतं वक्ष्ये
समाधिशतकं प्रणिपत्य वीरम्॥ १॥

श्लोक - १

श्रीपूज्यपादस्वामी मुमुक्षुणां मोक्षोपायं मोक्षस्वरूपं चोपदर्शयितुकामो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फल-मभिलषन्निष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह -

येनात्माऽबुद्ध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्त बोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः॥ १॥

अत्र पूर्वार्द्धेन मोक्षोपाय उत्तरार्द्धेन च मोक्षस्वरूप-मुपदर्शितम्। सिद्धात्मने-सिद्धपरमेष्ठिने सिद्धः सकलकर्म-विप्रमुक्तः स चासावात्मा च तस्मै नमः। येन किं कृतं? अबुद्धयत ज्ञातः। कोऽसौ? आत्मा कथं? आत्मैव। अयमर्थः येन सिद्धात्मनः-

ऽत्रात्मैवाध्यात्मत्वेनाबुद्धयत न शरीरादिकं कर्मापादितसुरनरनारकतिर्यगादिजीवपर्याया-दिकं वा। तथा परत्वेनैव चापरं अपरं च शरीरादिकं कर्मजनितमनुष्यादिजीव- पर्यायादिकं वा परत्वेनैवात्मनोभेदनैवाबुद्धयत्। तस्मै कथंभूताय? अक्षयानन्तबोधाय अक्षयोऽ-विनश्वरोऽनन्तो देशकालानवच्छिन्नसमस्तार्थपरिच्छेदको वा बोधो यस्य तस्मै। एवंविधबोधस्य चानन्तदर्शनसुखवीर्यैरविनाभावित्वसामर्थ्यादनंतचतुष्टयरूपायेति गम्यते। ननु चेष्टदेवता-विशेषस्य पञ्च-परमेष्ठिरूपत्वात्तदत्र सिद्धात्मन एव कस्माद् ग्रन्थकृता नमस्कारः कृत इति चेत् ग्रन्थस्य कर्तुर्व्याख्यातुः श्रोतुरनुष्ठातुश्च सिद्धस्वरूप -प्राप्त्यर्थत्वात्। यो हि यत्प्राप्त्यर्थी स तं नमस्करोति यथा धनुर्वेदप्राप्त्यर्थी धनुर्वेदविदं नमस्करोति। सिद्धस्वरूपप्राप्त्यर्थी च समाधिशतकशास्त्रस्य कर्ता व्याख्याता श्रोता तदर्थानुष्ठाता चात्मविशेषस्तस्मात्सिद्धात्मानं नमस्करोतीति। सिद्धशब्देनैव चार्हदादीनामपि ग्रहणम्। तेषामपि देशतः सिद्धस्वरूपो-पेतत्वात्॥१॥

(टीकाकार का मङ्गलाचरण)

सकल विभाव अभावकर, किया आत्मकल्यान।
परमानन्द-सुबोधमय, नमूँ सिद्ध भगवान॥ १॥
आत्मसिद्धि के मार्ग का, जिसमें सुभग विधान।
उस समाधियुत तन्त्र का, करूँ सुगम व्याख्यान॥ २॥

अर्थ - सिद्ध, अनुपम ज्ञानवान (अनन्त ज्ञानी), निर्वाणमार्गरूप निर्मल (वीतराग) देवेन्द्रों से वन्दनीय तथा संसार सागर को पार करने के लिये उत्कृष्ट नावरूप - ऐसे वीर जिनेन्द्र भगवान को प्रणिपात करके मैं (श्री प्रभाचन्द्र) समाधिशतक कहूँगा।

श्री पूज्यपादस्वामी (इस समाधितन्त्र के रचयिता) मुमुक्षुओं के लिये मोक्ष का उपाय और मोक्ष का स्वरूप बतलाने की कामना से तथा निर्विघ्न शास्त्र की परिसमाप्ति आदिरूप फल की अभिलाषा से, इष्टदेवता विशेष को नमस्कार करके कहते हैं —

नमूँ सिद्ध परमात्म को, अक्षय बोध स्वरूप।
जिन ने आत्मा आत्ममय, पर जाना पररूप॥ १॥

अन्वयार्थ - (येन) जिसके द्वारा (आत्मा) आत्मा, (आत्मा एव) आत्मारूप

से ही (अबुद्धयत) जाना गया है (च) और (अपरं) अन्य को-कर्मजनित मनुष्यादिपर्यायरूप पुद्गल को (परत्वेन एव) पररूप से ही (अबुद्धयत) जाना गया है, (तस्मै) उस (अक्षयानन्तबोधाय) अविनाशी अनन्तज्ञानस्वरूप (सिद्धात्मने) सिद्धात्मा को (नमः) नमस्कार हो।

टीका - यहाँ पूर्वार्ध से मोक्ष का उपाय और उत्तरार्ध से मोक्ष का स्वरूप दर्शाया गया है।

सिद्धात्मा को, अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी को-सिद्ध, अर्थात् सर्व कर्मों से सम्पूर्णपने (अत्यन्त) मुक्त — ऐसे आत्मा को नमस्कार हो।

जिन्होंने क्या किया ? जाना। किसको ? आत्मा को। किस प्रकार (जाना) ? आत्मारूप से ही। तात्पर्य यह है कि जिन सिद्धात्माओं ने यहाँ आत्मा को, आत्मारूप ही, अर्थात् अध्यात्मरूप से ही जाना, उसे शारीरिक या कर्मोपादित सुर-नर-नारक-तिर्यंचादि जीव पर्यायादिरूप नहीं जाना तथा (जिन्होंने) अन्य को, अर्थात् शरीरादिक व कर्मजनित मनुष्यादिक जीव पर्यायों को परोक्षरूप से, अर्थात् आत्मा से भिन्नरूप ही जाना।

कैसे उन्हें (नमस्कार) ? अक्षय-अनन्त बोधवाले — अक्षय, अर्थात् अविनश्वर और अनन्तर, अर्थात् देशकाल से अनविछिन्न — ऐसे समस्त पदार्थों के परिच्छेदक, अर्थात् ज्ञानवाले; उनको (नमस्कार) — इस प्रकार के ज्ञान, अनन्त दर्शन, सुख, वीर्य के साथ अविनाभावीपने की सामर्थ्य के कारण, वे अनन्त चतुष्टयरूप हैं — ऐसा बोध होता है। शंका - इष्टदेवता विशेष, पञ्च परमेष्ठी होने पर भी, यहाँ ग्रन्थकर्ता ने सिद्धात्मा को ही क्यों नमस्कार किया ?

समाधान - ग्रन्थकर्ता, व्याख्याता, श्रोता और अनुष्ठाताओं को सिद्धस्वरूप की प्राप्ति का प्रयोजन होने से, (उनने वैसा किया है।) जो जिसकी प्राप्ति का अर्थी होता है, वह उसे नमस्कार करता है; जैसे, धनुर्विद्या प्राप्ति का अर्थी, धनुर्वेदी को नमस्कार करता है, वैसे ही। इस कारण सिद्धस्वरूप की प्राप्ति के अर्थी, समाधिशतक शास्त्र के कर्ता, व्याख्याता, श्रोता और उसके अर्थ के अनुष्ठाता आत्मा विशेष — (ये सभी) सिद्धात्मा को नमस्कार करते हैं।

भावार्थ - ग्रन्थकार ने श्लोक के पूर्वार्ध में स्व-पर का भेदविज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है—ऐसा सूचित किया है और उत्तरार्ध में फलस्वरूप ज्ञान और आनन्दरूप ऐसी सिद्धदशा ही मोक्षस्वरूप है—ऐसा दर्शाया है, अर्थात् इस श्लोक में मोक्ष का उपाय और मोक्ष का स्वरूप बतलाया है।

जिनने आत्मा को आत्मारूप से ही यथार्थ जाना है; शरीरादि और सुर-नर नारकादि पर्यायपने नहीं जाना है और पर को परपने जाना है, अर्थात् शरीरादि और नर-नारकादि पर्याय को आत्मा से भिन्न जाना है—ऐसे अविनाशी अनन्त ज्ञानस्वरूप सिद्धात्मा को यहाँ नमस्कार किया है।

विशेष स्पष्टीकरण -

आत्मा, आत्मारूप से है और शरीरादि परपदार्थोंरूप नहीं तथा शरीरादि परपदार्थ, पररूप से हैं और आत्मारूप से नहीं—ऐसे निर्णयपूर्वक स्व-पर का भेदविज्ञान, सिद्धपद की प्राप्ति का-मोक्षप्राप्ति का उपाय है।

श्री समयसार, गाथा २ की टीका में भी लिखा है—'सर्वपदार्थों के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ - ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति उदय पाती है।'

इस प्रकार भेदविज्ञान ज्योति ही केवलज्ञान प्रगट करने का साधन / उपाय है।

स्व-पर का—जीव-अजीव का भेदविज्ञान - प्रथम तो दुःख दूर करने के लिये स्व-पर का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। यदि स्व-पर का ज्ञान न हो तो अपने को पहिचाने बिना, अपना दुःख कैसे दूर करे ?

अथवा स्व-पर को एक जानकर, अपना दुःख दूर करने के लिये पर का उपचार करे तो उससे अपना दुःख कैसे दूर हो ? अथवा अपने से भिन्न ऐसे पर में, यह जीव अहंकार-ममकार करे तो उससे दुःख ही होता है; अतः स्व-पर का ज्ञान होने पर दुःख दूर होता है।

अब, स्व-पर का ज्ञान, जीव-अजीव का ज्ञान होने पर ही होता है, क्योंकि स्वयं जीव है तथा शरीरादिक अजीव हैं। यदि लक्षणादिक द्वारा जीव-अजीव की

पहिचान हो तो ही स्व-पर का भिन्नपना भासित हो; अतः जीव-अजीव को जानना चाहिए। *(मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ-७८)*

भेदविज्ञान की आवश्यकता - सर्व दुःखों का मूलकारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र है। इन सर्व दुःखों का अभाव करने के लिये इसे (जीव को) दो प्रकार का भेदविज्ञान कराया जाता है।

पहले प्रकार का भेदविज्ञान - जीव, अपने गुणों और पर्यायों से एक है, अभिन्न है तथा परद्रव्यों, उनके गुणों और पर्यायों से अत्यन्त भिन्न है, अर्थात् जीव स्वद्रव्य से, स्वक्षेत्र से, स्वकाल से और स्वभाव से, परद्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अत्यन्त भिन्न है; अतः इस अपेक्षा से परद्रव्य, उनके गुण तथा उनकी पर्यायों के साथ का सम्बन्ध, मात्र व्यवहारनय से संयोगरूप अथवा निमित्तरूप है — ऐसा ज्ञान कराया जाता है।

इस दृष्टि से परद्रव्यों के साथ का सम्बन्ध, असद्भूत-असत्य होने से, उस सम्बन्धी ज्ञान करानेवाले नय को व्यवहारनय कहा जाता है और जीव के द्रव्य, गुण, पर्याय अपने होने से सद्भूत-सत्य होने से उस सम्बन्धी का ज्ञान करानेवाले नय को निश्चयनय कहा जाता है।

*दूसरे प्रकार का भेदविज्ञान - किन्तु पहले प्रकार के भेदज्ञान से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं हो जाता। अनादि से जीव की पर्याय, अशुद्ध है। उसे अपने में होती होने की अपेक्षा से 'निश्चयनय' का विषय कहते हैं, तथापि वह पर के आश्रय से होती होने की अपेक्षा से, उसे व्यवहारनय का विषय भी कहा जाता है तथा शुद्धपर्यायें भी जीव का त्रिकालीस्वरूप नहीं हैं और उनके आश्रय से व गुणभेद के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होते हैं; इसलिए उनका आश्रय छुड़ाने की अपेक्षा से उन्हें भी व्यवहार कहा जाता है और जीवद्रव्य का त्रैकालिक शुद्धस्वरूप जो कि ध्रुव है, उसे निश्चय कहा जाता है क्योंकि उसके आश्रय से ही धर्म प्रारम्भ, उसका टिकना, उसकी वृद्धि और पूर्णता होती है।**

---

*(आधार :- श्री समयसार श्रीमद् राजचन्द ग्रन्थमाला, श्री जयसेनाचार्य कृत टीका, गाथा ५७, गाथा १०२, गाथा १११ से ११२ गाथा १३७, १३८; गुजराती द्रव्यसंग्रह पृष्ठ ८-९)

सिद्धात्मा को नमस्कार किसलिये ? — 'सिद्ध भगवन्त, सिद्धपने के कारण, साध्य जो आत्मा, उसके प्रतिच्छन्द (प्रतिबिम्ब) के स्थान पर हैं, जिनके स्वरूप का संसारी भव्यजीव चिन्तवन करके, उन समान अपने स्वरूप को ध्याकर, उनके जैसे हो जाते हैं......।' *(श्री समयसार, गाथा १ की टीका)*

'संसारी को शुद्ध आत्मा, साध्य है और सिद्ध, साक्षात् शुद्धात्मा हैं; इस कारण उन्हें नमस्कार करना उचित है।'

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर श्री टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक के पहले अध्याय में सिद्धभगवान का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि —

'.....जिनके ध्यान द्वारा भव्य जीवों को स्वद्रव्य-परद्रव्य का, औपाधिकभाव तथा स्वाभाविकभावों का विज्ञान होता है; जिसके द्वारा स्वयं को सिद्धसमान होने का साधन होता है; अतः साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप, उसको दर्शाने के लिये, जो प्रतिबिम्ब के समान है तथा जो कृतकृत्य हुए हैं, इस कारण इसी प्रकार अनन्त कालपर्यंत रहते हैं — ऐसी निष्पन्नता को प्राप्त श्रीसिद्धभगवान को हमारा नमस्कार हो----।'

प्रश्न - पञ्च परमेष्ठी में पहले अरहन्तदेव हैं, तो उनके बदले यहाँ सिद्धभगवान को प्रथम नमस्कार क्यों किया ?

उत्तर - सिद्धदशा, आत्मा का परमध्येय है, वही आत्मा को इष्ट है। ग्रन्थकर्ता, व्याख्याता, श्रोता और अनुष्ठाता को सिद्धस्वरूप प्राप्त करने की भावना है; इस कारण सिद्धभगवान को नमस्कार करके ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ का प्रारम्भ किया है। जिसे जिस गुण की प्राप्ति की भावना होती है, वह उस गुणधारी का बहुमान करके, उसको नमस्कार करता है—यह स्वाभाविक है। जैसे, धनुर्विद्या की प्राप्ति का अभिलाषी पुरुष, धनुर्विद्या के ज्ञाता का बहुमान करता है; वैसे ही सिद्धपद की प्राप्ति की भावनावाला जीव, सिद्धपद को प्राप्त सिद्धभगवान को नमस्कार करके, शुद्धात्मा का आदर करता है।

तथा यह अध्यात्मशास्त्र है, इस कारण इसमें प्रथम सिद्धभगवान को नमस्कार करना उचित ही है। *(द्रव्यसंग्रह, गाथा १ की टीका)*

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने भी समयसार का प्रारम्भ करते हुए प्रथम 'वंदितु सव्व सिद्धे' कहकर सर्व सिद्धों को नमस्कार किया है।

अरहन्तादिक को एकदेश सिद्धपना प्रगट हुआ है; अतः सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करने से उसमें पञ्च परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार हो जाता है।

इस कारण शास्त्रकर्ता ने मङ्गलाचरण में प्रथम सिद्धभगवान को नमस्कार किया है॥१॥

प्रवचन नं. १, कार्तिक कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक ११-१२-१९७४, श्लोक-१

यह एक समाधिशतक अथवा समाधितन्त्र शास्त्र है। जिसमें आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की समाधि कैसे प्रगट हो और उसके फलस्वरूप मोक्ष कैसे हो, उसकी इसमें व्याख्या है। समाधि शब्द आता है। लोग्गस में नहीं आता? 'समाहिवरमुत्तमं दितु' वह समाधि सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप है, उसका अन्दर में ज्ञान में वेदन में राग और पुण्य-पाप के वेदन के विकल्प से भिन्न पड़कर, स्वरूप शुद्ध चैतन्य सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो वस्तु का स्वरूप आत्मा का कहा, वैसा अन्तर में जानकर अन्दर में स्थिर हो, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है और इसका नाम समाधितन्त्र है। आहाहा! गजब बात!

यह समाधितन्त्र। पूज्यपादस्वामी हुए हैं। लगभग ५००-६०० वर्ष (हुए)। विक्रम संवत्। दिगम्बर मुनि थे, सन्त थे। उन्होंने इस जगत के कल्याण के लिये यह एक समाधिशतक बनाया है। इसकी टीका करनेवाले प्रभाचन्द्र हैं। उन्होंने इसकी टीका की है। उसका मंगलाचरण का पहला श्लोक है। समाधि का अर्थ यह बाबा चढ़ा देते हैं समाधि, वह समाधि यह नहीं है। लोग्गस में नहीं आता? 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' परन्तु इसे अर्थ की खबर नहीं होती (कि) समाधि क्या कहलाती है। पहाड़े बोलते जाते हैं। पोपटभाई!

मुमुक्षु : हमने पहाड़े ही बोले थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहाड़े बोले थे? आहाहा!

आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। वह तो जाननेवाला-देखनेवाला उसका स्वभाव है। सवेरे जो आया था न कि भाई! प्रत्येक वस्तु की समय की जिस-तिस काल की पर्याय उस काल में उत्पन्न होती है, उस काल में पूर्व की पर्याय का व्यय होता है और ध्रुव अर्थात् वस्तु कायम रहती है। उसे जाननेवाला जो है आत्मा... आहाहा! होवे, उसे जाने; व्यय हो, उसे जाने; ध्रुव रहे, उसे जाने। आहाहा! ऐसा उसके ज्ञान का स्वभाव है। अनन्त काल में सम्यग्दर्शन क्या है, इसने उसे जाना नहीं, देखा नहीं, प्रगट नहीं किया। समझ में आया? इसके बिना करना... करना... करना... कुछ व्रत करना और कुछ तप करना और कुछ तपस्या करना, यह सब विकल्प है-राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ न करना, वह तो अशुभभाव है, उसकी अपेक्षा शुभभाव करे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव है, वह विकार है-दुःख है।

यहाँ तो शुभभाव को होने के काल में ज्ञान उसे जाने, ऐसी पर्याय भी स्वतन्त्र उत्पन्न होती है। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। जगत को मिला नहीं। जैन के नाम से अजैन परोसा है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि समाधि अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अर्थात् कि ज्ञायक चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा को दृष्टि में लेकर उसकी अनुभव करके प्रतीति करना और उस स्वरूप में स्थिर होना, वह चारित्र है। यह तीन होकर समाधि कहने में आता है। बाबा चढ़ा दे समाधि, वह यह बात नहीं है। आहाहा!

आत्मा चैतन्यघन जो आनन्द का नाथ है, उस अनाकुल आनन्द और शान्ति का स्वभाव उसका-आत्मा का है। उसे पर्याय में-उसकी दशा में.... वह वस्तु ऐसी ध्रुव है, उसकी दशा में उसका वेदन करना। आहाहा! मैं ज्ञान ही हूँ, आनन्द हूँ। यह क्रियाकाण्ड के जो विकल्प उठते हैं, वह भी मैं नहीं। आहाहा! ऐसी आत्म चीज़ के अन्दर सहजानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, के सन्मुख की दृष्टि, उसके सन्मुख का ज्ञान और उसके सन्मुख की स्थिरता (होना), उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहते हैं, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। समझ में आया?

आचार्य तो कहते हैं कि मोक्ष के अभिलाषी जीव के लिये मैं यह एक मोक्ष का

मार्ग समाधि कहूँगा। जो अनन्त काल में इसने एक समयमात्र ही नहीं की। जो किया इसने पुण्य और पाप के विकल्प के दया, दान, व्रत, भक्ति, (शुभ) काम, क्रोधादि का भाव, वह अशुभ। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का भाव वह शुभ। दोनों विकल्प है, दोनों राग है। आहाहा! दोनों असमाधि है। उसे इसने अनन्त बार किया और दु:खी होकर चार गति में भटकता है। परन्तु यह प्रभु स्वयं ही मूल स्वभाव इसका है, ज्ञान और आनन्द और शान्त अकषाय स्वभाव है, उसके अन्तर में जाकर स्थिर होना। स्थितप्रज्ञ। आहाहा! यह ज्ञानस्वभाव चैतन्य वस्तु में दृष्टि करके स्थिर होना, उसमें आनन्द की दशा का अनुभव हो, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहते हैं। उसे यहाँ समाधि कहते हैं। समझ में आया?

'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'। हे सिद्ध भगवन्त! देते कुछ नहीं परमात्मा किसी को। परन्तु इसे अपनी प्रार्थना में 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' मेरी आनन्द-शान्ति, मेरे स्वरूप में स्थिर होना, ऐसी जो समाधि उसका वरदान हे प्रभु! मुझे दो। आहाहा! यह तो एक भक्ति में प्रार्थना है। वे कुछ देते नहीं। परमेश्वर के पास इसकी मुक्ति नहीं कि परमेश्वर इसे दे। हैं? तीर्थंकर सर्वज्ञदेव परमात्मा के पास तो उनकी समाधि और शान्ति उनके पास है। वह कहीं दूसरे को देते नहीं, परन्तु विनयवन्त ऐसी एक प्रार्थना में भाव ऐसा आवे। हे प्रभु! मेरा आनन्दस्वभाव आपने जो वर्णन किया और कहा, वह मुझे समाधि दो। आहाहा! मुझे शान्ति दो, शान्ति। पुण्य-पाप के राग बिना की दशा मुझे प्राप्त होओ। ऐसा कहते हुए प्रभु को कहते हैं कि, मुझे दो। वे देते नहीं। ईश्वर कोई ऐसा नहीं कि तुझे कुछ दे देवे। समझ में आया? आहाहा!

यह स्वयं ही ईश्वर है। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ तीर्थंकर ने देखा ऐसा। सत् अर्थात् शाश्वत् कायम और जिसका ज्ञान और आनन्द, शान्ति, जिसका स्वभाव है, उसका वह स्वरूप है। शान्ति और आनन्द की वह आत्मा खान है। आहाहा! इस खान में नजर देने से, अन्यत्र से नजर उठाकर जहाँ पूर्ण आनन्द पड़ा है, प्रभु आत्मा में, भगवान ने प्रगट किया, वह अन्दर था, उसमें से प्रगट किया.... आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अन्तर में आना, उसे यहाँ समाधि और उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। चन्दुभाई! ऐसी बात है। आहाहा! जिसने अनन्त काल में एक समयमात्र भी अपनी

जाति को जाना नहीं, जाति में भात पाड़ी नहीं, जाति क्या इसकी चीज़ है प्रभु आत्मा, उसे इसने पहिचाना नहीं। उसे इसके विश्वास में इसने लिया नहीं तो उसमें स्थिरता तो कहाँ से हो? ऐसा वस्तु का स्वरूप है। यह कहते हैं, देखो!

मूल श्लोक और संस्कृत टीका का गुजराती अनुवाद। मंगलाचरण करते हैं।

सिद्धं जिनेन्द्रममलाऽप्रतिमप्रबोधम्
निर्वाणमार्गममलं विबुधेन्द्रवन्द्यम्।
संसारसागरसमुत्तरणप्रपोतं वक्ष्ये
समाधिशतकं प्रणिपत्य वीरम्॥ १॥

वीर परमात्मा तीर्थंकरदेव पूर्ण आनन्द को प्राप्त हुए प्रभु, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ, कहते हैं। वे **सिद्ध,....** हुए वीर। अपनी दशा पूर्ण थी, उसे परमात्मा ने प्रगट किया। **अनुपम ज्ञानवान्,....** वीर परमात्मा अनुपम ज्ञानवान है। जिनके ज्ञान को कोई उपमा नहीं। ओहो! सर्वज्ञ केवलज्ञानी अर्थात्? आहाहा! जिनकी एक समय की ज्ञान की दशा में तीन काल-तीन लोक को जाननेरूप ज्ञान की पर्याय परिणमे। आहाहा! ऐसे अनुपम ज्ञान के धारक परमात्मा को मंगलाचरण में वन्दन करता हूँ। समझ में आया?

(अनन्तज्ञानी).... अनुपम ज्ञान का अर्थ किया है। जिनकी ज्ञान की पर्याय— तीर्थंकरदेव की केवलज्ञानी की अनुपम ज्ञानपर्याय! उसे उपमा क्या देना! ओहोहो! णमो अरिहन्ताणं ऐसे जिसने राग और द्वेष और अज्ञानरूपी अरि का नाश किया और जिसने केवलज्ञान और आनन्द जिसने प्रगट किया। आहाहा! ऐसे अनन्त ज्ञानवन्त अनुपम ज्ञानधारी प्रभु और **निर्वाणमार्गरूप, निर्मल....** यह मोक्ष का मार्ग है। वीर स्वयं मोक्ष का मार्ग कहते हैं अथवा वे स्वयं मोक्ष के मार्गस्वरूप हैं। निर्मल मोक्ष का मार्ग। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करके जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया है।

देवेन्द्रों से वन्दनीय.... जो देव के इन्द्र भी जिन्हें वन्दन करते हैं। सौ इन्द्र वन्दन करते हैं। आहाहा! यह तो वीरशासन चलता है न! भगवान महावीर परमात्मा का (शासन) इसलिए वीरशासन में पहले वीर को वन्दन किया। वैसे तो भगवान सीमन्धरस्वामी विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञानीरूप

से सीमन्धरस्वामी महाविदेह में अभी विराजते हैं। करोड़ पूर्व का जिनका आयुष्य है। पाँच सौ धनुष की जिनकी देह है। दो हजार हाथ ऊँची जिनकी देह है। अभी सामायिक में नहीं प्रतिज्ञा—आज्ञा लेते? सीमन्धरस्वामी.....

मुमुक्षु : प्रतिक्रमण के समय लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिक्रमण के समय लेते हैं। परन्तु किसे खबर क्या है? जय भगवान! यह सर्वज्ञ भगवान परमात्मा वर्तमान में मनुष्यदेह में विराजमान हैं। इस पृथ्वी पर महाविदेह में हैं। उन्हें वन्दन न करके इन्हें क्यों किया? कि इनका वीरशासन चलता है। समझ में आया? और एक को वन्दन करने से उसमें अनन्त को वन्दन आ जाता है। आहाहा!

कहते हैं कि जो **देवेन्द्रों से वन्दनीय....** देव के इन्द्रों से भी जो पूजनीय हैं। आहाहा! **तथा संसार सागर को पार करने के लिये उत्कृष्ट नावरूप**- हैं। निमित्त से बात करते हैं न! सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग वीर प्रभु, उन्हें जो केवलज्ञान हुआ और फिर मार्ग जो कहा, वह मार्ग तो संसार सागर को पार उतारने के लिये नावरूप है। उन्होंने जो मार्ग कहा, उसमें जो बैठे, वह नाव से जैसे पार पड़े, वैसे संसार से पार पड़े और किनारे-मोक्ष में चला जाये। आहाहा! पूर्ण शान्ति और आनन्द का स्वभाव प्रभु का, उसमें जो जाये, स्थिर हो.... भगवान ने यही नाव कही है। समझ में आया? मार्ग निश्चय—सत्य मार्ग ऐसा सूक्ष्म है कि लोगों को हाथ आया नहीं और सुना नहीं। बाहर की सिरपच्ची में पड़े हैं और तत्त्व-पूरी बात जो सत्य है, वह पूरी रह गयी। और इसका जीवन चला जाता है, भाई! ऐसा जीवन देह के अन्त की स्थिति के समीप जाता है। आहाहा! उसमें यदि यह काम नहीं किया.... आहाहा!

भगवान नाव समान है, कहते हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ वीर परमात्मा ने केवलज्ञान की व्याख्या का स्वरूप कहा, वे प्राप्त हुए, उसकी बात की। और वह कैसे प्राप्त हो, उसकी उन्होंने बात की। आहाहा! यह मार्ग कहीं बाहर से नहीं आता। अन्दर में है।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा पूर्ण (स्वरूप है)। दृष्टान्त इसमें ऐसा दिया है,

देखो! अपने छोटी पीपर का देते हैं न, वह इसमें यहाँ दिया है। छोटी पीपर नहीं? इन्होंने सुना था न यह समाधिशतक? उसमें आया था कहीं छोटी पीपर का दृष्टान्त। आत्मधर्म में है... कहीं है सही। छोटी पीपर का दृष्टान्त है कहीं, हों! छोटी पीपर समझ में आयी? यह पीपर नहीं होती वह? चौसठ पहर घोंटे और चौसठ पहरी चरपराहट आवे। वह पीपर-पीपर। पीपर का दाना होता है न। ऐई! यह कहीं आया अवश्य है। इन्होंने सुना हुआ है न। छोटी पीपर। देखो! १६वें पृष्ठ पर है।

जिस प्रकार छोटी पीपर के दाने-दाने में चौसठ पहरी चरपराहट की सामर्थ्य भरी है.... यह तो बहुत बार व्याख्यान में (दृष्टान्त) देते हैं न! छोटी पीपर का दाना छोटा, रंग काला परन्तु उसमें चौसठ पहरी चरपराहट। वह तो अब सौ पैसे का रुपया हुआ न? बाकी चौसठ पैसे का रुपया था न? अर्थात् चौसठ पैसे अर्थात् रुपया... रुपया चौसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। वह घोंटने से आती है, वह कहीं पीपर में बाहर से नहीं आती। आहाहा! उसमें चौसठ पहरा चरपरा रस, चरपरा रस सोलह आना-रुपया... रुपया-चौसठ पैसा-चौसठ पहरी पड़ा है। है न? **चरपराहट की सामर्थ्य भरी है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरपूर है....** आहाहा! यह बात इसे जँचे। यह आत्मा देह प्रमाण होने पर भी देह के रजकण से तो भिन्न तत्त्व प्रभु है। यह (देह) तो मिट्टी है। वाणी मिट्टी है। उससे भिन्न भगवान चैतन्यस्वरूप जो है, वह छोटी पीपर की भाँति, उसमें जैसे रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपराहट और हरा रंग उसमें पड़ा है। बाहर में काला है और अल्प चरपराहट है, वह फिर नहीं रहती। अन्दर में हरा रंग और चरपराहट जो पूरी है, वह प्रगट होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में.... आहाहा! शरीर प्रमाण उसका कद होने पर भी और पुण्य-पाप के मैल की कालिमा दिखने पर भी उसके स्वरूप में तो पूर्ण-पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द पड़ा है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

परन्तु उसका विश्वास करके अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्र हो तो वह ज्ञान-आनन्द का स्वाद अनुभव में आवे। आहाहा! जैसे उस पीपर के दाने में चौसठ पहर अर्थात् रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपरा रस और हरा रंग पड़ा है, परन्तु प्रगट हो, तब उसमें से बाहर आता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द की पूर्ण शक्ति, पूर्ण

शक्ति अस्ति अभी यहाँ अन्दर पड़ी है। आहाहा! उसका जब स्वीकार अन्तर सन्मुख होकर जिस प्रकार से है, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, उसका सम्यक् श्रद्धा में, सम्यग्ज्ञान में स्वीकार हो, तब उसे आनन्द की दशा का वेदन आता है। आहाहा! उस आनन्द की दशा का वेदन आवे , उसे धर्म कहते हैं। ऐसा वीतराग धर्म है, बापू! आहाहा! समझ में आया? बाकी सब बातें हैं। यह करो और वह करो और अपवास किये, यह किया, वह सब विकल्प की-राग की जाति है। आहाहा! उसकी जाति में जाकर भगवान, उसकी जाति चौसठ पहरी ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण भरपूर प्रभु है। यह कैसे जँचे? अल्पज्ञ दशा में रही हुई क्रीड़ाओं में उसे यह पूर्ण है, यह कैसे जँचे अन्दर में?

मुमुक्षु : छोटी पीपर का जँचता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका जँचता है। यह तो इसने गाँधी (पंसारी) के निकट सुना हो।

वढ़वाण में करते थे। डाह्या जेठा थे न? डाह्या जेठा थे वढ़वाण में, नहीं? रायचन्द गाँधी के रिश्तेदार थे। वे घर में बनाकर रखते। २००, ४००, ५०० यह पीपर चौसठ पहरी। भैया बोलावे न। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९७६ में तो वे गुजर गये। तब मैं वहाँ था। ७६ के वर्ष में वढ़वाण (में) गुजर गये। डाह्या जेठा। दूसरा क्या उसके छोटे भाई? नागर जेठा। नागर जेठा। छोटा भाई नागरभाई। सबको पहचानूँ न। कपड़े की दुकान (थी)। वे घर में भैया के पास घूंटाते थे चौसठ पहरी। गृहस्थ व्यक्ति न! कोई गरीब व्यक्ति आवे उसे मुफ्त में दे। आधा भाग, पाव भाग जितनी हो, उतनी मुफ्त। २००, ४००, ५०० बनाकर रखते थे। वे डाह्या जेठा।

इसी प्रकार सर्वज्ञ ने कर रखी हुई बात है, कहते हैं। डाह्या जेठा। डाह्या, वह हुआ जेठा। आहाहा! जिसे अन्तर अनन्त ज्ञान और आनन्द जो पड़ा है, उसे अन्तर में घूँटकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा जिसने ज्येष्ठ पद डाह्या ने प्रगट किया। ऐई! वह यहाँ भगवान दूसरे को देते हैं—कहते हैं कि भाई! तेरा स्वरूप ऐसा है न, भाई! आहाहा! तुझे कहीं बाहर से लेने जैसा, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह तुझे जँचता नहीं, भाई! तेरी नजर में यह आया नहीं। आहाहा! ऐसा ज्ञान और आनन्द का पूर्णरूप, ऐसा जो जीव

स्वरूप, ऐसा जो आत्मभाव.... आहाहा! उसे प्रतीति में और ज्ञान में ज्ञेयरूप से लेना और उसमें स्थिर होना, तब उसे आनन्द और ज्ञान जो शक्तिरूप से थे, वे पर्याय में जैसे वह चौसठ पहरी चरपराहट बाहर आती है। पहले एक पहर, दो पहर, चार पहर ऐसे आवे। उसी प्रकार साधक स्वभाव में प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान में वह पूरी प्रगटता पर्याय में नहीं आती। समझ में आया?

घूँटने से तो पहले कहीं चौसठ पहरी तुरन्त हो जाये? पहले एक पहरी, दो पहरी, चार पहरी, ऐसे होता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर प्रभु, उसका जो सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, उसे अमुक पहरी जैसे चरपराहट प्रगट हुई, उसी प्रकार अमुक दशा प्रगट हुई। और वह दशा प्रगट होने पर अन्दर में एकाग्रता करते.... करते.... करते.... पूर्ण केवलज्ञान दशा प्रगट हो जाती है। इस मार्ग के कारण (प्रगट हो जाती है)। आहाहा! समझ में आया? इस चैतन्य के स्वभाव में घोंटने से, एकाग्र होने से वह केवलज्ञानरूपी चौसठ पहरी चरपराहट जैसे प्रगट हो, वैसे केवलज्ञान परमात्मा को प्रगट हुआ। उसी विधि से परमात्मा ने जगत को प्रगट करने की विधि कही। अपूर्व बात है, बापू! लोग मानते हैं कि ऐसे सामायिक की, प्रतिक्रमण किये, यह प्रौषध किये और धर्म (हो गया)। अरे! भाई! तुझे अभी खबर नहीं, बापू! सामायिक किसे कहना? आहाहा! और प्रतिक्रमण किसे कहना? प्रौषध किसे कहना? आहाहा! यह तो भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वरूप पूर्ण है, उसकी एकाग्रता से जो पर्याय में शुद्धि, शान्ति, वीतरागता और अतीन्द्रिय आनन्द आवे, उसे प्रौषध और उसे सामायिक कहते हैं। पोपटभाई! ऐसी सामायिक तो दूसरी बहुत की है। दरियापरी के उपाश्रय में करते थे? वढ़वाण।

मुमुक्षु : एक तो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। यह तो सब हम भी करते थे, बापू! पहले हमारी दुकान में। वस्तु क्या भी, खबर किसे थी? दुकान पालेज में, सब हम करते थे। सामायिक करते, अपवास करते। चार-चार (सामायिक) ऐसा तो नहीं करते थे। क्योंकि तब छोटी उम्र न। आहाहा! उसका फल मिथ्यात्व है। (उसे) धर्म माना। पोपटभाई! आहाहा!

प्रभु कहते हैं, वह तो निर्वाण का मार्ग कहनेवाले अथवा निर्वाण का मार्ग ही परमात्मा है। उन्हें जिसने पहिचाना सर्वज्ञ परमात्मा को, उसकी सम्यक् दृष्टि हुई, वह उसकी नाव है। वह भगवान ने कहे हुए इस मार्ग की मार्ग में बैठे, उसे संसार का अन्त आये बिना नहीं रहता। आहाहा! परन्तु बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म, हों! मार्ग कोई अपूर्व है! दुनिया मान बैठती है कि हम साधु हो गये, यह स्त्री-पुत्र छोड़े, इसलिए साधु हुए। बापू! (दशा) सूक्ष्म बातें हैं, भाई! समझ में आया? आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और उसे साधुपना आ जाये। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु परमात्मा स्वयं नाव है। आहाहा! कहा न? **संसार सागर को पार करने के लिये उत्कृष्ट नावरूप - ऐसे वीर जिनेन्द्र....** उन्होंने कहे हुए भाव को जो अन्दर प्रगट करे, उस नाव द्वारा संसार का पार आवे। समझ में आया? आहाहा! **ऐसे वीर जिनेन्द्र भगवान को प्रणिपात करके...** नमन करके **मैं समाधिशतक कहूँगा।** टीकाकार कहते हैं कि मैं इस समाधिशतक की टीका करूँगा।

अब स्वयं ग्रन्थकर्ता जो सिद्धान्त समाधिशतक कर्तापुरुष महामुनि थे। दिगम्बर मुनि। जैन में जैनरूप से दिगम्बर (रहे हुए) मुनि को ही मुनि कहा जाता है। ऐसा अनादि का मार्ग था। फिर लोगों ने बदल डाला। समझ में आया? अनादि तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर, उन्होंने जो मुनिमार्ग कहा, वह तो अन्तर में तीन कषाय का अभाव होकर और वीतरागता अन्दर में प्रगट हो, उनकी दशा नग्न हो जाती है। उन्हें वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं रहता। आहाहा! ऐसे मुनिवर वे जंगल में बसते हैं, वे गाँव में नहीं होते। समझ में आया? ऐसे समाधिशतक के करनेवाले मुनि पूज्यपाद ऐसे थे। वे मुनि स्वयं। परम..., ऐसा कहा जाता है कि भगवान के पास गये थे।

जिस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में परमात्मा—सीमन्धर परमात्मा के पास गये थे। अभी सीमन्धर भगवान तो विराजते हैं। उनका तो आयुष्य लम्बा करोड़ पूर्व का है। विराजते हैं। मनुष्यरूप से समवसरण में, दिव्यध्वनि का उपदेश होता है। इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकलती है। इन्द्र और गणधर सुनते हैं, बाघ और सिंह जंगल में से आकर भी सुनते हैं। महाविदेहक्षेत्र है जमीन पर। समझ में आया? वहाँ आगे यह

पूज्यपादस्वामी गये थे, ऐसा आता है। पहले लिखा है, इन्होंने बहुत सब। प्रस्तावना में (लिखा है)। और देव जिनके पैर पूजते-पाद पूज्य—ऐसी तो जिनकी लब्धि थी। ऐसी एक लब्धि थी कि पैर में चोपड़े तो अध्धर आकाश में चले जायें। महाब्रह्मचारी ब्राह्मण थे। ब्राह्मण। ब्रह्म चिन्हे सो ब्राह्मणा। आत्मा ब्रह्मानन्द भगवान सर्वज्ञ ने कहा ऐसा आत्मा को जानकर अनुभव करे, उसे ब्राह्मण कहते हैं। समझ में आया? वह ब्राह्मण हुए, सच्चे ब्राह्मण हुए। ब्राह्मण की जाति में जन्मे हुए, परन्तु पश्चात् वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग मिला अन्दर में.... आहाहा! बाल ब्रह्मचारी थे। संवत् ५००-६०० के लगभग वर्ष में। समन्तभद्राचार्य के पश्चात्। समन्तभद्राचार्य दिगम्बर मुनि हुए, वे भगवान के पश्चात् २०० वर्ष में हुए। भगवान के पश्चात् बहुत वर्ष में परन्तु संवत् २००। विक्रम संवत् २००। भगवान के बाद ४०० वर्ष में। उनके पश्चात् यह हुए पूज्यपादस्वामी। ओहोहो! धर्म के स्तम्भ। नग्न मुनि दिगम्बर। जिन्हें एक वस्त्र का टुकड़ा न हो। समझ में आया? जिन्हें एक मोरपिच्छी और कमण्डल, दो उपकरण होते हैं। और अन्तर की झूलती दशा। जैसे झूले में झूले और झूले। उसी प्रकार अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द में घड़ीक में आवे, घड़ीक में विकल्प उठे जरा पंच महाव्रतादि का। वह विकल्प है, राग है। ऐसी दशा में झुलते थे। समाधिशतक के करनेवाले मुनि ऐसे थे। आहाहा! और जो मुनि हों, वे सब ऐसे ही होते हैं। समझ में आया? अभी तो उल्टा पड़ गया। सब घोटाला हो गया है। वस्त्र-पात्र रखते हैं। अभी तो श्रद्धा की खबर नहीं होती। हम यह मुनि हैं, उसे मानते और मनाते हैं। सब दशायें उल्टी हैं, बापू! आहाहा! समझ में आया? गिरधरभाई! यह सब सेठिया वढवाण के।

कहते हैं, **पूज्यपादस्वामी....** यह इसका अर्थ किया पहले। पूज्यपादस्वामी ऐसे थे। आहाहा! ब्राह्मण थे, फिर मुनि हुए। आत्मज्ञान होकर, स्वरूप का वेदन होकर.... आहाहा! और सम्यग्दर्शन (हुआ)। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा के आनन्द का वेदन है। आहाहा! और उसमें—स्वरूप की रमणता में जम गये, ऐसे जो **पूज्यपादस्वामी (इस समाधितन्त्र के रचयिता)....** व्यवहार से तो ऐसा कहा जाये न? बाकी सवेरे इनकार किया था। कल, कल न? शास्त्र की रचना आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! एक अक्षर जो है, वह अनन्त रजकण से बना हुआ है। उसे आत्मा नहीं कर सकता।

आहाहा! परन्तु निमित्त कौन था, ऐसा जानकर समाधिशतक उन्होंने बनाया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

एक अक्षर जो बोला जाता है, वह आत्मा से नहीं बोला जाता। वह अक्षर अनन्त रजकण से बनी हुई एक स्कन्ध की दशा है। आहाहा! उसे आत्मा अक्षर को बनावे, यह तीन काल में नहीं होता। परन्तु निमित्त कौन था, ऐसा बतलाने के लिये **(समाधितन्त्र के रचयिता)....** ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा! पर्याय के स्वकाल में पर्याय होती है, ऐसा जो कहा है न, और स्वकाल में उस पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, वह भी उसी समय में। और ध्रुव (रहे)। ऐसा कहकर यह कहा है कि आत्मा तो जाननेवाला ही है, बस। वह किसी पर्याय को करे, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! पर्याय के काल में पर्याय होती है। पूर्व की पर्याय का-मिथ्यात्व का व्यय होता है, समकित की उत्पत्ति होती है, ध्रुवरूप से रहता है—ऐसा ज्ञान जानता है। इसका नाम ज्ञाता और दृष्टा वर्णन किया है। समझ में आया? आहाहा!

इसके जानने-देखने के स्वभाव के अतिरिक्त यदि आगे जाकर कुछ भी माने कि मैंने यह दया का भाव किया, मैंने पर की दया पालन की, अत्यन्त मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादृष्टि की दृष्टि में मिथ्यात्व है। आहाहा! पोपटभाई! कहो। यह टाईल्स का धन्धा मैंने किया। वढवाण से वहाँ गये तो कुछ धन्धा और मेहनत की होगी तो पैसे हुए होंगे या नहीं? ऐसे के ऐसे हुए होंगे? कोई कहते है कि दो करोड़ हुए। कोई और कहता है, पाँच करोड़ हुए। कोई और ऐसा कहता था। वे जड़ के रजकण हैं, बापू! वे तो जड़ के कारण से आये हैं। आत्मा ने कमाने का राग किया, इसलिए आये हैं, (ऐसा तीन काल में नहीं है)।

मुमुक्षु : हमारे पास किसलिए आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी क्षेत्रान्तर होने की उनकी शक्ति है तो उसके कारण से आते हैं। क्षेत्रान्तर होना (ऐसी) क्रियावर्तीशक्ति रजकण में है। रजकण में क्रियावर्ती अर्थात् क्षेत्रान्तर होना, वह उसका स्वभाव है। उसके कारण वह यहाँ आये हैं। इन पोपटभाई के कारण वहाँ पैसे नहीं आये।

मुमुक्षु : निमित्तपना तो रखना न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की व्याख्या क्या ? एक था पुरुषार्थ करनेवाला राग का इतना निमित्त। परन्तु उससे पैसे आये उसके कारण से, इस बात में कुछ माल नहीं है। मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि मैंने यह कमाया, इसलिए पैसे आये। लो! यह भी लेते थे न (एक) दिन के ? कोर्ट में जाते थे। तीस वर्ष पहले की बात है। दो सौ रुपये लेते थे। यह रामजीभाई। कोर्ट में (जाते) तो होशियारी से लेते थे न ?

मुमुक्षु : मुफ्त में कोई दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। ऐई! इसे यह देखो न, पन्द्रह सौ का वेतन छोड़ा न। पन्द्रह सौ का मासिक वेतन। ब्रह्मचारी है। यह कान्तिभाई। यह पन्द्रह सौ का वेतन मासिक छोड़ दिया। नौकरी छोड़ दी। छोड़ दी, सच्ची बात ? कौन नौकरी करता था ? वहाँ राग करता था, राग। प्लेन में ऐसा है, ऐसा हो और ऐसा हो। प्लेन में थे न ? मुम्बई। पन्द्रह सौ का (वेतन)। गत वर्ष नौकरी छोड़ दी। अठारह हजार बारह महीने में। अब उसमें धूल में क्या है ?

तीन लोक का नाथ हाथ आवे, वहाँ जिसमें लक्ष्मी का पार नहीं। आहाहा! चैतन्य भगवान जिसमें अनन्त ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है। अरे! तुझे कैसे जँचे ? भाई! आहाहा! एक बीड़ी पीवे, वहाँ इसे ऐसा हो जाये मानो.... आहाहा! मानो मस्तिष्क तेज हो गया। और सवेरे पाव सेर चाय पीवे, डेढ़ पाव सेर उकाला। तब इसे मस्तिष्क अच्छा ठीक हो जाये। आहाहा! ऐसे व्यसन के माननेवाले। तेरी भ्रमणा है प्रभु! तुझे, कहते हैं। भाई! तू तो आनन्द का नाथ है, ज्ञान का सागर है। इस ज्ञान की उत्पत्ति तेरे स्वभाव में से आयी हुई है। आहाहा! वह वाणी सुनने से भी नहीं। आहाहा! समझ में आया ? इस प्रकार वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग तो यह है। वाणी से वहाँ ज्ञान नहीं होता। आहाहा!

इसका भगवान अन्दर जो ज्ञानस्वभाव है, उसका पर्याय में विकास होता है, उस पर्याय की उत्पत्ति उसके कारण से होती है। आहाहा! यह सुनने के लक्ष्य से जो ज्ञान की पर्याय लक्ष्य में आयी, हुई, वह भी कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहाहा! क्योंकि उस

परलक्ष्य में रहने से पर्याय का विकास हुआ। वह आत्मज्ञान नहीं, वह ज्ञान की दशा नहीं। आहाहा! वह उपयोग अचेतन-जड़ है। आहाहा! जिसमें भगवान ज्ञायकस्वरूप से अन्दर विराजमान हैं, वह कली खिले अन्दर से। उसके स्वभाव पर दृष्टि जाने से उस शक्ति में से व्यक्तता ज्ञान की आंशिक शान्ति और आनन्द लेती दशा जो प्रगट हो, उसे ज्ञान कहते हैं। वीतराग के मार्ग में ज्ञान की बातें अलग, बापू! पूरी दुनिया से अलग है। और ऐसा स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं है नहीं, किसी ने कहा नहीं, किसी ने जाना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे समाधितन्त्र के रचनेवाले मुनि, वीतरागी सन्त आनन्दकन्द में झूलनेवाले। आहाहा! जिसे वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं हो, और आचार्य तो कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा रखकर भी हम मुनि हैं—ऐसा माने, मनावे, निगोद में जायेगा। ऐई! पोपटभाई! बापू! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग ऐसा है कि ऐसा कहीं अन्यत्र मिले—ऐसा है नहीं। समझ में आया? ऐसे ये मुनि थे। बालब्रह्मचारी अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले। झूलते-झूलते एक विकल्प आया, वृत्ति-शुभराग उठा, उसके वे कर्ता नहीं थे। और यह शास्त्र के शब्दों की रचना शब्दों से हुई है। आहाहा! गजब! यह तो सवेरे ही कहा है न? .... कल कहा था न?

यह वाणी जड़, वह ध्वनि जड़ की है। उसे आत्मा करे? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, उसमें से वाणी उठना कहाँ से हो? वाणी का उठना होता है, वह जड़ में से, परमाणु में से, रजकण में से, पुद्गल में से होता है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे इसे बात? यह अजीव की पर्याय होती है, उसे ऐसा मानता है कि मुझसे हुई। उसने जीव को अजीव माना। आहाहा! उसने जीव को अजीव माना, उसे मिथ्यात्व का पाप लगता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षुओं के लिये मोक्ष का उपाय.... अब यह रचकर इसमें क्या बताया है? **मुमुक्षुओं को....** भाषा ऐसी है न? आहाहा! जिसे अन्तर में पूर्णानन्दस्वरूप प्रगट करने की जिज्ञासा है, उसे मुमुक्षु कहा जाता है। जिसे आत्मा पूर्ण आनन्दरूपी मुक्ति-अनन्त केवलज्ञानरूपी दशारूपी मुक्ति की जिसे जिज्ञासा है, उसे यहाँ मुमुक्षु-धर्म का इच्छुक

उसे कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? पुण्य को करना और यह छोड़ना और यह रखना वह यह नहीं। आहाहा! जैसा उसका मुक्तस्वरूप है, प्रभु का मुक्तस्वरूप ही है अन्दर। आत्मा मुक्त है। वस्तु मुक्त है। राग से भिन्न वस्तु है। आहाहा! ऐसी ही भिन्नता की जिसकी दशा प्रगट करने की भावना है, उसे धर्मी जीव की जिज्ञासावाला उसे कहते हैं। आहाहा! उसे धर्म की जिज्ञासावाला कहते हैं।

उसे **मोक्ष का उपाय....** पूर्णानन्द की प्राप्ति अनन्त सिद्धपद जो है, सिद्धपद जो है, मोक्षपद, वह पर्याय है। सिद्धपद-मोक्षपद, वह पर्याय है—वह अवस्था है। ऐसे **मोक्ष का उपाय....** उसकी पर्याय की प्राप्ति का उपाय **और मोक्ष का स्वरूप....** आत्मा के मोक्षमार्ग से अन्तर स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता के निर्विकल्पभाव से जो पूर्ण मोक्षदशा प्रगट हो, उसकी बात कहूँगा, कहते हैं। मुमुक्षुओं को मोक्ष का उपाय और मोक्ष की बातें कहूँगा। आहाहा! उसे पुण्य ऐसे होता है और फिर उसके फल में ऐसा होता है और उसके फल में यह होता है। यह बात हम नहीं कहेंगे। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात आवे परन्तु यह बात वीतरागता के लिये आवे। समझ में आया? पुण्य के परिणाम राग हैं और राग से बन्धन है। यह बात वीतरागता बतलाने के लिये आती है। उपाय बतलाने के लिये आती है, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह रखनेयोग्य है और करनेयोग्य है, ऐसा नहीं आता। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! दुनिया से वीतराग का मार्ग कोई अलग है।

यह **स्वरूप बतलाने की कामना से....** अर्थात् इच्छा-वृत्ति उठी है। **तथा निर्विघ्न शास्त्र की परिसमाप्ति...** मांगलिक है न। शास्त्र पूर्ण हो, भाव पूरे हों। इन **आदिरूप फल की अभिलाषा से, इष्टदेवता विशेष को नमस्कार करके कहते हैं:—** लो! अब अब स्वयं समाधिशतक के कर्ता जो पूज्यपादस्वामी सन्त मुनि-दिगम्बर मुनि। जैनदर्शन में अनादि का दिगम्बर मुनि का ही धर्म था। अनादि का यह मार्ग है। महाविदेह में यह मार्ग है। पश्चात् तो यह बीच में दुष्काल पड़ा बाहर, उसमें से यह श्वेताम्बर पन्थ निकला है।

वह वस्तु की दृष्टि से विपरीत से निकला है। बापू! कठिन पड़े, भाई! समझ में आया?

भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में श्वेताम्बर पन्थ जैन में से निकला। सनातन जैन में से विपरीत दृष्टि होकर वह पन्थ निकला है। और उससे यह स्थानकवासी पन्थ तो बाद में, पन्द्रह सौ वर्ष बाद निकला है। उसमें से—श्वेताम्बर में से (निकला है)। आहाहा! अरे रे! यह भी विपरीत दृष्टि होकर उसमें से निकला है। उसे जैनधर्म नहीं कहते। चन्दुभाई! ऐसा बहुत कठिन है, बापू! लोगों को गले उतरना बहुत कठिन। ऐई! पोपटभाई! जिसमें पड़े, उसे मानकर बैठे होते हैं, उसमें से उसे कहना कि यह मार्ग नहीं। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! सत्य तो यह है, प्रभु! आहाहा! ऐसे जो दिगम्बर सन्त जो अनादि की चीज़ है, वह चीज़ वे दिगम्बर सन्त कहते हैं कि मैं मोक्ष की कामना, मोक्ष का स्वरूप बतलाने की इच्छा, वृत्ति, कल्पना-विकल्प हुआ है, इसलिए यह शास्त्र होता है, शास्त्र होता है, उसे रचते हैं—ऐसा कहने में आता है।

पहला श्लोक। मुनि तो जंगल में रहते थे। भगवान के समय में और भगवान के बाद ६०० वर्ष तक। सन्त जंगल में रहते थे। गाँव में मुनि आते नहीं। गाँव में भिक्षा (आहारचर्या) के लिये आवें। फिर भिक्षा लेकर चले जायें। समझ में आया? उसमें भिक्षा के लिये आये हों और कोई लोग इकट्ठे हुए हों तो कुछ प्ररूपणा आवे तो आ जाये। आहाहा! ऐसा अनादि सनातन वीतरागमार्ग का स्वरूप था। उस वीतराग मार्ग के स्वरूपवान स्वयं समाधिशतक बनानेवाले, वे कहते हैं कि मैं मांगलिक करता हूँ। पहले टीकाकार ने मांगलिक किया।

येनात्माऽबुद्ध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्त बोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः॥ १॥

इसका **अर्थ - जिसके द्वारा आत्मा, आत्मारूप से ही जाना गया है....** आहाहा! आहाहा! स्वयं अपनी बात करते हैं। मुझे मेरा आत्मा मेरे भान से-ज्ञान से ज्ञात हुआ है। आहाहा! **और.... 'अपरं परत्वेन एव' पर, पररूप से ही जाना गया है,....** है। आहाहा! मैं एक ज्ञानस्वरूपी भगवान हूँ, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है और यह दया-दान विकल्पादि वृत्ति उठती है, वह पर है-ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है। समझ में आया? स्व है, वह स्व-पने ज्ञात

हुआ है। ज्ञान और आनन्द का नाथ प्रभु मैं स्व हूँ, वह ज्ञात हुआ है। और रागादि शरीरादि, वाणी, वाणी, आदि कर्म आदि, ये सब पर हैं, वैसे पररूप से ज्ञात हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो! इसका नाम भेदज्ञान। इसका नाम सम्यग्दर्शन की-ज्ञान की कला। आहाहा!

जिसके द्वारा.... 'आत्मा आत्मा एव' 'एव' है न? .... आहाहा! **और.... 'अपरं परत्वेन एव' पर, पररूप से ही जाना गया है, उस.... 'अक्षयानन्तबोधाय'** आहाहा! **अविनाशी अनन्त ज्ञानस्वरूप सिद्धात्मा को नमस्कार हो।** जिसे ऐसा ज्ञात हुआ, उसे नमस्कार। मुझे भी ऐसा ज्ञात हुआ, उसे मैं मुझे नमस्कार करता हूँ। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप विराजमान है। ऐसा अन्तर में-भान में ज्ञात हुआ है। रागादि पर हैं, वैसा ज्ञात हुआ है। ऐसा जो सिद्ध भगवान अथवा मेरा सिद्धस्वरूप, उसे मैं नमस्कार करता हूँ। समझ में आया? ऐसा कहकर यह मंगलाचरण-मांगलिक किया है। सिद्धात्मा को **अविनाशी अनन्त ज्ञानस्वरूप....** सिद्ध भगवान, जिन्हें पूर्ण ज्ञान और आनन्द हुआ, उन्होंने पर को पर जाना, स्व को स्व जाना, ऐसा केवलज्ञान प्रगट हुआ। ऐसा ही वह मैं भी ऐसा ही हूँ। आहाहा! उसे नमस्कार करता हूँ। अब इसकी टीका आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक १२-१२-१९७४, श्लोक-१, प्रवचन-२

पहला श्लोक। सिद्ध को नमस्कार करते हैं। कल चला है। आज फिर से लेते हैं। जिसे आत्मा आत्मारूप से ज्ञात हुआ है। पहला यह भेदज्ञान बताते हैं। सिद्ध को आत्मा आत्मारूप से ज्ञात हुआ है। शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वरूप आत्मा को यह ज्ञानस्वरूप से ज्ञात हुआ है और **'अपरं परत्वेन एव' पर पररूप से ही जाना गया है,...** यह पहले मोक्ष का उपाय बताया। समझ में आया? स्वस्वरूप चैतन्य आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसे स्वरूप से जानना अर्थात् कि वस्तु के स्वभाव से वह वस्तु अभिन्न है। और परवस्तु परवस्तु के स्वभाव से अभिन्न है, स्व से भिन्न है, ऐसा पहले जिसने जाना, कहते हैं, यह पहला भेदज्ञान कहा। यह मोक्ष का उपाय कहा। स्वयं अपना स्वरूप जैसा है, वैसा चैतन्यस्वभाव में ज्ञान की पर्याय में लक्ष्य में लेकर स्वसन्मुख से एकत्व, पर से भिन्न, अपने स्वभाव से अभिन्न और पर से भिन्न। वह परवस्तु मैं नहीं। **पर पररूप से ही जाना गया है,...** आहाहा! दया, दान और रागादि का विकल्प है, वह परवस्तु है। उसे यहाँ परवस्तु कहा। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह भी एक विकल्प है, वह परवस्तु है। पर को पररूप से जाना, स्व को स्वरूप से जाना, ऐसे सिद्धात्मा। परन्तु ऐसा कहकर मोक्ष का उपाय भी साथ में कहा।

मुमुक्षु : मोक्ष उपाय और मोक्ष दोनों कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में कहेंगे अब मोक्ष तो।

उस... उस। मोक्ष उपाय यह कहा। अब **'अक्षयानन्तबोधाय' अविनाशी अनन्त ज्ञानस्वरूप....** पर्याय में-अवस्था में अविनाशी अक्षय, जिसकी ज्ञानदशा अक्षय हुई। आहाहा! और जो अनन्त ज्ञानस्वरूप। अक्षय तो है परन्तु स्वरूप जिसका—ज्ञान का अनन्त है। वह मोक्षस्वरूप कहा, वह सिद्धस्वरूप कहा। ऐसे **सिद्धात्मा को....** इस प्रकार पहिचानकर मैं सिद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है विकल्प सिद्धात्मा को नमस्कार करना वह। परन्तु अन्तर में स्वसंवेदन में आकर नमस्कार हो जीव को, वह भावनमस्कार है। अपने स्वभाव की परिपूर्णता की ओर ढल

गया, नम गया, उसका विनय हो गया, इसका नाम अन्तर स्वंसेवदनभाव नमस्कार है। आहाहा! विकल्प उठा है, उस जाति का, वह द्रव्यनमस्कार कहा जाता है। परन्तु उसमें दो बातें एक गाथा में बतायी है। सिद्धरूप से हुए, वे किस प्रकार हुए? कि स्व-पर के भेदज्ञान द्वारा हुए। यह उपाय कहा। आहाहा! समझ में आया? जिसे सिद्धपद प्राप्त करना है, उसे किस उपाय से होता है? कि स्व-पर की भिन्नता के भान से होता है। आहाहा! सवेरे की अपेक्षा अभी बहुत स्थूल आता है, सवेरे जैसे सूक्ष्म नहीं है। समझ में आया?

अपने पूर्ण स्वरूप का भान और उसमें रागादि अजीव पररूप है, वह इसमें नहीं—ऐसा दोनों प्रकार का ज्ञान उसे होना चाहिए। एक तो स्व स्वरूप का और पर अशुद्धता पर्याय में है, उसका इसे ज्ञान होना चाहिए। यह स्व-पर का ज्ञान। त्रिकाली शुद्धस्वरूप है, उसका ज्ञान और पर्याय में अशुद्धता है, उसका भी ज्ञान। दो प्रकार यह अर्थ में कहेंगे। पहले अपना स्वभाव शुद्ध है, ऐसी दृष्टि में अभिन्नता स्वभाव के साथ करके स्व को जाना। तब उसकी पर्याय में अशुद्धता है, व्यवहार है। निश्चय से उसकी पर्याय में अशुद्धता है। परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से उस अशुद्धता को व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

है तो इसका निश्चय अशुद्धता संसारदशा। जिस प्रकार का राग उत्पन्न होता है, है वह अशुद्धदशा। है वह अपनी पर्याय में निश्चय से अस्तित्व है। पर में है और अपने में नहीं, ऐसा नहीं है। इन दो का ज्ञान होने पर—द्रव्य का इस प्रकार से और पर्याय का इस प्रकार से.... आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञान होने पर उसे मोक्ष के उपाय का भी भान हुआ और उसके फलरूप से अनन्त ज्ञान जिसे प्राप्त हुआ, ऐसी मुक्तदशा का भी उसे भान हुआ। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त में.... यह महामुनि थे न... आहाहा! लब्धि बहुत, चमत्कार बहुत, पुण्य का चमत्कार भी बहुत था, ऐसा शास्त्र में लिखते हैं। पवित्रता की तो बात क्या करना! आत्मा के आनन्द में लीन... लीन थे। लब्धि भी बहुत थी। पहले में लिखा हुआ है। भगवान के पास गये थे। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य गये थे; वैसे ये भी, साक्षात् भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे। ऐसी इन्हें लब्धि थी। आहाहा! वे स्वयं

यह शास्त्र रचते हैं। निमित्त से तो ऐसा कहा जाता है न। रचना में तो उसका निमित्त है। रचती है शास्त्र की भाषा जड़ से। आहाहा! परन्तु जब कथन कहना हो, तब ऐसा चले न!

मुमुक्षु : बोलने की पद्धति।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलने की पद्धति ऐसी होती है।

पूज्यपादस्वामी, जिनके पाद अर्थात् पैर इन्द्र पूजते थे। कहो, यह पंचम काल के साधु। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य के बाद में हुए। तथापि जिन्हें देव पूजते थे। जंगल में ध्यान में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त थे। उसे मुनिपना कहते हैं। समझ में आया? उन्हें पंच महाव्रत आदि के विकल्प हों, परन्तु वह तो अशुद्ध है, विकार है, पर है—ऐसा उन्हें ज्ञान में था। समझ में आया? वे आचार्य कहते हैं कि मैं सिद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ। निश्चय से तो जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही यहाँ आत्मा है। यहाँ पर्याय में अन्तर है, वह बात अलग रखो। परन्तु जैसे सिद्ध भगवान को अनन्त गुण हैं और उनकी पर्याय निर्मल अनन्त हुई है, यहाँ पर्याय भले अनन्त निर्मल न हो, परन्तु वस्तु जो है, वह तो सिद्ध समान अनन्त गुणों से निर्मल पूर्णानन्दस्वरूप जीव का है, वह सिद्ध ही है। उसे यहाँ भाव से नमस्कार किया है। द्रव्य से सिद्ध भगवान को भी नमस्कार किया है।

टीका - यहाँ पूर्वार्ध से मोक्ष का उपाय.... पहले दो पद में मोक्ष का उपाय। आहाहा! बापू! यह तो अन्दर की बातें हैं। आहाहा! **और उत्तरार्ध से मोक्ष का स्वरूप दर्शाया गया है।** दूसरे दो पद में मोक्ष बताया है। **सिद्धात्मा को, अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी को**- सिद्ध आत्मा को अर्थात् सिद्ध परमेश्वर को। आहाहा! प्रवचनसार में कहते हैं न? मेरी दीक्षा में मैं सिद्धों को और अरिहन्तों को साक्षीरूप से रखता हूँ। आहाहा! मेरी जो चारित्रदशा शुद्धोपयोगरूपी रमणता, ऐसी चारित्र की दीक्षा का महोत्सव... क्या कहलाता है यह? स्वयंवर.... स्वयंवर। आहाहा! मैं स्वयं मेरी निर्मल पर्याय को वरता हूँ। आहाहा! वह मेरा स्वयंवर है।

मैं आत्मा में पूर्णानन्द और पूर्ण वीतरागता जो पड़ी है, उसमें से मैंने पूर्ण आनन्द

का साधन ऐसा जो चारित्र दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा, वह मेरे स्वयंवर मण्डप की इस महोत्सव की दशा है। आहाहा! मैं स्वयं अपने इन दर्शन-ज्ञान और आनन्द की दशा को मैंने वरण किया है, मैंने प्रसन्न करके उसे मैंने वरण किया है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसमें साक्षी अरिहन्तों और सिद्धों को रखा है। यहाँ साक्षी में नमस्कार सिद्धों को करते हैं। समझ में आया?

बड़ा विवाह हो तो उसमें गृहस्थ को साथ में ले जाते हैं। गृहस्थ नवनीतभाई जैसे हों, भगवानदास सेठ जैसे हों, पोपटभाई जैसे हों तो साथ में ले जाते हैं। साधारण व्यक्ति हो और परिचित हो। उसकी कन्या जो समय हो, वह न बदले उसे। कदाचित् उसका पिता समय में चूका हो कि इतने पैसे दो चुपचाप, फिर कन्या आयेगी। आहाहा! देर लगी एक सेकेण्ड की तो वह सेठ बैठा हो, सुने। कैसे हुआ? कि अन्दर कुछ गड़बड़ है। समय वर्ते सावधान। ऐसा आता है न?

मुमुक्षु : ब्राह्मण बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्राह्मण बोले परन्तु यहाँ समय वर्ते—उसका समय है वहाँ सावधान। आहाहा! अपना काल है आनन्द की दशा का, उसमें सावधान। वहाँ उसे विवाह का काल है। वह बड़े पुरुष वहाँ जाये अन्दर। देरी क्यों लगी? पचास हजार रुपये पहले रखो। अभी तो कुछ नहीं। नहीं थी न लेने-देने की बात कुछ? चाहे जो हो, परन्तु अभी ऐसा है। स्वरूपचन्दभाई! वह गले में से हार उतारकर कहे, ले यह, कर टाईमसर, साथ में मैं और कन्या फिरे, तीन काल में नहीं।

इसी प्रकार कहते हैं कि प्रभु! मेरी चारित्र की दशा की दीक्षा में प्रभु! आपकी साक्षी और आपकी उपस्थिति मैंने तो की है। आहाहा! वह मेरी दशा अब नहीं फिरेगी। आहाहा! मैंने सर्वज्ञ परमात्मा सिद्धों को साक्षी में रखा है। यह कहेंगे यहाँ, देखो! **सिद्ध, अर्थात् सर्व कर्मों से सम्पूर्णपने....** सर्व कर्म से सम्पूर्णरूप से **(अत्यन्त) मुक्त — ऐसे आत्मा को नमस्कार हो।** आहा! यह भाषा की बात नहीं है, हों! यहाँ भाव की बात है।

जिन्होंने क्या किया? सिद्ध परमात्माओं ने क्या किया? **जाना।** क्या किया

उन्होंने ? भेदज्ञान पहले पद में बताया। जाना। **किसको ? आत्मा को।** आहाहा! भगवान आत्मा जो पर्याय की अंशबुद्धि में जो था, उसे द्रव्यबुद्धि में आकर उन्होंने द्रव्य को जाना। आहाहा! मैं एक पूर्णानन्द परमात्मस्वरूप हूँ, ऐसा उन्होंने जाना। **किस प्रकार (जाना) ? आत्मारूप से ही।** आत्मा को आत्मारूप से जाना। वह रागरूप नहीं, पुण्यरूप नहीं, गतिरूप नहीं। समझ में आया ? आहाहा! उसे आत्मारूप से (जाना)।

तात्पर्य यह है कि जिन सिद्धात्माओं ने यहाँ आत्मा को, आत्मारूप ही, अर्थात् अध्यात्मरूप से ही जाना,.... आहाहा! अन्तर के स्वसंवेदन से आत्मा को जाना। **शारीरिक या कर्मोपादित....** शरीर आदि या कर्म से उपादित-प्राप्त हुए **सुर-नर-नारक-तिर्यंचादि जीव पर्यायादिरूप नहीं जाना....** यह जीव की पर्याय है, ऐसा नहीं जाना। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी जीव की पर्यायरूप जीव को नहीं जाना। आहाहा! वह तो पर है। छह काय में नहीं आता, प्रवचनसार में ? छह काय के जीव। छह काय के जीव, वह जीव नहीं। जीव का स्वरूप तो छह काय के शरीर से भिन्न है। आता है न ? प्रवचनसार में आता है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया। नहीं, नहीं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय जीव का स्वरूप है ?

मुमुक्षु : वह तो पुद्गल की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पुद्गल की पर्याय है। वहाँ ज्ञान की अल्प ज्ञान की अवस्था है। वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं है। वास्तविक जीव का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं कि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय शरीरादि और सुर-नर आदि गति, ऐसी पर्यायरूप जीव को नहीं जाना। आहाहा! **तथा (जिन्होंने) अन्य को, अर्थात् शरीरादिक व कर्मजनित....** यह कर्म उपादित कहा वह। **मनुष्यादिक जीव पर्यायादि को पररूप से,....** आहाहा! यह मनुष्य की गति, रागादि हो उसे जिन्होंने पररूप जाना। आहाहा! वह मैं नहीं। मैं उसमें नहीं, वह मुझमें नहीं। ऐसा जो प्रथम मोक्ष के उपायरूप भेदज्ञान सिद्ध ने किया और वही करने का जगत को कहते हैं। आहाहा!

आत्मा से भिन्नरूप ही जाना। गति, राग, पर्याप्ति, अपर्याप्ति आदि, वह तो पररूप

है। मेरा स्वरूप तो ज्ञानघन है, चैतन्यबिम्ब है। उस स्वरूप को स्व-रूप से जाना और पर को पर-रूप जाना। आहाहा! देखो! इसका नाम भेदज्ञान है।

कैसे उन्हें नमस्कार किया ? वे सिद्ध भगवान कैसे हैं कि जिन्हें नमस्कार किया? **अक्षय-अनन्त बोधवाले....** पाठ में यह है न? अक्षय अनन्त ज्ञान। अक्षय अनन्त ज्ञान। अक्षय अनन्त बोध। ऐसे तीन शब्द हैं न? आहाहा! कैसा है उनका ज्ञान? अक्षय। **अर्थात् अविनश्वर....** ज्ञान। लो! यह तो केवलज्ञान की पर्याय ऐसे तो नाशवान है, परन्तु वैसी की वैसी रहते हुए, उसमें अपूर्णता न आकर वह अविनश्वर दशा कूटस्थ हो गयी। आहाहा! अक्षय अनन्त ज्ञान जिसकी दशा में प्राप्त हुआ, ऐसे सिद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ। उन्हें ऐसी लक्ष्मी मिली। अनन्त अक्षय ज्ञान। क्षय न हो ऐसा और अनन्त।

एक ओर नियमसार में कहते हैं कि केवलज्ञान और मोक्ष का मार्ग तथा पुण्य-पाप के भाव ये सभी पर्यायें नाशवान हैं। अविनाशी कायम टिकनेवाला तो भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु है। उस अविनाशी त्रिकाल सत्य की अपेक्षा से उन्हें नाशवान कहा। और यहाँ अक्षय अनन्त कहा, ऐसी की ऐसी दशा, ऐसी की ऐसी रहेगी सादि-अनन्त। आहाहा! चैतन्यसूर्य जलहल ज्योति से प्रकाशित हुआ, मोक्ष के उपाय द्वारा। समझ में आया?

अब यहाँ कहते हैं कि मोक्ष का उपाय अलग चीज़ है और मोक्ष की पर्याय अलग चीज़ है। इस उपाय द्वारा करके पर्याय प्रगट करे, ऐसा नहीं। वह दूसरी अपेक्षा। आहाहा! वह तो स्वतन्त्र केवलज्ञान की दशा स्वयं के कारण से वहाँ उत्पन्न हुई। परन्तु पूर्व में क्या था? यह बतलाने के लिये उसे उपाय और कारण कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! इतनी अपेक्षाएँ न समझे तो उसे एकान्त हो जाये। वह केवलज्ञान अक्षय बोधवाले को.... आहाहा!

अक्षय, अर्थात् अविनश्वर और अनन्तर, अर्थात् देशकाल से अनविछिन्न.... देश काल का कोई पार नहीं। सब देश काल का पार आ गया। आहाहा! देश अर्थात् लोकालोक क्षेत्र और काल—त्रिकाल, जिसकी ज्ञानपर्याय में ज्ञात हो गया है। ओहोहो! ऐसी सिद्ध की दशा, इस मोक्ष के उपाय से मोक्ष हुआ है। समझ में आया? इसमें ऐसा

नहीं कहा कि भाई! व्यवहार मोक्षमार्ग जो है, उससे यह मोक्ष हुआ। यहाँ तो व्यवहार को तो अशुद्धता में जाना, पररूप जाना। और स्व की शुद्धता को अपनी परिपूर्णता को शुद्धता (रूप से) जाना। आहाहा! समझ में आया? यह तो ऐसा धीर का मार्ग है, भाई!

व्यापार में तो ऐसा मानो पागल होकर लवलीन होता है न, देखो न! नहीं कहा था एक बार? तब वह क्या कहलाता है? कोलाबा। कोलाबा-कोलाबा। पहले गये न जब माल लेने दुकान से। कहा, चलो कोलाबा देखने जायें। तब (संवत्) १९६४ का वर्ष होगा। ६४-६५। संवत् ६४-६५। मुम्बई। कोलाबा देखने गये वहाँ। तार वहाँ आवे वे तार वहाँ थे न, क्या कहा जाता है उसे? अमेरिका से तार वहाँ आवे। तार वहाँ आता था। मैंने देखा। एक मारवाड़ी था ऐसे ...बन्ध, ढीचकुं शरीर। लिया-दिया... यह तो देखो तुम्हारे पागल। कहा, यह क्या है?

मुमुक्षु : साहेब! वह करोड़ों रुपये कमाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं कमाता। ऐई! कोलाबा मुम्बई में समुद्र के किनारे है न! वहाँ से तार-समाचार आते थे। आवे और फिर यह लिया, इस भाव दिया, इतना दिया, इतना लिया। पागल है, तब ऐसा लगता था, हों! क्या करता है यह? आहाहा!

यह तो धीर का काम है। जिसने अपने स्वरूप को जानकर अपना स्वरूप पूर्ण लिया.... आहाहा! और अशुद्धता को जानकर अशुद्धता का नाश किया। ऐसा जो मोक्ष का उपाय, उससे अविनश्वर अनन्त ज्ञान की दशा को प्राप्त हुए हैं। आहाहा!

समस्त पदार्थों के परिच्छेदक,.... परि अर्थात् समस्त प्रकार से उसके जाननेवाले। परि-समस्त प्रकार से छेदक। **'सर्वभावान्तरच्छिदे'** आता है न? **'च्छिदे'** वहाँ आता है **'सर्वभावान्तर'। ज्ञानवाले; उनको (नमस्कार)....** ओहोहो! जिन्हें अक्षय अनन्त पर्याय में ज्ञान प्रगट हुआ, ऐसे अस्तित्व को मेरा नमस्कार! समझ में आया? उन्हें नमस्कार। **इस प्रकार के ज्ञान, अनन्त दर्शन, सुख, वीर्य के साथ....** इस प्रकार का जो ज्ञान-अक्षय ज्ञान एक समय की दशा में परमात्मा का मोक्षदशा में हो गया। आहाहा! उस ज्ञान का अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य के साथ **अविनाभावीपने की सामर्थ्य के कारण,....** आहा! वे साथ में होते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और

अनन्त वीर्य—पुरुषार्थ, वे एक समय में साथ में होते हैं। इसलिए **वे अनन्त चतुष्टयरूप हैं — ऐसा बोध होता है।** आहाहा!

सिद्ध परमात्मा। यह तो णमो सिद्धाणं.... णमो सिद्धाणं करे, परन्तु क्या सिद्ध? क्या पर्याय? सिद्ध भी एक पर्याय है, कोई गुण-द्रव्य नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। सिद्ध भगवान की भी एक दशा है, वह पर्याय है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसकी पर्याय का परिमितपना-मर्यादितपना नहीं। अनन्त-अनन्त ज्ञान जिन्हें प्रगट हुआ है। उसके साथ अनन्त दर्शन, वीर्य और आनन्द प्रगट हुआ है। ऐसा उनका अनन्त चतुष्टय स्वरूप है। दूसरे अनन्त साथ में हैं। मुख्य यह चार (कहे)। ऐसे **सामर्थ्य के कारण, वे अनन्त चतुष्टयरूप हैं — ऐसा बोध होता है।** ऐसा ज्ञान में ज्ञात होता है। अनन्त ज्ञान के साथ एक समय में अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य होता है, ऐसा बोध होता है—ऐसा ज्ञान में ज्ञात होता है, कहते हैं।

शंका - इष्टदेवता विशेष, पञ्च परमेष्ठी होने पर भी,.... इष्टदेव तो पाँच परमेश्वर हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। **यहाँ ग्रन्थकर्ता ने सिद्धात्मा को ही क्यों नमस्कार किया?** पंच परमेष्ठी को नमस्कार न करके सिद्ध परमात्मा को क्यों नमस्कार किया?

समाधान - ग्रन्थकर्ता, व्याख्याता,.... इसकी व्याख्या करनेवाले, इसे सुननेवाले **श्रोता और....** इसके अर्थ के अनुष्ठान को जाननेवाले। अर्थ—जो वस्तु कहते हैं, उसका भाव-अर्थ, उसके अनुष्ठाता-आत्मा। विशेष दशा को जाननेवाले। ऐसे **अनुष्ठाताओं को सिद्धस्वरूप की प्राप्ति का प्रयोजन होने से,...** इन चारों को। ग्रन्थकर्ता को, ग्रन्थकर्ता के व्याख्याता को, उसके सुननेवाले को और उसके अर्थ को समझनेवाले को। सबको **सिद्धस्वरूप की प्राप्ति का प्रयोजन होने से,....** सिद्धपना प्राप्त करना, यही उनकी अभिलाषा है। आहाहा! समझ में आया? श्रोता भी ऐसा होना चाहिए, कहते हैं कि जिसे परमात्मपद प्राप्ति का ही एक काम है। समझ में आया? व्याख्याता को भी यह प्रयोजन है, ग्रन्थकर्ता को भी यह प्रयोजन है और उसके अर्थ के विशेषरूप से जाननेवाले, उन्हें भी प्रयोजन तो यह है। आहाहा! यह कहेंगे, दृष्टान्त देंगे। पण्डित....

जो जिसकी प्राप्ति का अर्थी होता है,... क्यों नमस्कार किया उन्हें, कहते हैं? **जो जिसकी प्राप्ति का अर्थी होता है,...** जिसे जो चाहिए हो, **वह उसे नमस्कार करता है;....** उसमें वह नमन और झुकाव करता है। **जैसे, धनुर्विद्या प्राप्ति का अर्थी,....** धुनर्विद्या होती है न यह? **धनुर्वेदी को नमस्कार करता है, वैसे ही।** सिद्ध के अनुष्ठान के, सिद्ध की भावना के अभिलाषी उन सिद्ध को नमस्कार करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **इस कारण सिद्धस्वरूप की प्राप्ति के अर्थी,....** यह आता है न? 'काम एक मोक्ष...' क्या आता है? 'काम एक आत्मार्थ का, दूजा नहीं मन रोग।' एक आत्मार्थ प्रयोजन, मोक्ष का जिसे प्रयोजन है। ऐसे जीव **समाधिशतक शास्त्र के कर्ता, व्याख्याता, श्रोता और उसके अर्थ के अनुष्ठाता आत्मा विशेष — (ये सभी) सिद्धात्मा को नमस्कार करते हैं।** आहाहा!

तीर्थंकर भी जब दीक्षा अंगीकार करते हैं न, (तब) णमो सिद्धाणं (बोलते हैं)। पंच परमेष्ठी को नहीं करते। तीन ज्ञान सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण की स्थिरता है। णमो सिद्धाणं। बस इतना। तीर्थंकर भगवान जब चारित्र-अन्दर के आनन्द की दशा, वह चारित्र, हों! यह सब अभी जो कहते हैं कि यह व्रत और तप और यह सब व्रत भी नहीं और चारित्र भी नहीं। अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना? बापू! इस चीज़ की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक-एक द्रव्य की एक-एक समय की पर्याय स्वयं से होती है, पर से नहीं होती। पर से नहीं होती परन्तु उसके पूर्व की अवस्था के व्यय से नहीं होती। आहाहा! और वह-वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, धर्म की पहली (शुरुआत) ध्रुव के कारण नहीं होती। आहाहा! उसे ऐसा मानना कि जो यह राग करते हैं और यह क्रिया करते हैं, उससे होती है। दृष्टि एकदम विपरीत मिथ्यात्व है। कहो, महेन्द्रभाई! सेठिया वह बाहर स्वयं त्याग कर सके नहीं तो दूसरे का त्याग ऐसा देखे तो जय महाराज.... जय महाराज...!

मुमुक्षु : नग्न तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्न (हो) तो क्या हुआ? अभी कहीं आया था। नग्न तो क्या हुआ? वह शब्दकोश में आया था। जिसे सम्यग्दर्शन का भान नहीं, वे सब नग्नो...

आहाहा! ...इसमें शब्द स्पष्ट डाला भाई ने। और दूसरे में कुछ डाला। दूसरे में। अष्टपाहुड़ में तो है, दूसरे में कहीं है। ऐसा नग्नपना क्या और उसके पंच महाव्रत के परिणाम भी क्या? आहाहा! जिसे (स्वयं) के लिये आहार बना हुआ ले, चौका करके ले, खबर है कि यह मेरे लिये बने हुए हैं। वहाँ व्यवहार का व्रत भी कहाँ है? नवनीतभाई! ऐई! स्वरूपचन्दभाई! तुम तो श्वेताम्बर थे। महेन्द्रभाई दिगम्बर। नहीं?

मुमुक्षु : .... दिगम्बर, यह श्वेताम्बर।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ न। तुम श्वेताम्बर थे न। आहाहा! मुनिमार्ग बापू! ऐसा सूक्ष्म है। ....सूक्ष्म बात है। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप आनन्द का नाथ अपने अनुभव में (आया), जिसे राग की और निमित्त की भी अपेक्षा नहीं, जिसे भगवान देव, गुरु और शास्त्र की अपेक्षा नहीं। ऐसी जो अन्तर की दशा सम्यग्दर्शन-निर्विकल्प प्रतीति और निर्विकल्प प्रतीति में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का वेदन साथ में (आवे).... आहाहा! उसे तो अभी सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन बिना व्रत, तप और चारित्र सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया? आहाहा! किसी व्यक्ति के स्वरूप के लिये (नहीं), वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! भाई! जिसमें चारित्र अर्थात् चरना। चरना अर्थात् स्थिर होना। जिस चीज़ में स्थिर होना है, उस चीज़ का ही जहाँ अनुभव नहीं। समझे? तो स्थिर होना आवे कहाँ से उसमें? राग की क्रिया है अकेली। आहाहा! और वह भी एक ही सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ मार्ग एक। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग है नहीं।

दूसरे का समन्वय करते हैं न? सबको अभी समान मानो। किसी के साथ विरोध नहीं। किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं, वैर नहीं, तिरस्कार नहीं, द्वेष नहीं। परन्तु वस्तु का स्वरूप हो वैसा तो जानना चाहिए न! महेन्द्रभाई! आहाहा! सब भगवान आत्मा है। तत्वैषु मैत्री। तत्त्व जीव रूप से तो मैत्री होती है। परन्तु उसकी पर्याय में भूल जो है, उसे तो बड़ी जैसी है, वैसी जाननी चाहिए। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रथम जहाँ दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह तो शुभराग

मैं करूँ और वह करनेयोग्य है। शास्त्र चरणानुयोग में ऐसा आवे। व्यवहारनय के ग्रन्थ में उसे पालता है, अतिचार टालता है, उस निर्मल व्रत को... ऐसा आता है। परन्तु इसका परमार्थ (क्या) ? वस्तु के स्वरूप में स्थिर होने पर, पूर्ण स्थिर नहीं हो सका, इसलिए ऐसे विकल्प आते हैं। वे आवें, उन्हें करे, ऐस भी नहीं। आहाहा! वह करे और उससे आत्मा का कल्याण होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु की अभी सम्यग्दृष्टि....

यहाँ कहा न पहले ? पर से भेदज्ञान ही जहाँ पहले नहीं, वहाँ स्थिर किसमें हो ? और हटे किसमें से ? समझ में आया ? रागादि की क्रिया से हटना है, हटना है और स्वभाव में स्थिर होना है। पर से खस, स्व में बस, यह टूंकुं टच। आहाहा! इस व्रत की क्रिया में से भी हट। यह राग है, आस्रव है, भाई! यह चारित्र नहीं, यह व्रत नहीं, यह संवर नहीं। आहाहा! ऐसे राग को पररूप जानकर, मुझे लाभदायक नहीं। आहाहा! मुझे लाभदायक तो स्वरूप की दृष्टि और स्थिरता, वही मुझे लाभदायक है। भगवान तीन लोक के नाथ को मैं मानूँ—ऐसा जो विकल्प, वह भी आत्मा को लाभदायक नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहा कि धर्म की प्राप्ति, स्वरूप की दृष्टि.... आहाहा! उसे लाभ के लिये पूर्व की मिथ्यात्वदशा का व्यय, वह भी इस लाभ के लिये मददगार नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा जो उसका स्वरूप ही, उसकी जाति में, ऐसी जाति ही उसकी है। वह कहीं भगवान ने किया नहीं ऐसा बन्धारण कि ऐसा तुमने किया, आओ यह मैं उसका कर्ता हूँ। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! यह भाषा की दशा होती है, वह भी आत्मा से नहीं होती।

एक व्यक्ति ने कहा था। यहाँ सुनने आया था। अहमदाबाद का श्वेताम्बर था। बाद में आया नहीं। यहाँ आया था, पन्द्रह दिन रहा था। .... सुना। वहाँ जाकर कहे कि महाराज! यह बोलता कौन है ? यहाँ का सुना हुआ सही न ? कि बोले वह आत्मा नहीं। बोले वह जड़ की भाषा। आहाहा! वहाँ सामने जवाब दिया, महाराज! यह बोलता कौन है ? कि तेरा बाप बोलता है ? कौन बोलता है ? तू बोलता है। ऐ.... स्वरूपचन्दभाई! अरे! भगवान! यह तेरा बाप बोलता है ? कौन बोलता है ? तू बोलता नहीं ? वह तो

बेचारा यहाँ से सुनकर गया हुआ। बहुत वर्ष की बात है, हों! २०-२५ वर्ष हो गये। दो व्यक्ति आये थे। श्वेताम्बर दो आये थे। आहाहा!

अरे रे! ऐसी भाषा आवे, वह सुनना तुझे रुचे नहीं? और हम बोलते हैं और हम भाषा करते हैं। अरे रे! यह तो मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादृष्टिपने की यह तो दशा है। आहाहा! उसे यहाँ कहते हैं कि जिसे सिद्धपने की जिज्ञासा है, जिसकी जिसे रुचि, उसका उसे नमस्कार होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सिद्धपद की प्राप्ति जो मेरी पूर्ण दशा, जो मेरी पूर्ण पदवी, जो मेरी पर्याय की पूर्ण स्थिति वह है। ऐसी दशा का जिज्ञासु, ऐसी दशा के प्राप्त को नमस्कार करता है। समझ में आया? आहाहा! **(ये सभी) सिद्धात्मा को नमस्कार करते हैं।**

सिद्ध शब्द से यहाँ अर्हंतादि का भी ग्रहण समझना... यह एकदेश अरिहन्त और वे सब सिद्ध ही हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु। आदि शब्द है न? **अर्हंतादि का भी ग्रहण समझना, क्योंकि उन्होंने भी देशतः (आंशिक) सिद्धस्वरूप प्राप्त किया है।** आहाहा! आचार्य, उपाध्याय, साधु और अरिहन्त उन्होंने भी.... अरिहन्त को भी अभी पूर्ण सिद्धदशा हुई नहीं। अभी उन्हें असिद्धभाव खड़ा है। चार अघातिकर्म का भाव है, तो एकदेश सिद्ध हुए हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **अर्हंतादि का भी ग्रहण समझना, क्योंकि उन्होंने भी देशतः (आंशिक) सिद्धस्वरूप प्राप्त किया है।** आहाहा! इसी प्रकार आचार्य, उपाध्याय, साधु वीतरागपने की दशा से उत्पन्न हुए हैं, वे सब एकदेश, एक भाग शुद्ध ही हैं। समझ में आया? यह सिद्ध को नमस्कार करते हुए उसमें पाँचों आ जाते हैं।

भावार्थ - ग्रन्थकार ने श्लोक के पूर्वार्ध में स्व-पर का भेदविज्ञान... है न? कहा न पहले, स्व-पर का भेदज्ञान **ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है—ऐसा सूचित किया है... 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।'** अभी तक जो कोई मोक्ष को प्राप्त हुए, वे सब दया, दान, व्रत, भक्ति के राग से भिन्न करके, अपने स्वरूप में स्थिर होकर भेदज्ञान करके प्राप्त हुए हैं। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव वह तो राग अशुद्ध है। आहाहा! उस मलिनभाव से सिद्धपद प्राप्त हुए हैं, ऐसा नहीं है।

उससे तो भिन्न करके अपने शुद्ध स्वभाव की निर्मलदशा प्रगट करके, पवित्रता प्रगट करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। समझ में आया?

भावार्थ - ग्रन्थकार ने श्लोक के पूर्वार्ध में स्व-पर का भेदविज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है—ऐसा सूचित किया है और उत्तरार्ध में.... दूसरे दो पद में। **फलस्वरूप परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप ऐसी सिद्धदशा....** यह सब पहले डाल गये हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य। **परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप ऐसी सिद्धदशा ही मोक्षस्वरूप है—ऐसा दर्शाया है,....** इस भेदज्ञान से प्राप्त होती दशा, वह मोक्षस्वरूप है, वह उसका फल है। वह उपेय है। सिद्धदशा, वह उपेय है और भेदज्ञान, वह उपाय है। उपाय और उपेय, आता है न? समयसार में पीछे आता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा में जो मोक्षदशा की जिज्ञासावाले, उन्होंने जो उपाय कहा, वह शुद्ध किया। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि के भाव भी अशुद्ध है। आहाहा! राग है। उससे भिन्न करके मोक्ष का उपाय किया। उसके आदरकर-रहकर मोक्ष का उपाय किया, ऐसा नहीं। आहाहा! पहले ही अभी दिक्कत। जरा राग की मन्दता—शुभभाव करे तो इतनी तो शान्ति तो आवे! ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! यह शुभराग स्वयं ही अशान्ति है। भगवान का स्मरण करना, भक्ति और पूजा और यात्रा का भाव स्वयं ही अशान्ति है। उसे खबर कहाँ है। आहाहा! आता है, पूर्ण वीतराग न हो, उसे यह आता है, परन्तु आवे वह हेय है। साधकपने में मददगार वह नहीं है। आहाहा! अरे! कहाँ इस बात को....

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की पर्याय की प्राप्ति, उसे देव-गुरु की अपेक्षा नहीं और देव-गुरु की श्रद्धा का विकल्प भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने को कारण नहीं। आहाहा! अरे! वह तो नहीं, परन्तु मिथ्यात्व का व्यय, वह है; इसलिए सम्यक् पर्याय उत्पन्न हुई—ऐसा भी नहीं है। आहाहा! और वह सम्यक् पर्याय उत्पन्न हुई, भेदज्ञान की दशा, वह वस्तु ध्रुव है, त्रिकाल ध्रुव है, इसलिए वह पर्याय ध्रुव के आश्रय से हुई, ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहा!

'**भूदत्थमस्सिदो खलु**' (समयसार) ११वीं गाथा में आया न? भूतार्थ के आश्रय

से समकित (होता है)। आहाहा! वह भी व्यवहार है। समकित की पर्याय समकित की पर्याय से होती है, वह ध्रुव से भी है नहीं। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग! ऐसी वस्तु की स्थिति है, ऐसी वस्तु की मर्यादा है। समझ में आया? वह मर्यादा ज्ञान में आवे नहीं और उसे धर्म हो जाये.... आहाहा! ऐसे तो पंच महाव्र पालन किये, पंच समिति और गुप्ति और जैन का दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, मुनिव्रत धार....' मुनिव्रत सच्चा, हों! व्यवहार से। पंच महाव्रत, पंच समिति, गुप्ति, अचेल—नग्नदशा, निर्दोष आहार-पानी लेने की वृत्ति, उसके लिये बनाया हुआ (आहार) प्राण जाये तो भी न ले। ऐसा 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' ऐसी मुनिपने की क्रिया से स्वर्ग में गया—अन्तिम ग्रैवेयक में (गया)। 'पै (निज) आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु भगवान आत्मा के स्पर्श बिना.... आहाहा! चिदानन्दस्वरूप का स्पर्श नहीं, वेदन नहीं। तो कहते हैं कि यह पंच महाव्रत के परिणाम और मुनि व्रत, वह सब दुःखरूप था। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' वह सुख नहीं था; वह तो दुःख था। आहाहा! गजब बात है।

यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं कि जितना त्याग करो उतना धर्म। परन्तु किसका? मिथ्यात्व का या पर का? पर का तो ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! पर को मैं छोड़ता हूँ और यह मैं शुभराग को अंगीकार करता हूँ। यह वस्तु में कहा है? आहाहा! ऐसी चीज़ की अन्तर्दृष्टि होनेवाले को, कहते हैं, यह मोक्षस्वरूप बताया उसे। अन्तर्दृष्टि का स्वरूप बताया और उसके फलरूप से मोक्ष बताया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण अमावस्या, शुक्रवार, दिनांक १३-१२-१९७४, श्लोक-१, प्रवचन-३

समाधितन्त्र। इसका—पहली गाथा का विशेष है। **आत्मा, आत्मारूप से है और शरीरादि परपदार्थोंरूप नहीं....** देखो! उसमें कितना आया! **आत्मा आत्मारूप से है....** परिपूर्ण। वीर शासन—जैन शासन की विशेषता यह है कि प्रत्येक आत्मा परमात्मस्वरूप है और परमात्मस्वरूप हो सकता है। समझ में आया? आत्मा, आत्मा रूप से है। पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वभाव स्वरूप है और यह रागादि पर स्वरूप नहीं, यह अनेकान्त है। अभी यह चारों ओर चलता है न, देखो न! यह २५०० वर्ष का। भगवान का मार्ग अनेकान्त है, अपरिग्रहवाद है और अहिंसा है। अर्थात् क्या?

यह आत्मा आत्मारूप है। भेदविज्ञान बताया है न पहला? आत्मा अपने स्वरूप से पूर्ण है और यह रागादि या एक समय की पर्याय से नहीं, यह अनेकान्त वास्तविक है। समझ में आया? और यह अहिंसा स्वरूप है। पूर्ण स्वरूप जो है, आत्मा आत्मारूप से है, ऐसा जो पूर्ण स्वरूप, उसका स्वीकार होना, यही अहिंसा अर्थात् जैसा है जीवन उसका, उसने उस प्रकार से स्वीकार किया, माना, इसका नाम अहिंसा है। कहो, नवरंगभाई! ऐसी बात है। और अपरिग्रहवाद भी यह। एक विकल्पमात्र की भी पकड़ स्वरूप में नहीं है। यह आत्मा आत्मारूप से है, उसमें यह बात आ जाती है। समझ में आया?

यह **शरीरादि परपदार्थोंरूप नहीं....** आहाहा! उसमें एक दया, दान और भक्ति का विकल्प उठे, वह भी आत्मा में नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! क्योंकि वह परस्वरूप विभाव है। वह पूर्ण स्वरूप चैतन्यमूर्ति भगवान एक ही आत्मा स्वयं परमात्मा होने की शक्तिवाला है। कब? परमात्मस्वरूप हूँ, पूर्णानन्दस्वरूप हूँ—ऐसा स्वीकार होने पर। मेरी परमात्मस्वरूप सामर्थ्य है कि मैं स्वयं परमात्मा हो सकता हूँ। मुझे परमात्मा होने में कोई यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम वे मुझे सहायक-बहायक नहीं है। आहाहा! ऐसी बात बहुत सूक्ष्म, बापू! समझ में आया? यह अनेकान्त है। आहाहा! लोगों को तो ऐसा बाहर की प्रवृत्ति दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, वह मानो धर्म हो, ऐसा अज्ञानी ने अनादि से मान लिया है। जो वह करना चाहता है,

ऐसी क्रिया का राग वह स्वरूप में नहीं है। परस्वरूप है। समझ में आया?

यह कहते हैं, **आत्मा, आत्मारूप से है और शरीरादि परपदार्थोंरूप नहीं....** आहाहा! देखो! यह अनेकान्त। यह अनेकान्त है। यह आत्मा अपने स्वभाव से परिपूर्ण है, ऐसा अन्तर स्वीकार सम्यग्दर्शन में होना और अपूर्ण तथा रागरूप मैं नहीं.... आहाहा! ऐसी जो अन्तर में स्व की, पूर्ण की अस्ति-सत्ता के स्वीकार में पूर्ण अस्तित्व और अपूर्ण पर्याय और रागादिरूप नहीं होनापना उसमें.... आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा!

दुनिया को तो ऐसा कठिन पड़ता है। बाहर की बातें लगाकर बैठानी हैं। कुछ व्रत पालना, दया पालना, कहीं अपवास करना, वह धर्म है—ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! कहते हैं कि वह वस्तु मैं ऐसा करूँ.... ऐसा करूँ.... ऐसा जो विकल्प-राग है, वह परवस्तु है। चन्दुभाई! आहाहा! वह विकल्पमात्र जो दया, दान या व्रत-भक्ति का है, उसका स्वरूप मुझमें नहीं है, ऐसी जो उसकी पकड़ छूट जाना, उसका नाम निवृत्तस्वरूप भगवान आत्मा अपरिग्रहस्वरूप है। आहाहा! मार्ग ऐसा है। और अभी तो यह २५०० वर्ष के नाम से हो हा... हो हा... कितने लेख आते हैं। वह एक शुभभाव है। भगवान का....परन्तु वह शुभभाव स्वयं धर्म नहीं है। समझ में आया? उस शुभभावस्वरूप आत्मा नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह शुभभाव तो आस्रव है। उस आस्रवस्वरूप आत्मा नहीं है। वह तो ज्ञान और आनन्द और शान्तिस्वरूप है। ऐसा जो स्व-पर का भेदज्ञान, वही आत्मा को मोक्ष का उपाय है। समझ में आया?

तथा शरीरादि परपदार्थ, पररूप से हैं.... आहाहा! वास्तव में तो एक समय की पर्याय जो है, वह भी परद्रव्यस्वरूप है, स्वद्रव्यस्वरूप नहीं। आहाहा! होता है ज्ञानी को राग। समझ में आया? परन्तु उस राग की उसे पकड़ नहीं। वह राग मैं हूँ और उस राग से मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यादृष्टिपना जिसे छूट जाता है। समझ में आया? यह शरीरादि, विकल्पादि पर पदार्थ पररूप हैं। **और आत्मारूप से नहीं...** समझ में आया? भगवान की भक्ति का विकल्प उठे नाम स्मरण, अरिहन्त का नाम स्मरण हो, वह भी एक विकल्प-राग है। वह आत्मा नहीं है। आहाहा! यह वह कहीं गले उतरना! वे

परपदार्थ पररूप हैं। हैं अवश्य। और वे आत्मारूप नहीं। आहाहा! भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञान और शान्ति और आनन्द से परिपूर्ण भरपूर पदार्थ, उसरूप वे रागादि नहीं। समझ में आया?

ऐसे निर्णयपूर्वक.... ऐसा निर्णयपूर्वक। अर्थात् कि आत्मा पूर्ण शुद्ध है, ऐसा अन्तर्मुख होकर अनुभूति में निर्णय करना। आहाहा! **स्व-पर का भेदविज्ञान,....** ऐसा जो स्व-पर का भेद अर्थात् भिन्नता का ज्ञान। रागादि व्रत का विकल्प उठे दया-दान, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ऐसे पंच महाव्रत का जो विकल्प उठे, वह भी राग है, वह आस्रव है, वह बन्ध में जाता है, वह परपदार्थ में जाता है। समझ में आया? ऐसे अन्तर में स्वभाव की परिपूर्णता का स्वसन्मुख में निर्णय, परवस्तु उसमें नहीं—ऐसा निर्णय उसमें नास्ति का आ जाता है। आहाहा! उसे यहाँ भेदविज्ञान कहते हैं।

अरे! वीतराग के बहाने कुछ चला है जगत में। आहाहा! अजैन को जैनपना मनाया है और मानते हैं कि हम जैन हैं। आहाहा! समझ में आया? और हम अनेकान्तवादी है। राग से भी होता है और स्वभाव से भी होता है, ऐसे अनेकान्तवादी हैं। व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार, व्यवहार परपदार्थरूप है। वह स्वपदार्थरूप नहीं। ऐसा पर से भेदज्ञान अन्तर अनुभव में निर्णय होना, अनुभूति होकर निर्णय होना, ऐसा कहते हैं। भेदज्ञान हुआ न? वह **सिद्धपद की प्राप्ति का-मोक्षप्राप्ति का उपाय है।** लो! यह मोक्ष का मार्ग है। बाकी दूसरा मार्ग माने, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। वे जैन नहीं, उन्हें जैन की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्री समयसार, गाथा २ की टीका में भी लिखा है— आहाहा! आता है न दूसरी गाथा में? **सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ - ऐसे केवलज्ञान को....** सब पदार्थों को जानने में, प्रकाशित करने में समर्थ ऐसी जो केवलज्ञान दशा, केवलज्ञान दशा, अरिहन्तदशा को **उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति उदय पाती है।** आहाहा! वह केवलज्ञान जो मोक्षपद, उसे उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति। चैतन्य पूर्ण स्वरूप में एकाग्रता और अपूर्णता और राग का नकार—निषेध अन्दर नास्ति का परिणमन,

आहाहा! ऐसी भेदज्ञानज्योति उदय होती है। वह मोक्ष का कारण होती है। वह केवलज्ञान को उत्पन्न करने का कारण है। आहाहा! कहो, ऐसा वाद-विवाद करे तो कहीं मिलान खाये ऐसा नहीं है, भाई! आहाहा! ऐसा मार्ग अन्दर का है। कितनों को तो यह सुनने को मिला नहीं, अभी कान में पड़ा नहीं। जैनधर्म अर्थात् क्या? जीतना कहो या भेदज्ञान करना कहो। समझ में आया?

'सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ - ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति.... स्व और पर की भिन्नता ऐसी ज्ञानज्योति चैतन्य सम्यग्दर्शन में प्रगट होती है। आहाहा! यह केवलज्ञान अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है। समझ में आया? **इस प्रकार भेदज्ञान ज्योति ही....** भाई ने स्पष्टीकरण किया है। छोटभाई ने? छोटालाल गुलाबचन्द। गुलाबचन्द न? अर्थ उन्होंने किया है। **इस प्रकार भेदज्ञान ज्योति ही....** यह तो एकान्त कर दिया, लो। जो व्यवहार कहते हैं न दया, दान, व्रत, भक्ति, तप और तपस्या, वह तो सब विकल्प है, राग है। यह मानता है कि यह मेरी तपस्या है और मेरा.... वह विकल्प है। उससे भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान। उसे रखकर केवलज्ञान हो या उससे हो, (ऐसा नहीं है)। उससे भिन्न पड़कर (होता है)। आहाहा! अपूर्व बात है, बापू! उसका अचिन्त्य और अपूर्व स्वरूप है। पर से भिन्न पड़कर स्व में एकाग्र होना, स्व जिसे कहते हैं आत्मा, आनन्द और ज्ञान में एकाग्र होना और राग से अभावरूप परिणमना, ऐसी भेदज्ञान ज्योति, केवलज्ञान प्रगट करने का एक उपाय है। यह वीतराग का मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं। आहाहा! उनके नाम से अभी इतने घोटाले चले हैं। बेचारे को खबर नहीं होती। वाडा में उलझकर पड़े। प्रेमचन्दभाई! प्रेमचन्दभाई कहते थे बेचारे यह ७० वर्ष-७१ वर्ष पानी में गये तुम्हारे, यह भान बिना। वहाँ तो सेठिया में गिने जाते। बाप, काका को। उनके काका के घर में आये हैं न वे? ....भाई के। आहाहा!

अरे! भाई! वीतरागमार्ग बापू! अपने में से प्रगट होता है या पर से होता है? स्वयं कौन है, उसे जाने बिना किसमें से आवे यह बात? स्वयं भगवानस्वरूप चैतन्य परमात्मा स्वयं ही आत्मा परमात्मा है। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप विराजमान प्रभु है। आहाहा! उसकी अन्तर में राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञान की ज्योति प्रगट होना, वह

भेदज्ञानज्योति ही मोक्ष का उपाय है। यहाँ तो उपाय से उपेय मिले, ऐसा कहना है न? समझ में आया?

प्रवचनसार में १०१ गाथा में कहा, वह दूसरे प्रकार से है। वहाँ तो मोक्ष की पर्याय जो उत्पन्न हो केवलज्ञान की, वह स्वयं से होती है। वह पूर्व के भेदज्ञान से भी नहीं। आहाहा! भेदज्ञान की दशा जो मोक्षमार्ग की पर्याय, उसका व्यय होता है। उस व्यय के कारण केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का कहीं है नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा का यह कथन और उस प्रवचन का यह सार है। यह सिद्धान्त का यह सार है।

हमारे हीराजी महाराज बेचारे कहते थे, '**अहिंसा समयं चेव एयावत्त वियाणिया एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम** ' बहुत कषाय मन्द थी। स्थानकवासी में ऐसी क्रिया नहीं थी, ऐसी उनकी क्रिया थी। थे गरीब मनुष्य में से हुए, परन्तु फिर थोर (काँटेवाली वनस्पति) पर केला लगा। बहुत शान्त। तुमने देखा है? नहीं देखा। (संवत्) १९७४ में तो गुजर गये। मनुभाई ने तो कहाँ से देखे हों? बाबूभाई ने देखे नहीं तो। ७४ में गुजर गये। वे तो ऐसा कहते थे, हों! हजारों लोग उनका व्याख्यान सुनें मोरली की भाँति। भाई ने तो देखे थे, नहीं? ७१ में।

मुमुक्षु : राजकोट आये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजकोट आये थे ७१ में। ठाकरसीभाई ने प्रार्थना की। ७१ के वर्ष में चातुर्मास की। शान्त। परन्तु यह उनकी श्रद्धा। '**एवं खु णाणिणो सारं**'—ज्ञानी का यह सार है कि '**जं न हिंसइ किंचणम**' किसी भी प्राणी को नहीं मारना, यह ज्ञानी का सार है। वे ऐसा कहते थे। '**अहिंसा समयं चेव**' किसी भी प्राणी को नहीं मारना, यह सिद्धान्त का सार है। '**एयावत्त वियाणिया**' यह जाना, उसने सब जाना। शान्ति से कहते, धीरे से। परन्तु खबर नहीं वस्तु की। क्या करे? आहाहा! पोपटभाई! देखे थे? तुमने नहीं देखे होंगे। बहुत वर्ष हो गये। ७४ में गुजर गये। ७४। २६ और ३०। यह तो अब ३१ हुए न? ५७ वर्ष हो गये, गुजर गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सर्वज्ञ के सिद्धान्त का यह सार है कि.... आहाहा! ऐई!

मलूकचन्दभाई! तुमने तो सुने थे। तुमने भी देखे होंगे। यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु स्वभाव जो पूर्णानन्द ज्ञानस्वरूप है, उसे राग के विकल्प से भिन्न करके जो भेदज्ञान अथवा स्वरूप का अभेदज्ञान (और) राग से भेदज्ञान... आहाहा! यह सिद्धान्त का सार और यह मोक्षमार्ग है। पर को न मारना, मारने की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! पर को मारना, ऐसा मान सकता है, वह भी मिथ्यादृष्टि है। उसे जैन की खबर नहीं। पर की दया पाल सकता हूँ, वह भी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, जैन नहीं। आहाहा! क्योंकि परपदार्थ की अवस्था का होना, वह आत्मा से होता है, ऐसा मानते थे, जैसे ईश्वर जगत का कर्ता मानते हैं, वैसे इसने पर की दया पाल सकता हूँ (ऐसा) माना, दोनों की श्रद्धा एक ही समान है। आता है न भाई? वहाँ छह काय का फल सर्वविशुद्ध में आता है न। ईश्वर कर्ता मानते हैं और यह छह काय के जीव की मैं रक्षा कर सकता हूँ, ऐसा मानते हैं, वे दोनों एक सरीखे मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार भेदविज्ञान ज्योति ही केवलज्ञान प्रगट करने का साधन / उपाय है।

स्व-पर का—जीव-अजीव का भेदविज्ञान.... अर्थात् क्या कहते हैं अब? **प्रथम तो दुःख दूर करने के लिये स्व-पर का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। यदि स्व-पर का ज्ञान न हो तो अपने को पहिचाने बिना, अपना दुःख कैसे दूर करे?** आहाहा! स्वयं जो दुःखस्वरूप है—ऐसा माने, वह दुःख को कैसे टाल सकेगा? परन्तु आत्मा दुःख के भावरहित आत्मा है, दुःख की दशा अर्थात् राग की दशा, विकल्प की दशा, वह दुःखदशा, उससे भगवान रहित है। ऐसे यदि स्व को जाने तो पर को टालने का उपाय वहाँ रहे। दुःख को नाश करने का उपाय रहे। परन्तु दुःख राग और स्वयं—दोनों (एकरूप) अपने को माने तब तो पर को टालने का वहाँ रहा नहीं। वह तो स्वयं है, ऐसा इसने माना। आहाहा! समझ में आया?

अपना दुःख दूर करने के लिये पर का उपचार करे.... लो! अपने को पहिचाने बिना **अपना दुःख कैसे दूर हो? अथवा स्व-पर को एक जानकर,....** देखा! राग और आत्मा दोनों एक जाना। **अपना दुःख दूर करने के लिये पर का उपचार करे...** आहाहा! राग की सम्हाल करे, वह वृत्ति का उत्थान होता है यह करना.... यह करना.... दया

पालूँ.... व्रत पालूँ.... अपवास करूँ, यह तो सब वृत्ति का उत्थान है, राग है, यह तो पर है। आहाहा!

स्व-पर को एक जानकर, अपना दुःख दूर करने के लिये पर का उपचार करे.... क्योंकि पर से भिन्न जाने नहीं और पर को तथा अपने को एक माने तो पर का उपचार करे। **उससे अपना दुःख कैसे दूर हो ?** बहुत सादी भाषा में (बात है) **अथवा अपने से भिन्न ऐसे पर में, यह जीव अहंकार-ममकार करे....** अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव है, ऐसा न जाने और राग में अहंकार करे, राग विकल्प उठे, वह भी मैं हूँ। आहाहा! वह मैं हूँ और वह मेरा है। ऐसा अहंकार-ममकार। दया का, दान का, व्रत का, अपवास का विकल्प, वह तो विकल्प है। ऐसा करूँ, अपवास करूँ, ऐसा करूँ, वैसा करूँ। इस विकल्प को अपना जाने, भिन्न न माने तो उसे ही रखने का प्रयास करे। आहाहा! कहो, जेठाभाई! ऐसी वस्तु बहुत सूक्ष्म। इसमें किसी के साथ चर्चा करे तो पार आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अथवा अपने से भिन्न ऐसे पर में, यह जीव अहंकार-ममकार करे तो उससे दुःख ही होता है;.... राग का विकल्प, पुण्य का विकल्प, दया-दान का विकल्प, उसे अपना माने और मैं उसका और वह मेरा, यह तो दुःख ही होता है, मिथ्यात्व होता है। मिथ्यात्व होता इसलिए दुःख ही होता है। आहाहा! **अतः स्व-पर का ज्ञान होने पर दुःख दूर होता है।** स्व अर्थात् चैतन्यमूर्ति भगवान, पर अर्थात् विकल्प और रागादि, शरीरादि, कर्मादि सब पर। दोनों का भेदज्ञान होने पर दुःख दूर होता है। आहाहा!

अब, स्व-पर का ज्ञान, जीव-अजीव का ज्ञान होने पर ही होता है, क्योंकि स्वयं जीव है तथा शरीरादिक अजीव हैं। जड़ है। उसकी क्रिया ऐसी हलन-चलन हो, ऐसा हो, वह तो सब जड़ की क्रिया है। उसे ऐसा माने कि मैंने शरीर को ऐसे हिलाया, मैंने दूसरे की दया पालन की, मैंने जीव को बचाया। वह सब क्रिया तो जड़ की है। उसे अपना माना। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मार्ग वीतराग का कुछ रह गया और लोग बेचारे कुछ (दूसरे) रास्ते चढ़ गये। ऐसे जिन्दगी चली गयी। आहाहा!

यदि लक्षणादिक द्वारा जीव-अजीव की पहिचान हो... जीव का लक्षण जानना-

देखना, आनन्द; राग का लक्षण आकुलता और दु:ख; शरीरादि का लक्षण अजीव और जड़। आहाहा! इस प्रकार **यदि लक्षणादिक द्वारा जीव-अजीव की पहिचान हो तो ही स्व-पर का भिन्नपना भासित हो; अत: जीव-अजीव को जानना चाहिए।** इसलिए जीव और अजीव (जानना चाहिए)। (मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ७८, हिन्दी आवृत्ति)। उसमें से डाला है। नीचे लिखा है न।

अब **भेदविज्ञान की आवश्यकता....** अजीव और जीव की भिन्नता की आवश्यकता। **सर्व दु:खों का मूलकारण मिथ्यादर्शन....** सर्व दु:खों का मूलकारण मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्या-आचरण। आहाहा! **इन सर्व दु:खों का अभाव करने के लिये इसे (जीव को) दो प्रकार का भेदविज्ञान कराया जाता है।**

पहले प्रकार का भेदविज्ञान - जीव, अपने गुणों और पर्यायों से एक है,... देखा? भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्द गुण और उसकी निर्मल पर्याय, उनसे एक है। **अभिन्न है....** एकत्व-विभक्त कहा है न? **तथा परद्रव्यों, उनके गुणों और पर्यायों से अत्यन्त भिन्न है,....** आहाहा! रागादि और शरीरादि की क्रिया और पर्याय से अत्यन्त भिन्न है। **अर्थात् जीव....** यहाँ अपने को चतुष्टयरूप सिद्ध करना है न? **स्वद्रव्य से....** गुण-पर्याय का पिण्ड, वह स्वद्रव्य। **स्वक्षेत्र से....** असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र। **स्वकाल से....** उसकी समय की पर्याय **स्वभाव से,....** उसके त्रिकाली शक्ति के गुण। आहाहा! ऐसे **स्वद्रव्य से, स्वक्षेत्र से, स्वकाल से और स्वभाव से, परद्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अत्यन्त भिन्न है;....** आहाहा! यह सप्तभंगी पहले की। अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति है, पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्ति है। स्वयं चैतन्यस्वरूप है, उसका वह द्रव्यपना गुण और पर्याय का पिण्ड। उसका क्षेत्रपना असंख्य प्रदेशी, उसका कालपना वर्तमान अवस्था, उसका भावपना त्रिकाली शक्ति। अब यह भी सुना न हो, अब उसे जीव का ज्ञान, अजीव का ज्ञान। आहाहा! स्वक्षेत्ररूप से, स्ववस्तुरूप से, स्वकालरूप से, स्वभावरूप से है। और परकाल शरीर, वाणी, मन, कर्म और रागादि के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से वह नहीं है।

अत: इस अपेक्षा से परद्रव्य, उनके गुण.... उसकी शक्ति **तथा उनकी पर्यायों के**

साथ का सम्बन्ध, मात्र व्यवहारनय से संयोगरूप अथवा निमित्तरूप है.... लो! **ऐसा ज्ञान कराया जाता है।** यह पहला भेदज्ञान। **इस दृष्टि से परद्रव्यों के साथ का सम्बन्ध, असद्भूत-असत्य होने से, उस सम्बन्धी ज्ञान करानेवाले नय को व्यवहारनय कहा जाता है....** आहाहा! **और जीव के द्रव्य, गुण, पर्याय अपने होने से सद्भूत-सत्य होने से उस सम्बन्धी का ज्ञान करानेवाले नय को निश्चयनय कहा जाता है।** परद्रव्य से भिन्न बतलाना है न। समझ में आया?

दूसरे प्रकार का भेदविज्ञान.... ...प्रकार का कहा। **किन्तु पहले प्रकार के भेदज्ञान करनेमात्र से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं हो जाता।** क्योंकि पर्याय की अशुद्धता का ज्ञान करना चाहिए न इसे? **अनादि से जीव की पर्याय, अशुद्ध है।** अनादि काल से कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में उसकी दशा में मलिनता है-अशुद्धता है। पुण्य-पाप के भाव की मलिनता उसकी पर्याय में है। आहाहा! **उसे अपने में होती होने की अपेक्षा से 'निश्चयनय' का विषय कहते हैं,....** देखा! अपने में होता है न, इस अपेक्षा से। **तथापि वह पर के आश्रय से होती होने की अपेक्षा से, उसे व्यवहारनय का विषय भी कहा जाता है....** आहाहा! पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध, ऐसे जो विकल्प मलिन दशा वह उसमें है, उसकी है, इस अपेक्षा से निश्चय कहा जाता है। परन्तु त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से उस मलिनता को व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया?

तथा शुद्धपर्यायें भी जीव का त्रिकालीस्वरूप नहीं हैं.... देखा! शुद्धपर्यायनिर्मल हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की स्वभाव के आश्रय से होनेवाली निर्मल दशा, वह भी त्रिकाली स्वरूप नहीं है, वह तो एक समय की दशा है। आहाहा! **उनके आश्रय से व गुणभेद के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होते हैं;....** एक तो एक कहा कि निर्मल दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो द्रव्य के आश्रय से होती है, इसलिए वह त्रिकाली स्वरूप नहीं है। एक समय की दशा है। **उनके आश्रय से....** निर्मल पर्याय का आश्रय करने जाये तो राग उठता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो पर्याय निर्मल प्रगट हुई, उसका आश्रय करने जाये तो पर्याय है तो राग उठता है। यह तो बहुत सरल सीधा है।

इसलिए उनका आश्रय छुड़ाने की अपेक्षा से उन्हें भी व्यवहार कहा जाता है.... मलिन पर्याय अशुद्ध है, वह अपनी है, इस अपेक्षा से निश्चय कहा परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से उसे व्यवहार कहा। उस स्वभाव की अपेक्षा से। अब निर्मल दशा होती है.... आहाहा! मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है, राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन और ज्ञान स्वभाव के अभिन्नपने से प्रगट होते हैं, वह भी एक समय की पर्याय है। इसलिए भी व्यवहार। और उसके आश्रय से विकल्प उठता है, पर्याय के आश्रय से लक्ष्य करे तो। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य करे, तब तो विकल्प उठे (परन्तु) निर्मल पर्याय का लक्ष्य करने जाये, उसका आश्रय करे तो विकल्प.... आश्रय करने जाये तो विकल्प उठे। समझ में आया?

इसलिए उनका आश्रय छुड़ाने की अपेक्षा से.... पर्याय की निर्मल दशा को भी **व्यवहार कहा जाता है....** आहाहा! इसमें तो सादी भाषा है, गुजराती है। इसमें किसी को लेखा लिखने जैसा नहीं है परन्तु इसे दरकार नहीं, दरकार नहीं। आहाहा! मेरा क्या होगा? मैं कहाँ हूँ? और क्या हो रहा है? उसके फल में-हो रहे उसके फल में क्या आयेगा? आहाहा! यहाँ तो त्रिकाली शुद्ध स्वभाव नित्यानन्द प्रभु का आश्रय लेने से धर्म होता है। इसलिए द्रव्य का आश्रय करना और पर्याय का आश्रय छोड़ना। अशुद्धता तो छोड़ना परन्तु शुद्ध निर्मलदशा हो, उसका भी आश्रय छोड़ना। आहाहा! धर्म करनेवाले जीव को धर्म की पर्याय का भी आश्रय छोड़ना, ऐसा कहते हैं। क्योंकि धर्म की पर्याय एक समय की दशा है। समझ में आया? वह त्रिकाली स्वरूप नहीं है।

और जीवद्रव्य का त्रैकालिक शुद्धस्वरूप जो कि ध्रुव है, उसे निश्चय कहा जाता है.... त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु, वही सत्यार्थ है, वही भूतार्थ है, वही विद्यमान सत्य निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? **क्योंकि उसके आश्रय से ही धर्म प्रारम्भ,....** नित्य ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा के आश्रय से धर्म प्रगट होता है, उसकी शुरुआत हो **उसका टिकना, उसकी वृद्धि और पूर्णता होती है।** पूर्ण शुद्ध ध्रुव वस्तु का आश्रय करने से धर्म की शुरुआत होती है, उसकी वृद्धि होती है, वह धर्म टिका रहे त्रिकाली के आश्रय से। आहाहा! **और पूर्णता होती है।** त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य नित्यानन्दस्वरूप प्रभु, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है और वह धर्म उसके आश्रय से टिका

रहता है और उसके ध्रुव के आश्रय से धर्म की वृद्धि होती है और उस ध्रुव के आश्रय से धर्म की परिपूर्णता होती है। यह तो सादी बात है। बहुत सादी भाषा है।

मुमुक्षु : भाव ऊँचे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले भाव चाहे जो हो। आहाहा!

अब कहते हैं, **सिद्धात्मा को नमस्कार किसलिए ?** सिद्ध को नमस्कार किया न पहला ? कि **सिद्ध भगवन्तों....** समयसार का (आधार देते हैं)। **सिद्धपने के कारण,....** सर्वज्ञ परमेश्वर सिद्ध णमो सिद्धाणं। जिन्हें पूर्ण आनन्द की दशा, ज्ञान की दशा पूर्ण प्रगट हुई। ऐसे जो सिद्ध भगवान—णमो सिद्धाणं, उन्हें नमस्कार क्या ? किसलिए ? **सिद्धपने के कारण, साध्य जो आत्मा,...** साधना है वह आत्मा। पूर्ण करना है तो आत्मा को न ? **साध्य जो आत्मा, उसके प्रतिच्छन्द (प्रतिबिम्ब) के स्थान पर हैं,....** हे सिद्ध भगवान! आप पूर्ण हो। ऐसी ध्वनि उठे तो सामने (ध्वनि) होती है कि हे आत्मा! तुम पूर्ण हो। प्रतिच्छन्द-आवाज आवे न सामने से ? प्रतिध्वनि पड़े। प्रतिघात। हे परमात्मा! सिद्धा सिद्धिम मम् दिसंतु। आता है न ? सिद्ध परमात्मा केवलज्ञानी प्रभु आप पूर्ण हो। मुझे सिद्धपद दिखलाओ। सामने ध्वनि आती है, तू पूर्ण है, तू सिद्धपद को देख। आहाहा! मूल तो सम्यग्ज्ञान और दर्शन बिना यह सब गड़बड़ उठी है। मूल पाया खोटा और फिर सब उठे ऊपर से, यह किया और वह किया और धूल की। ऐसी की ऐसी भटकन अनादि से रही है। मूल हाथ नहीं आया।

साध्य जो आत्मा, उसके प्रतिच्छन्द (प्रतिबिम्ब) के स्थान पर हैं, जिनके स्वरूप का संसारी भव्यजीव चिन्तवन करके,.... सिद्ध समान सदा पद मेरो। आता है न यह ? 'चेतन रूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मैं तो त्रिकाल शुद्ध स्वरूप ही हूँ। यदि सिद्धस्वरूप न हो तो सिद्ध की पर्याय आयेगी कहाँ से ? कहीं बाहर से आनेवाली है ? आहाहा! चौसठ पहरी, छोटी पीपर में चौसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। तो उसकी दशा में चौसठ पहरी चरपराहट बाहर आती है। उसी प्रकार पूर्ण परमात्मदशा आत्मा में है। आहाहा! तो वह परमात्म पूर्ण दशा प्रगट होती है। आहाहा!

यह संसारी जीव सिद्ध समान अपने स्वरूप को विचारकर, **चिन्तवन करके, उन**

समान अपने स्वरूप को ध्याकर,.... मैं पूर्ण शुद्ध सिद्ध समान हूँ, ऐसी अन्तर्दृष्टि करके, उसके स्वरूप का ध्यान करके **उनके जैसे हो जाते हैं......।** सिद्ध का ध्यान करके सिद्ध जैसे हो जाता है। आहाहा! मैं सिद्ध हूँ, ऐसा ध्यान करके, हों! सिद्ध पर लक्ष्य रखकर, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : उन समान अपना स्वरूप।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। सिद्ध के ऊपर लक्ष्य रखे कि यह सिद्ध है, वह तो विकल्प है। आहाहा! परन्तु यह कहते हैं न कि साध्य जो आत्मा। सिद्ध करना है पूर्ण आत्मा को, ऐसा जो साध्य आत्मा, उनके स्थान में सिद्ध परमात्मा प्रतिच्छन्द के स्थान पर है। आहाहा! यह समयसार की भाषा है।

संसारी को शुद्ध आत्मा, साध्य है.... देखा! शुद्ध पूर्ण पवित्र आत्मा, वह साध्य है। उपाय उपेय आता है न? उपेय कहो या साध्य कहो। शुद्ध आत्मा वह संसारी का साध्य है। पूर्ण शुद्ध पूर्ण पवित्र, पूर्ण केवलज्ञानादि से प्राप्त, ऐसा जो शुद्ध आत्मा उस आत्मा को साध्य-प्रगट—करनेयोग्य वह है। **सिद्ध, साक्षात् शुद्धात्मा हैं;....** सिद्ध को तो वर्तमान दशा में ही पूर्णता प्रगट हो गयी है। साक्षात् है। **इस कारण उन्हें नमस्कार करना उचित है।** इसलिए उन सिद्ध भगवान को नमस्कार करना वह उचित है।

मोक्षमार्गप्रकाशक के (पहले अध्याय में) पृष्ठ २ में सिद्धभगवान का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि— मोक्षमार्ग (प्रकाशक) का आधार दिया। **जिनके ध्यान द्वारा भव्य जीवों को स्वद्रव्य-परद्रव्य का, औपाधिकभाव....** सिद्ध में जो नहीं, वह मुझमें नहीं, ऐसा उपाधिकभाव का ख्याल आता है। सिद्ध में नहीं राग नहीं दया, दान, व्रत, भक्ति का कोई विकल्प वह नहीं। तो मैं भी उनके जैसा हूँ। मुझमें भी वह है नहीं। आहाहा!

जिनके ध्यान द्वारा भव्य जीवों को स्वद्रव्य-परद्रव्य का, औपाधिकभाव.... स्वद्रव्य-परद्रव्य उपाधिभाव **तथा स्वाभाविकभावों का विज्ञान होता है; जिसके द्वारा स्वयं को सिद्धसमान होने का साधन होता है;....** देखा! उसमें राग नहीं, पुण्य नहीं, दया, दान का, व्रत का विकल्प नहीं उन्हें। वह तो उपाधिभाव है। उनका विचार करने

से वह उपाधिभाव है, तो मुझमें भी वह नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म न। अन्तर का मार्ग है, उसे बाहर से पकड़ना है लोगों को। आहाहा! यह क्रियाकाण्ड करके, यह किया, वह किया, व्रत पालन किये, दया पालन की। अब वह निकलते हैं न दया पालने? आहार लेने जाये तो हलवाई की दुकान में.... दया पाली। दया पालन की। स्थानकवासी में ऐसा बहुत होता है। वे मारवाड़ी बहुत होते हैं। सब भ्रमणा। यह निर्दोष आहार लेना। किसी ने दया पालन की। अरे! धूल भी दया नहीं। तुझे दया की खबर नहीं। वह विकल्प है, वह तो उपाधि है। और लेता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। परवस्तु को लेता हूँ, मैंने परवस्तु की दया पालन की, रखी, वह मिथ्यात्वभाव है। वह तो मिथ्यात्व का पोषण है, अधर्म का पोषण है। क्या हो? धर्म के बहाने। धर्म मानकर जीव लुटता है। उसकी उसे खबर नहीं। होंश से, हर्ष से लुटता है वापस।

यहाँ कहते हैं कि सिद्ध का ध्यान करे और उसके अन्तर्मुख में स्वसन्मुख झुकाये तो उसमें उन्हें उपाधि का भाव नहीं तो मुझमें भी नहीं। यह कहा न? **स्वाभाविकभावों का विज्ञान होता है;....** उसका स्वभावभाव तो अत्यन्त शुद्ध रहा केवलज्ञानमय। तो मेरा भी ऐसा ही शुद्धस्वभाव है केवलज्ञानमय। आहाहा! यह पुस्तकें थोड़ी हैं। १५०० प्रकाशित किये हैं, समाप्त हो गये। बहुतों के पास नहीं हैं। प्रकाशित हो गये और दे दिये गये।

अत: साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप,.... साधनेयोग्य तो अपना शुद्ध स्वरूप है। परिपूर्ण केवलज्ञान और आनन्द को प्राप्त करनेयोग्य तो आत्मा स्वयं है। **उसको दर्शाने के लिये, जो प्रतिबिम्ब के समान है.....**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १, शनिवार, दिनांक १४-१२-१९७४, श्लोक-२, प्रवचन-४

अरहन्तादिक को एकदेश सिद्धपना प्रगट हुआ है;.... अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय और साधु, उन्हें भी एकदेश सिद्धपना-वीतरागता प्रगट हुई है। **अतः सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करने से उसमें पञ्च परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार हो जाता है। इस कारण शास्त्रकर्ता ने मङ्गलाचरण में प्रथम सिद्धभगवान को नमस्कार किया है। अब, उक्त प्रकार के सिद्धस्वरूप का तथा.... अब, उक्त प्रकार के सिद्धस्वरूप का तथा उसकी प्राप्ति के उपाय के उपदेशदाता इष्टदेवता विशेष 'सकलात्मकी' (अरहन्त भगवान की) स्तुति करते हुए कहते हैं—**

श्लोक - २

अथोक्तप्रकारसिद्धस्वरूपस्य तत्प्राप्त्युपायस्य चोपदेष्टारं सकलात्मानमिष्टदेवताविशेषं स्तोतुमाह -

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय बिष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥२॥

यस्य भगवतो जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। काः ? भारती-विभूतयः भारत्याः वाण्याः विभूतयो बोधितसर्वात्म-हितत्वादिसम्पदः। कथं भूतस्यापि जयन्ति ? अवदतोऽपि ताल्वोष्ठ पुटव्यापारेण वचनमनुच्चारयतोऽपि।

उक्तं च -

यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पंदितोष्ठद्वयं,
नो वांछाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम्।
शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभिः,
तन्नः सर्वविदः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः॥ १॥

अथवा भारती च विभूतयश्च छत्रत्रयादयः। पुनरपि कथम्भूतस्य ? तीर्थकृतो-ऽप्यनीहितुः ईहा वाञ्छा मोहनीय-कर्मकार्यं, भगवति च तत्कर्मणः प्रक्षयात्तस्याः

सद्भावानुपपत्तिरतोऽनीहितुरपि तत्करणेच्छारहितस्यापि, तीर्थकृतः संसारोत्तरणहेतुभूतत्वा-त्तीर्थमिव तीर्थमागमः तत्कृतवतः। किं नाम्ने तस्मै ? सकलात्मने शिवाय शिवं परमसौख्यं परमकल्याणं निर्वाणं चोच्यते तत्प्राप्ताय। धात्रे असिमषिकृष्यादिभिः सन्मार्गोपदेशकत्वेन च सकललोकाभ्युद्धारकाय। सुगताय शोभनं गतं ज्ञानं यस्यासौ सुगतः, सुष्ठु वा अपुनरावर्त्य गतिं गतः सम्पूर्णं वा अनन्तचतुष्टयं गतः प्राप्तः सुगतस्तस्मै। विष्णवे केवलज्ञानेनाशेष-वस्तुव्यापकाय। जिनाय अनेकभवगहनप्रापण-हेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनस्तस्मै। सकलात्मने सह कलया शरीरेण वर्तत इति सकलः सचासावात्मा च तस्मै नमः॥ २॥

अब, उक्त प्रकार के सिद्धस्वरूप का तथा उसकी प्राप्ति के उपाय के उपदेशदाता इष्टदेवता विशेष 'सकलात्मकी' (अरहन्त भगवान की) स्तुति करते हुए कहते हैं —

बिन अक्षर इच्छा वचन, सुखद जगत् विख्यात।
धारक ब्रह्मा विष्णु बुध, शिव जिन सो ही आप्त॥ २॥

अन्वयार्थ - (यस्य तीर्थकृतः) जिस तीर्थङ्कर की (अनीहितुः अपि) बिना इच्छा के, अर्थात् इच्छा के अभाव में भी एवं (अवदतः अपि) बिना बोले भी, अर्थात् तालु-ओष्ठ आदि द्वारा शब्दोच्चारण नहीं किये जाने पर भी, (भारती विभूतयः) दिव्यध्वनि, अर्थात् ओंकाररूप जिनवाणी की विभूति (जयन्ति) जयवन्त वर्तती है-सदैव जय को प्राप्त होती है, (तस्मै शिवाय) उस शिवस्वरूप परमकल्याणकारक या अक्षयसुखस्वरूप परमात्मा के लिए (धात्रे) ब्रह्मस्वरूप सन्मार्ग के उपदेश द्वारा, लोक के उद्धारक विधाता के लिए (सुगताय) सद्बुद्धि एवं सद्गति को प्राप्त परमात्मा के लिए (विष्णवे) अपने केवलज्ञान द्वारा समस्त चराचर पदार्थ में व्याप्त होनेवाले, विष्णुस्वरूप सर्वदर्शी सर्वज्ञ परमात्मा के लिए एवं (जिनाय) संसार परिभ्रमण के कारणभूत मोह-राग-द्वेष तथा इन्द्रिय के विषयों को जीतनेवाले वीतरागी जिनेन्द्र भगवान के लिए और (सकलात्मने) ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों का अभाव करनेवाले अरहन्त परमात्मा के लिए (नमः) नमस्कार हो।

टीका - जिन भगवान की जयवन्त वर्तती है, अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूप से वर्तती है। क्या (जयवन्त वर्तती है) ? भारती की विभूतियाँ। भारती की, अर्थात् वाणी की; और विभूतियाँ, अर्थात् सर्व आत्माओं के हित का उपदेश देना — इत्यादिरूप सम्पदाएँ (जयवन्त वर्तती हैं)।

कैसे होते हुए (उनकी वाणी की विभूतियाँ) जयवन्त वर्तती हैं ? नहीं बोलते होने पर भी, अर्थात् तालु-ओष्ठ के संपुटरूप (संयोगसम) व्यापार द्वारा वचनोच्चार किये बिना भी (उनकी वाणी प्रवर्तती है)।

तथा कहा है कि—यत्सर्वात्महितं.....

जो सर्व आत्माओं को हितरूप है, वर्णरहित निरक्षरी है; दोनों ओष्ठ के परिस्पन्दन-हलन-चलनरूप-व्यापार से रहित है; किसी दोष से मलिन नहीं है; उसके (उच्चारण में) श्वास का कम्पन नहीं होने से अक्रम (एक साथ) है और जिसे शान्त तथा क्रोधरूपी विष से रहित (मुनिगण) के साथ, पशुगण ने भी कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है, वह दुःखविनाशक सर्वज्ञ की अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो।

अथवा 'भारती विभूतयः' का अर्थ 'भारती, अर्थात् वाणी और विभूतियाँ, अर्थात् तीन छत्रादि'—ऐसा भी होता है।

तथा कैसे भगवान की ? तीर्थ के कर्ता होने पर भी इच्छारहित की। इच्छा, अर्थात् वाँछा, जो मोहनीयकर्म का कार्य है, उस कर्म का भगवान को क्षय होने से, उनके उसका (वाँछा का) असद्भाव (अभाव) है; अतः वे इच्छारहित होने पर भी-वे करने की इच्छारहित होने पर भी 'तीर्थकृत' हैं, अर्थात् संसार से तारने के (पार करने के) कारणभूतपने के कारण, तीर्थ समान, अर्थात् तीर्थ / आगम, उसके करनेवाले हैं—उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है।

कैसे नामवाले उन्हें (नमस्कार) ? सकलात्मा को, शिव को[१]। शिव, अर्थात् परमसुख, परमकल्याण और जो निर्वाण कहा जाता है, वह जिन्होंने प्राप्त किया—ऐसे को, 'धाता' को—असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक होने के कारण, जो सकल लोक के अभ्युद्धारक (तारणहार) हैं, उनको, 'सुगत' को—श्रेष्ठ है, गत, अर्थात् ज्ञान जिनका अथवा जो भले प्रकार अपुनरावर्त्य गति को (मोक्ष को) प्राप्त हुए है, उनको, अथवा सम्पूर्ण या अनन्तचतुष्टय को जिन्होंने प्राप्त किया है—ऐसे सुगत को, 'विष्णु'[२] को—जो केवलज्ञान द्वारा अशेष (समस्त) वस्तुओं में

---

१. शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयं।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः॥ (श्री आप्तस्वरूपः)

२. विश्वं हि द्रव्यपर्यायं विश्वं त्रैलोक्यगोचरम्।
व्याप्तं ज्ञानत्विषा येन स विष्णुर्व्यापको जगत्॥

व्यापक हैं—ऐसे को, 'जिन'[१] को—अनेक भवरूपी अरण्य (वन) को प्राप्त कराने के कारणभूत कर्मशत्रुओं को जिन्होंने जीता है, उन जिन को—ऐसे सकलात्मा को—कल, अर्थात् शरीरसहित जो वर्तते हैं, वे सकल; और सकल, अर्थात् सशरीर आत्मा, वह 'सकलात्मा' उनको नमस्कार हो।

भावार्थ - जो तीर्थङ्कर हैं, शिव हैं, विधाता हैं, सुगत हैं, विष्णु हैं तथा समवसरणादि वैभवसहित हैं और भव्यजीवों को कल्याणरूप जिनकी दिव्यवाणी (दिव्यध्वनि) मुख से नहीं, किन्तु सर्वांग से इच्छा बिना ही खिरती है और जयवन्त वर्तती है, उन सशरीर शुद्धात्मा को, अर्थात् जीवनमुक्त अरहन्त परमात्मा को यहाँ नमस्कार किया है।

यह भी माङ्गलिक श्लोक है। इसमें ग्रन्थकार ने श्री अरहन्त परमात्मा और उनकी दिव्यध्वनि को नमस्कार किया है।

श्री अरहन्तदेव कैसे हैं?

तालु, ओष्ठ आदि की क्रियारहित और इच्छारहित उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है। वे तीर्थ के कर्ता हैं, अर्थात् जीवों को मोक्ष का मार्ग बतलानेवाले हैं-हितोपदेशी हैं; मोह के अभाव के कारण, उनके किसी भी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रही, अर्थात् वे वीतरागी हैं और ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों का नाश होने से, उनके अनन्त ज्ञानादि गुण प्रगट हुए हैं, अर्थात् वे 'सर्वज्ञ' हैं।

तथा वे शिव हैं, धाता हैं, सुगत हैं, विष्णु हैं, जिन हैं और सकलात्मा हैं—ये सब उनके गुणवाचक नाम हैं।

भगवान की वाणी कैसी है?

वह दिव्यवाणी है, जो भगवान के सर्वांग से बिना इच्छा के छूटती है, सर्व प्राणियों की हितरूप और निरक्षरी है।

तथा भगवान की दिव्यध्वनि को देव, मनुष्य, तिर्यञ्चादि सर्व जीव अपनी-अपनी भाषा में अपने ज्ञान की योग्यतानुसार समझते हैं। उस निरक्षर ध्वनि को

---

१. रागद्वेषादयो येन जिताः कर्म-महाभटाः।
कालचक्रविनिर्मुक्तः स जिनः परिकीर्तितः ॥२१॥ (श्री आप्तस्वरूपः)

'ओंकारध्वनि' कहते हैं। श्रोताओं के कर्ण प्रदेश तक वह ध्वनि न पहुँचे, वहाँ तक वह अनक्षर ही है और जब तक श्रोताओं के कर्ण में प्राप्त होती है (पहुँचती है), तब अक्षररूप होती है। *(श्री गोम्मटसार-जीवकाण्ड, गाथा २२७ की टीका)*

'.....जैसे, सूर्य की ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं मार्ग प्रकाशूँ किन्तु स्वाभाविक ही उसकी किरणें फैलती हैं, जिससे मार्ग का प्रकाशन होता है; उसी प्रकार श्री वीतराग केवली भगवान के ऐसी इच्छा नहीं कि हम मोक्षमार्ग को प्रकाशित करें, परन्तु स्वाभाविकरूप से ही अघातिकर्म के उदय से उनके शरीररूप पुद्गल, दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं, जिनसे मोक्षमार्ग का प्रकाशन सहज होता है।' *(मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रथम अध्याय)*

भगवान की दिव्यध्वनि द्रव्यश्रुत वचनरूप है, वह सरस्वती की मूर्ति है, क्योंकि वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मद्रव्य को वह परोक्ष बताती है। केवलज्ञान अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है; अतः वह भी सरस्वती की मूर्ति है। इस प्रकार सर्व पदार्थों के तत्त्व को बतलानेवाली ज्ञानरूप और वचनरूप अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है। सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादिक बहुत नाम हैं॥२॥

(श्री समयसार, कलश २)

श्लोक-२ पर प्रवचन

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय बिष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः॥२॥

अन्वयार्थ - जिस तीर्थङ्कर की बिना इच्छा के,.... भगवान अरिहन्त को इच्छा नहीं बोलने की। भगवान बोलते हैं, उन्हें इच्छा नहीं होती। **तालु-ओष्ठ आदि द्वारा शब्दोच्चारण नहीं किये जाने पर भी,....** आवाज होती है इस तालु को स्पर्श कर, ऐसा भगवान को नहीं है। आहाहा! **'तीर्थकृत' जो तीर्थ के करनेवाले हैं और जिनकी.... 'भारतीविभूतयः'** भारती अर्थात् **वाणी की (सर्व प्राणियों के हित उपदेशरूप) विभूति जयवन्त वर्तती है, उस शिव को....** ऐसे शिव को, हों! **विधाता ने-ब्रह्मा ने....** परन्तु इस ब्रह्मा को उसका अर्थ करेंगे। जगत के कर्ता ब्रह्मा और विधाता और शिव, वह नहीं। जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई है। पूर्ण आनन्द की शान्ति समाधि प्रगट हुई है, उसे भाषा की

विभूतियाँ होती हैं। उस जीव को शिव कहते हैं, उस जीव को शिव—शंकर कहते हैं। उसे विधाता—ब्रह्मा कहते हैं। उसे **सुगत को,....** बौद्ध। **विष्णु को, जिन को... 'सकलात्मन' सशरीर शुद्धात्मा को (अरहन्त परमात्मा).... ** की बात है। सकल आत्मा है न ? सकल अर्थात् शरीरसहित। सकल-शरीरसहित अरिहन्तदेव को **सशरीर शुद्धात्मा को (अरहन्त परमात्मा को) नमस्कार हो।** परन्तु ऐसे को। दुनिया जो शिव शंकर और विधाता और बुद्ध को कहती है, वह नहीं। कितने ही इसमें यह लगा देते हैं कि देखो! यह सब शिव और शंकर सबको नमस्कार किया है।

टीका - जिन भगवान की जयवन्त वर्तती है, अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूप से वर्तती है। क्या (जयवन्त वर्तती है) ? भारती की विभूतियाँ। भारती की, अर्थात् वाणी की; और विभूतियाँ, अर्थात् सर्व आत्माओं के हित का उपदेश देना—इत्यादिरूप सम्पदाएँ.... यह समझनेयोग्य जीव है, वह सर्व जीवों को हितपनादिरूप सम्पदायें **(जयवन्त वर्तती हैं)।** आहाहा! यह वाणी जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसे हैं, परमात्मा पूर्णानन्द -स्वरूप, उनकी वाणी समझनेवाले प्राणी के लिये जयवन्त वर्तती है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पुद्गल में भी जयवन्त ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वाणी है न, वह निमित्त है न! उस वाणी का प्रवाह जयवन्त है। आहाहा!

जो स्वयं समझता है। ऐसा कहा न वहाँ ? बोधित। विभूतियाँ अर्थात् बोधित सर्व जीवों को। समझनेवाले सर्व जीवों को हितपनेरूप वह वाणी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निमित्त से कथन आवे, तब तो यह आवे न! ऐसे तो समझता है, वह आत्मा अपनी ज्ञानपर्याय, अपने ध्रुव पर्याय के आश्रय से समझता है। परन्तु बाह्य निमित्त.... अन्तरंग साधन तो वह है। आया था न सवेरे ? बाह्य निमित्त भी एक साधन है। वह है, इतनी अस्ति। आहाहा!

मुमुक्षु : साधन कुछ काम करता होगा तब .... कुछ करे नहीं उसे साधन कहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ करता नहीं, उसे साधन कहते हैं। यही बात है न सूक्ष्म। अनेकान्त वाणी की विविधता।

सर्व आत्माओं के हित का उपदेश देना—इत्यादिरूप सम्पदाएँ (जयवन्त वर्तती हैं)। जीवों को हितपनेरूप सम्पदा-विभूति है। आहाहा! वाणी। वह जयवन्त वर्तती है। कथन शैली व्यवहार की ऐसी होती है। उसका अर्थ न समझे तो गड़बड़ उठे। यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहे, इसलिए जरा देखा था वह, जरा उसका धर्मलब्धि काल। सवेरे की शैली है न वह। उसे धर्म की उत्पत्ति का स्वकाल होता है। आहाहा! जीव को-समझनेवाले को और अन्तर में द्रव्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का धर्म, उसकी लब्धि का काल होता है। वह उसके काल में वह जन्मक्षण धर्म की उत्पत्ति का वह काल है। आहाहा! उसका अन्तरंग साधन तो द्रव्यस्वभाव है। इतना भी उस धर्म की लब्धिकाल हो तब। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। सब जीवों का वह-वह धर्म या अधर्म या राग या अज्ञान, उसका उत्पत्ति का उसका काल है। आहाहा!

मुमुक्षु : जन्मक्षण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्मक्षण है। उसका अन्तरंग साधन तो आत्मा है। आहाहा! राग होता है, वह भी वहाँ आत्मा के आश्रय से होता है। वह कहीं पर के आश्रय से नहीं होता। यह आता है। आहाहा! और धर्म की दशा हो, वह भी स्व के आश्रय से, स्व के साधन से होती है। और वह उसका वह काल होता है। आहाहा! समझ में आया?

छहों द्रव्यों की जिस समय में पर्याय होने का वह उसका लब्धिकाल है। आहाहा! छहों द्रव्य, उनकी जिस क्षण में वर्तमान दशा उत्पन्न हो, वह उसका स्वकाल है। आहाहा! यहाँ धर्मलब्धिकाल। जिसे उस क्षण में धर्म की उत्पत्ति होनी है, वह क्षण उसका जन्म-उत्पत्ति काल है और उसका साधन अन्तरंग प्रभु है। आहाहा! तब बाहर की वाणी उसे हित उपदेश का निमित्त है, ऐसा उसे व्यवहार से आरोपित (साधन कहा जाता है)। आरोपित तो अन्दर को भी आरोपित कहा है। अन्तरंग साधन आरोपित है। धर्म काल की दशा में अन्तरंग साधन का आरोप है कि आत्मा से वह हुआ। अन्तर साधन से। आहाहा! समझ में आया? और बाह्य के निमित्त को आरोपित साधन कहने में आता है। इसमें झगड़े बहुत। इससे होता है, ऐसा नहीं। क्योंकि धर्मकाल स्वकाल अपना है, वह स्वयं से होता है। पर को-निमित्त को साधन कहा, उसका स्वकाल उसमें

है। उसका इसमें अभाव है। समझ में आया? तथापि उसे आरोपित बाह्य साधन कहने में आता है। आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने में भी बड़ी गड़बड़ उठती है।

यहाँ कहते हैं कि उनकी वाणी वह हितोपदेश में बाहर का साधन है। अन्तर का साधन जिस समय करता है, तब उस समय बाह्य साधन को आरोपित कहने में आता है। यह साधन है, ऐसा आरोप करने में आता है। कहो, महेन्द्रभाई! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म।

कैसे होते हुए (उनकी वाणी की विभूतियाँ) जयवन्त वर्तती हैं ? है ? इस ओर है। **कैसे होते हुए (उनकी वाणी की विभूतियाँ)....** आहाहा! ॐ ध्वनि खिरे। **नहीं बोलते होने पर भी,....** भगवान बोलते नहीं। आहाहा! बोलते हैं, यह तो जड़ की भाषा है। भगवान बोलते नहीं। आहाहा! **नहीं बोलते होने पर भी, अर्थात् तालु-ओष्ठ के संपुटरूप (संयोगसम) व्यापार द्वारा....** तालु और होठ का संयोग, सम्पुट अर्थात्। **व्यापार द्वारा वचनोच्चार किये बिना....** ऐसी भाषा के जहाँ वचन कहे जाते हैं, ऐसे वचनोच्चार किये बिना। यह पंचास्तिकाय की टीका में है। उसमें से लिया है। **भी (उनकी वाणी प्रवर्तती है)।**

तथा कहा है कि जो सर्व आत्माओं को हितरूप है,.... देखो! जो वाणी सर्व आत्माओं को हितरूप है। निमित्त से कथन है। हितरूप तो उसकी धर्मपर्याय, स्वभाव वह हितरूप है। आहाहा! **वर्णरहित निरक्षरी है;....** उस वाणी में वर्णात्मक अक्षर बोले जाते हैं, ऐसा नहीं। ॐ ध्वनि निरक्षरी होती है। होठ बन्द होते हैं। तालु कम्पित नहीं होता, तथापि निरक्षरी वाणी, अक्षरों का समुदाय जिसमें है, ऐसी नहीं। निरक्षरी ॐ ध्वनि खिरती है। आहाहा! **दोनों ओष्ठ के परिस्पन्दन-हलन-चलनरूप-व्यापार से रहित है;....** ऐसे जो यह होठ हिलते हैं, वैसे भगवान को होठ नहीं हिलते। आ, क, का क ऐसे यहाँ तो होठ हिलते हैं न? अन्दर कण्ठ हिले, क्या कहलाता है? पंच होठस्थ क्या? कण्ठ स्थानीय। कण्ठ स्थानीय, तालु स्थानीय, होठ स्थानीय आता है न? पढ़ाई में आता था यह। क, ख, ग, घ। क, ख, ग यह यहाँ से। त, थ यह तालु में से, प, फ, व यहाँ से। प, फ, ब, भ, भु, पा, भु, पा, भु, पा इसलिए यहाँ से होठ से। उन्हें कहीं कण्ठ का वह नहीं है। भु। भु, पा, भु, पा। ऐसा सीखा है न विद्यालय में? वह सब

इसकी शैली है। होठ में से बोला जाये वह पहले इसे सिखावे। फिर कण्ठ, तालु, ऐसे इसके बोल हैं। आहाहा!

कहते हैं कि **दोनों ओष्ठ के परिस्पन्दन रहित है;....** वीतराग की—सर्वज्ञ की वाणी... आहाहा! ध्वनि उठती है-आवाज, वह दो होठ के कम्पन बिना की वाणी है। आहाहा! होठ बन्द होते हैं, तथापि पूरे शरीर में से आवाज उठती है। सब बात अलग प्रकार की है, भाई! **वांछारहित है,....** इच्छा बिना वह वाणी निकलती है। इच्छा नहीं कि मैं बोलूँ और दुनिया को समझाऊँ। ऐसी भगवान को इच्छा नहीं है। वह तो वीतराग है, सर्वज्ञ है। आहाहा! वे कहते हैं न कितने ही? चला है न अभी (संवत्) २००६ के वर्ष में। केवली पहले समय में वर्गणा को ग्रहण करते हैं, दूसरे समय में भाषा निकलती है।

मुमुक्षु : शास्त्र में ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह शास्त्र सच्चे नहीं। यह वहाँ बोला गया था पालीताणा। २००६ वर्ष। देखो! यह कहते हैं, ऐसा नहीं होता। वचनवर्गणा पहले समय में ग्रहण करे, दूसरे समय में बोले, यह भाषा निकले। अरे! भाई! आहाहा! ऐसा है ही नहीं। उन्हें वाणी की उत्पत्ति में होठ का हिलना और कम्पन तथा इच्छा, यह है ही नहीं। आहाहा! उन्हें वाणी के कारण से वाणी की पर्याय उस काल में खिरती है। वह उसका वैभव है। वह वाणी का वैभव है। आहाहा! चैतन्य का वैभव तो अन्दर में ज्ञान-दर्शन और आनन्द है।

वांछारहित है; किसी दोष से मलिन नहीं है;.... इस वाणी में कोई दोष और मलिनता है ही नहीं। निर्दोष वाणी। वाणी निर्दोष! देखो तो सही। निर्दोष परमात्मा के मुख से निकले, ऐसा कहा जाता है। पंचास्तिकाय में आया है न? मुख से निकलती है। लोग ऐसा समझाते हैं न, इस अपेक्षा से कहा है। पंचास्तिकाय में कहा है, मुख से निकले। मूल तो पूरे शरीर से (निकलती है)। आहाहा! पूर्व में भाषा पर्याप्ति बाँधी है, इसलिए निकलती है, ऐसा भी कहना वह व्यवहारनय की बात है। आहाहा! उस समय के भाषा के रजकण भाषारूप, शब्दरूप परिणमते हैं। उसमें वीतराग की इच्छा नहीं है और उस भाषा में सदोषता नहीं है। यहाँ दोष नहीं इच्छा का और वहाँ दोष नहीं, ऐसा कहते हैं। निर्दोष वीतराग की वाणी अन्दर से निकले। आहाहा! सर्व प्राणी को हितरूप।

उसके (उच्चारण में) श्वास का कम्पन नहीं होने से अक्रम (एक साथ).... आवाज आती है। श्वास रुंधे तो क्रम पड़े। वह रुंधता नहीं। भाषा भले क्रम से परन्तु वह रुंधता के कारण क्रम नहीं है। समझ में आया? श्वास रुंधे। ऐसी भाषा निकले तो श्वास रुंधता है, या नहीं? यहाँ तो। उन्हें यह नहीं है। आहाहा! **अक्रम (एक साथ) है....** ऐसे बाहर से क्रम होता है। परन्तु उस होठ का हिलना और श्वास का रुंधना नहीं, इस अपेक्षा से उन्हें एक साथ वाणी निकलती है।

जिसे शान्त तथा क्रोधरूपी विष से रहित (मुनिगण) के साथ, पशुगण ने भी कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है,.... आहाहा! जिन्हें अन्दर में सर्वज्ञपना और पूर्ण दशा प्रगट हो गयी है। उनकी वाणी, वाणी उनकी निर्दोष है और शान्त है। आहाहा! और क्रोधरूपी जहर से रहित है। ऐसे मुनिगण के साथ सुननेवाले। मुनि हैं, साथ में पशु भी हैं। नाग और बाघ। दो-दो कोस, पाँच-पाँच कोस के लम्बे नाग होते हैं, बाघ होते हैं बड़े ऊँचे, वे सब भगवान की वाणी सुनते हैं। वाणी सुननेवाले वे पशुगण भी **कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है, वह....** आहाहा! वे अपनी भाषा में उसे सुनते हैं। आहाहा! उन्हें जो समझने की भाषा है न, वैसी भाषा से समझते हैं। आहाहा! यहाँ तो ॐ ध्वनि निकले परन्तु वह उनकी भाषा में समझते हैं कि मुझे भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस वाणी को समझने के लिये ही इसे कितने आग्रह छोड़ देना चाहिए। भगवान बोले तब निकले। अरे! बोले कौन? बापू! बोले वह दूसरा। भाषा की जड़ की अवस्था है। आहाहा!

कर्ण द्वारा (अपनी भाषा में) सुनी है, वह दुःखविनाशक सर्वज्ञ की अपूर्व वाणी.... भाषा देखो! वह दुःख विनाशक सर्वज्ञ की वाणी है। उनकी वाणी में तो दुःख का नाश और आनन्द की उत्पत्ति हो, ऐसी वह वाणी है। आहाहा! समझ में आया? निमित्तपने की शक्ति ऐसी है, कहते हैं। वह समझता है अपने उपादान से और उस काल में उसकी पर्याय की उत्पत्ति का काल है। उसमें वह समझता है और श्रद्धा करता है। आहाहा! समझ में आया?

अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो। कहते हैं। ऐसी जो वाणी दुःख का नाश करनेवाली.... उसका भाव बोलते हैं न अन्दर! राग और अज्ञान की नाश करनेवाली

और वीतरागता की उत्पत्ति करनेवाली। निमित्त से (कथन है)। आहाहा! ऐसी **अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो।** कहो, सन्त-मुनि भी ऐसा कहते हैं। भाषा व्यवहार से आवे तब क्या कहे? रक्षा वह वाणी करती है?

मुमुक्षु : रक्षा का निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है। निमित्त का अर्थ? वह रक्षा का करनेवाली दूसरी (भी कोई) वाणी है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भाषा तो ऐसी है, देखो! **हमारी रक्षा करो।** है न? मुनि भी ऐसा कहते हैं। वाणी द्वारा ऐसा आवे उन्हें। आहाहा! बहुत कठिन। मार्ग ऐसा वीतराग का है (कि) उसे बहुत पहलुओं से अनेकान्तरूप से इसे समझना पड़ेगा। यहाँ तो कहते हैं कि वह सर्वज्ञ की अपूर्व वाणी हमारी रक्षा करो। वाणी हमारी रक्षा करो। कहो, पोपटभाई! नवरंगभाई! यह क्या और वापस? एक ओर आया था कि धर्म की उत्पत्ति का उसका अपना काल है, उस काल में धर्म उत्पन्न होता है—हितरूप दशा। वह पूर्व के अहित के परिणाम के व्यय से भी नहीं और ध्रुव से भी नहीं। प्रत्येक तीन पर्याय भिन्न-भिन्न के स्वभाव से वर्तती है। आहाहा! उसमें बाह्य का निमित्त इसे कहने में आता है। समझ में आया?

ऐसी दु:ख विनाशक सर्वज्ञ की (वाणी है)। क्योंकि उनकी वाणी में वीतरागता तात्पर्य आता है। चाहे जो बात आवे परन्तु वीतरागता आती है। अर्थात् कि स्वभाव के सन्मुख हो तो तुझे निर्दोष दशा—वीतरागा प्रगट होगी। ऐसा वाणी में आता है। समझ में आया? आहाहा! उसमें सब विवाद उठे न। यह २५०० वर्ष का (चलता है तो) चारों ओर अभी पुस्तकें इतनी प्रकाशित होती हैं.... गड़बड़ घोटाला। मानो कि बस, सब प्राणियों का कल्याण कर दो भगवान। इसका अर्थ यह है, भाई! जब तुझे यह वाणी सुनने की योग्यता होती है, तब वह निमित्त होती है और तब उपादान तो तेरी जागृत दशा है, वह तुझे हितरूप और रक्षा करनेवाला है। समझ में आया? वाणी का काल और पर्याय का काल तो भिन्न है। आहाहा! ऐसा सब कहाँ समझना? व्यवहारवाले को तो यह सब सामने डालते हैं।

वाणी को हितरूप कहा, इसका अर्थ कि हितरूप तो दशा भगवान आत्मा अपने

ध्रुव स्वभाव के आश्रय से करता है और वह भी उस धर्म की दशा हितरूप का उत्पत्ति का स्वकाल ही उसका वह है। आहाहा! ओहोहो! इस समय हित करनेवाली अपनी दशा है। वीतराग परिणति स्वरूप के आश्रय से, शुद्ध चैतन्यस्वरूप के साधन द्वारा जो वीतरागदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दशा (प्रगट हुई), वह हित करनेवाली है। वह जीव की रक्षा करनेवाली है। समझ में आया? क्योंकि वाणी में ऐसा आया था। चन्दुभाई! वाणी में ऐसा आया था कि तू तेरी चीज़ जो ध्रुव आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, उसे तू पर्याय में समीप में ला अथवा पर्याय वहाँ समीप में कर। आहाहा! ऐसा आया था, इसलिए उस वाणी को निमित्तरूप से रक्षा करो, ऐसा कहा गया है। व्यवहार है सही न? व्यवहार है सही, परन्तु उससे होता है, यह बात नहीं है। यह विवाद है न? व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहारनय है तो उसका विषय तो है। समझ में आया? परन्तु इस व्यवहार से है, वह अस्ति इतनी है। परन्तु उससे यहाँ होता है, यह बड़ा अन्तर पड़ जाता है। समझ में आया? आहाहा! वह हमारी रक्षा करो।

यह भी आया नहीं मोक्षपाहुड़ में? देव किसे कहते हैं, भाई उसमें। देव देते हैं। धर्म दे, पुण्य दे, पैसा दे, मोक्षमार्ग दे, धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष—चारों भगवान देते हैं। ददाति इति देव। आहाहा! धर्म देनेवाला देव देवाधिदेव त्रिलोकनाथ देव। क्या दे देव? देव क्यों कहा? कि वे देते हैं। क्या देते हैं? इसे मोक्षमार्ग देते हैं, इसे शुभभाव देते हैं और फिर शुभभाव में से पुण्य बँधे तो यह लक्ष्मी भी वे भगवान देते हैं। ऐई! और उसमें से भोग होता है, वह भोग भी देते हैं। स्वरूपचन्दभाई!

मुमुक्षु : भगवान ने दिये तो भोगना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त से (कहा है)। भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, उनकी वाणी में ऐसा ही आता है और इससे वह निमित्तरूप ऐसे ही परमात्मा होते हैं, ऐसा बताने के लिये उन्हें देनेवाले भगवान हैं, (ऐसा कहा)। यहाँ एक ओर कहा १०१ गाथा में कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय का दाता भी आत्मा है, साधन स्वयं है और वह उसका काल है, इसलिए होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक तो दे उसमें साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ साधन डाला वापस। यह स्पष्ट करके 'है' इतना बतलाया।

मुमुक्षु : व्यवहार सिद्ध किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है। व्यवहार न हो तो दूसरी चीज़ ही न हो। परन्तु उस व्यवहार से यहाँ होता है, यह बड़ी भ्रमणा है। यह तो शान्ति से जिसे वास्तविक तत्त्व की समझ करनी हो, उसकी बात है। पक्ष रखकर और स्वयं ने कहा, उसे सिद्ध करने के लिये बात शास्त्र से खोजे, वह बात सिद्ध नहीं होती। समझ में आया?

अथवा 'भारती विभूतयः' का अर्थ 'भारती, अर्थात् वाणी और विभूतियाँ, अर्थात् तीन छत्रादि'—ऐसा भी होता है। भगवान को तीन छत्र होते हैं। होते हैं न! चौसठ चंवर ढारते हैं, वह सब विभूतियाँ बाहर की-पुण्य की है। आहाहा! **तथा कैसे भगवान की? तीर्थ के कर्ता होने पर भी....** आहाहा! यह साधु, आर्यिका, श्राविका और श्रावक चार हैं। अथवा साधु के भेद चार कहे हैं न? साधु, मुनि, यति, ऋषि ये चार भाग हैं। ये भी चार हैं। ऐसे **तीर्थ के कर्ता होने पर भी इच्छारहित की। इच्छा, अर्थात् वाँछा, जो मोहनीयकर्म का कार्य है,....** लो! यहाँ मोहनीय कर्म का कार्य है इच्छा। आहाहा! संक्षिप्त में समझाना हो तो (क्या करे?) इच्छा तो अपने में राग की दशा की उत्पत्ति का स्वकाल है, इसलिए इच्छा होती है। यहाँ तो होती है परन्तु उसमें निमित्तपना कौन? यह बतलाना है। आहाहा!

इतनी अधिक भी किसे पड़ी हो? ....भगवान से होता है। प्रभु आपने, प्रभु आपने। हे नाथ! सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु। लो! नहीं आता? लोगस्स में नहीं आता? हे सिद्ध भगवान! हमें सिद्धिपना दिखाओ। ऐसा कहा है उसमें।

मुमुक्षु : मुझे दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' है। दो, ऐसा नहीं। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' मुझे दिखाओ। ऐसा कहते हुए मुझे केवलज्ञान होओ मेरे पुरुषार्थ से। ऐसी बात है। लोगस्स में आता है न? प्रेमचन्दभाई! **'एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला....'** सब शब्द बापू! यह तो सन्तों की वाणी मोक्षमार्ग की, बापू! उसका अर्थ समझने के लिये बहुत धीरज चाहिए, शान्ति चाहिए। हमने माना ऐसा उसमें से निकले तो सच्चा, ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

कहते हैं। **जो मोहनीयकर्म का कार्य है,....** स्वभाव का कार्य नहीं, इतना समझाने के लिये राग और इच्छा, वह मोहनीय का कार्य है, ऐसा समझाते हैं। **उस कर्म का भगवान को क्षय होने से,....** देखा? वह कर्म का क्षय होने से **उनके उसका (वाँछा का) असद्भाव (अभाव) है;....** यहाँ कहते हैं कि इच्छा के अभाव का काल था, इसलिए इच्छा का अभाव हुआ है। आहाहा! मोहनीय कर्म के अभाव से राग का अभाव-इच्छा का अभाव हुआ है, यह निमित्त का-व्यवहार का कथन है। समझ में आया? ऐसा उपदेश और ऐसा यह सब ऐसा लगे कि यह क्या है? यह कोई दूसरे जगत की बात होगी? अपने जो मानते हैं और जानते हैं, उससे यह और दूसरे जगत की बात होगी? बापू! तेरे सत्य के जगत की बात है। सत्यरूपी जगत प्रभु आत्मा। आहाहा! उसकी पर्याय में इच्छा का अभाव हो, वह भी अपने काल में अपने कारण से होता है। कर्म का-मोह का अभाव हुआ, इसलिए इच्छा का अभाव हुआ, यह भी व्यवहार के कथन हैं। समझ में आया?

अत: वे इच्छारहित होने पर भी-वे करने की इच्छारहित होने पर भी 'तीर्थकृत' हैं, अर्थात् संसार से तारने के (पार करने के) कारणभूतपने के कारण,... देखो! संसार के (पार) उतारने के.... उदयभाव का नाश करने में, वह उदयभाव, वह संसार है, उसे पार करने में, अभाव करने में **कारणभूतपने के कारण,...** यह तीर्थ-तिरने का उपाय तो तीर्थ तो स्वयं ही है। स्वयं आत्मा ही तीर्थ है। आहाहा! क्योंकि तिरने के उपाय का करनेवाला यह भगवान स्वयं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, यह तीर्थरूप स्वरूप है। इसका कर्ता तो आत्मा है। यह दशा कहीं भगवान से हुई है, (ऐसा नहीं)। आहाहा! समझ में आया? ऐसा व्यवहार है सही, व्यवहार है सही बोलने में। असद्भूतव्यवहार से ऐसा कहने में आता है। आहाहा! एक बात में समझने के लिये कितने पक्ष इसे असत्य के छोड़ना पड़ेंगे। आहाहा!

संसार से तारने के (पार करने के) कारणभूतपने के.... यहाँ कहते हैं कि संसार का व्यय हो जीव में, उसके काल में, उसके काल में उसका कारण होता है। आहाहा! और मोक्ष की पर्याय की उत्पत्ति हो, वह संसार के व्यय के कारण से नहीं। वह अपनी ही मोक्षदशा का काल है तो उत्पन्न होती है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को

एकान्त लगे, हों! प्रेमचन्दभाई! ऐसा लगे, लगे, हों! यह तो एकान्त है। बापू! एकान्त नहीं, यही अनेकान्त है। कहने में आया, इसलिए उससे हुआ ऐसा नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया?

तीर्थ समान, अर्थात् तीर्थ / आगम, उसके करनेवाले हैं— तीर्थ को आगम भी कहा जाता है। समझ में आया? प्रवचन को-आगम को भी तीर्थ कहने में आता है। यह वाणी के करनेवाले **उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है।** आहाहा! ऐसा कहकर वह सर्वज्ञ और वीतरागदशा ऐसे टिक रही है, जगत में है तो उसकी निमित्तरूप से वाणी भी है व्यवहार, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा!

कैसे नामवाले उन्हें (नमस्कार)? कैसे हैं वे भगवान (जिन्हें) नमस्कार करते हैं वे? नमस्कार जिन्हें करते हैं, वे कैसे हैं? करनेवाले, नमस्कार करनेवाले नहीं। **सकलात्मा को,....** सकलात्मा अर्थात् वह शरीरसहित आत्मा है। आहाहा! अरिहन्त लेना है न? वाणीवाले लेना है न। यहाँ सिद्ध नहीं लेना है। पहले में सिद्ध को नमस्कार किया। ओहोहो! वे सकल—कल अर्थात् शरीर, स अर्थात् सहित। जो शरीर सहित आत्मा है। सिद्ध भगवान तो शरीररहित आत्मा हैं। उन्हें वाणी नहीं होती। इसलिए अरिहन्त भगवान शरीरसहित हैं।

जिन्हें दूसरे प्रकार से **शिव....** आप्त स्वरूप को। नीचे श्लोक है न?

शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयं।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः॥

इसे शिव कहते हैं। आहाहा! **शिव, अर्थात् परमसुख, परमकल्याण और जो निर्वाण कहा जाता है, वह जिन्होंने प्राप्त किया ऐसे को....** शिव इसे कहते हैं। नमोत्थुणं में आता है। किया है नमोत्थुणं? किया होगा। शिवमय मह.... नहीं आता? शिवमय अय.... लोग्गस है। अपने लोग्गस है दिगम्बर में। ऐसे सब शब्द हैं। आहाहा!

शिव, अर्थात् परमसुख,.... शंकर कहा न उन्हें? **परमसुख, परमकल्याण और जो निर्वाण कहा जाता है, वह जिन्होंने प्राप्त किया—ऐसे को....** यहाँ शिव कहते हैं। इन अरिहन्त को शिव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिन्हें सर्व और वीतरागदशा

पूर्ण प्रगट हुई है, उस सुख को–कल्याण के देनेवाले अथवा कल्याणस्वरूप हैं, इसलिए उन्हें–अरिहन्त को शिव कहने में आता है। आहाहा! नमोत्थुणं में आता है वह शिवमय.... अर्थ किसे आते होंगे? हिम्मतभाई किया था या नहीं लोग्गस–बोग्गस?

मुमुक्षु : सामायिक की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामायिक की थी, ऐसा कहते हैं। उसमें यह आता है। शिवमय महि.... शब्दों के भाव क्या है, वह जरा समझे तो इसे ख्याल आवे। ऐसे का ऐसा पहाड़ा बोल जाये, बोल जाये, वह तो भाषा है। आहाहा!

धाता को.... शिव को नमस्कार। ऐसे शिव को। इस अरिहन्तपद को शिवपद कहने में आता है। आहाहा! क्योंकि इस सुख को निर्वाण कहा जाता है, जो उन्होंने प्राप्त किया। पूर्ण आनन्द और पूर्ण मुक्ति जिन्होंने प्राप्त की है। अरिहन्त ने निर्वाण—केवलज्ञान प्राप्त किया है न? मोक्ष ही प्राप्त किया है। भावमोक्ष प्राप्त है। आहाहा! **'धाता'-असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक होने के कारण, जो सकल लोक के अभ्युद्धारक (तारणहार) हैं, उनको,....** वे धाता। ऐसा। **असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक....**

मुमुक्षु : खेती करना, वह सन्मार्ग हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब पाप है। और वह वस्तु है, ऐसा बतलानेवाले हैं। इसलिए धाता।

असि–तलवार, मसि–कलम। असि–तलवार, मसि–कलम, कृषि–खेती। इसका स्वरूप वे बतलाते हैं। समझ में आया? तलवारवाले जीव ऐसे होते हैं, मसि अर्थात् लिखनेवाले जीव बनिया यह अक्षर के लिखनेवाले ऐसे होते हैं। मसि का अर्थ यह है। और कृषि–खेती करनेवाले जीव ऐसे होते हैं, उसका स्वरूप बतलाते हैं, इसलिए उन्हें धाता कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सन्मार्ग... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु है, ऐसा बताते हैं और उसका निषेध करके वस्तु का

स्वरूप तेरा दूसरा है, ऐसा बताते हैं। यह सन्मार्ग। असि-मसि और कृषि का जो धन्धा, वह संसार है, विकार है, दु:खरूप है। इस द्वारा उसका अभाव बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह आया था न? ऋषभदेव भगवान ने असि-मसि और कृषि का उपदेश दिया। देखो! दे, परन्तु वह तो विकल्प उस प्रकार का था, वह वाणी उस प्रकार की निकली, उसके तो वे ज्ञाता-दृष्टा थे। समझ में आया? ऐसा कि वे बेचारे दु:खी प्राणी थे। कृषि बिना किस प्रकार अनाज पकाना, लिखे बिना किस प्रकार इसे याद रखना? असि बिना सम्हाल रखना। सिर पर न हो तो कौन सम्हाल रखेगा? इसके बिना वे दु:खी थे, इसलिए इन्होंने बताया। बताया था वह तो विकल्प था और वाणी थी। परन्तु उसका स्वरूप बताया कि ऐसा ऐसे हो वहाँ ऐसा होता है। और उसमें उसका तात्पर्य तो उसमें से वापस वीतरागता बतायी है। समझ में आया? उसे यहाँ सन्मार्ग कहा जाता है। असि-मसि और कृषि का कहना, वह मार्ग है? यह तो बहुत धीर होकर तत्त्व समझने की बातें हैं, भाई! आहाहा!

'धाता' को—असि-मसि-कृषि आदि द्वारा सन्मार्ग के उपदेशक होने के कारण, जो सकल लोक के अभ्युद्धारक (तारणहार) हैं,.... लो! तिरने का रास्ता बताया, इसलिए वे भगवान तारणहार, घाता, उसके कर्ता—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

सुगत को.... सुगत बुद्ध को कहते हैं। यहाँ सुगत इन्हें कहते हैं। आहाहा! **'सुगत' को—श्रेष्ठ है, गत, अर्थात् ज्ञान जिनका....** सुगत। आहाहा! जिन्हें केवलज्ञान श्रेष्ठ है, उसे वे प्राप्त हुए हैं, इसलिए उन्हें सुगत कहते हैं। बुद्ध को सुगत कहते हैं, वह तो क्षणिकवादी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **'सुगत' को—श्रेष्ठ है, गत, अर्थात् ज्ञान जिनका अथवा जो भले प्रकार अपुनरावर्त्य गति को (मोक्ष को) प्राप्त हुए है,....** सुगत। भलीभाँति गत अर्थात् मोक्षदशा की पर्याय को प्राप्त हुए हैं। अरिहन्त केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं, वह मोक्षदशा है। सर्वज्ञपद जो प्राप्त हुई वही मोक्षदशा है। उसे सुगत कहा जाता है। आहाहा! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल २, रविवार, दिनांक १५-१२-१९७४, श्लोक-२, प्रवचन-५

दूसरी गाथा। यहाँ अरिहन्त को नमस्कार पहले किया है न। दूसरी गाथा में। पहली गाथा में सिद्ध को किया। वे अरिहन्त तीर्थंकर हैं। ऐसे सामान्य केवली भी होते हैं, परन्तु यहाँ तीर्थंकर की मुख्यता से, वाणी निकलती है न उनकी, इस अपेक्षा से।

भावार्थ - जो तीर्थंकर हैं, शिव हैं,.... पूर्ण कल्याणस्वरूप जिन्हें प्रगट हुआ है। परमात्मदशा को यहाँ शिव कहते हैं। विधाता हैं। वे धर्म के धरनेवाले हैं, रचनेवाले हैं। तीर्थ के भी रचनेवाले हैं, ऐसा कहा जाता है। निमित्त से कहा जाता है। इस अपेक्षा से **विधाता है, सुगत है,....** वे सुगत। अपनी जो आनन्द और ज्ञान की दशा जिन्हें पूर्ण प्राप्त हो गयी है, इसलिए उन्हें सुगत कहा जाता है। **विष्णु हैं....** लोक-अलोक को जानने की शक्ति धरते हैं, इसलिए मानो लोक-अलोक में व्यापक हो, जानने की अपेक्षा से। व्यापक तो अपने असंख्य प्रदेश में हैं। परन्तु जानने का तीन काल-तीन लोक है, इस अपेक्षा से उन्हें सर्व व्यापक विष्णु अरिहन्त को ही कहा जाता है। और **समवसरणादि वैभवसहित हैं....** उन्हें यहाँ लेना है न? सामान्य केवली है, उनकी यहाँ बात नहीं लेनी। इसलिए यहाँ तीर्थंकर है, ऐसा कहा न? **समवसरणादि वैभवसहित हैं....** जिनके पुण्य की हद है, बेहद है। आहाहा! ऐसी जिन्हें संयोगरूप से विभूति है, ऐसा कहा जाता है। उनकी विभूति तो अनन्त ज्ञान और दर्शन है परन्तु पुण्य का संयोग का वैभव भी अपार समवसरण आदि ऋद्धि है।

और भव्यजीवों को कल्याणरूप जिनकी दिव्यवाणी.... भव्य जीवों को, योग्य जीवों को कल्याणरूप जिनकी दिव्यवाणी, **(दिव्यध्वनि) मुख से नहीं, किन्तु सर्वांग से...** भगवान की वाणी मुख से नहीं निकलती। सर्वांग—पूरे शरीर में से ॐ ऐसी ध्वनि उठती है। तालु, होठ हिले बिना, इच्छा बिना वाणी की ध्वनि वाणी के कारण से निकलती है। **और जयवन्त वर्तती है, उन सशरीर शुद्धात्मा को,....** वह वाणी होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जब-जब तीर्थंकर होते हैं, तब-तब उन्हें वाणी होती है, वह जयवन्त वर्तते हैं। **सशरीर शुद्धात्मा को,....** ऐसे जो अरिहन्त भगवान शरीरसहित होने

पर भी शुद्धात्मा पवित्र पूर्ण आनन्द है। **अर्थात् जीवनमुक्त....** है। आयुष्य होने पर भी वे मुक्त हैं। जीवन—यह अन्तर में आनन्द की दशा जो स्वभाव था, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, वह दशा प्रगट हो गयी है। अर्थात् आयुष्य के कारण जीवन होने पर भी उससे मुक्त हैं। आहाहा! उन **अरहन्त परमात्मा को यहाँ नमस्कार किया है।** ऐसे भगवान को पहिचानकर नमस्कार किया है। **यह भी माङ्गलिक श्लोक है।** पहले जैसे मांगलिक श्लोक था न पहला? वैसे यह भी मांगलिक श्लोक है। **इसमें ग्रन्थकार ने श्री अरहन्त परमात्मा....** अरहन्त शब्द प्रयोग किया है। **और उनकी दिव्यध्वनि को...** दिव्यध्वनि को **नमस्कार किया है।**

श्री अरहन्तदेव कैसे हैं?

तालु, ओष्ठ आदि की क्रियारहित और इच्छारहित उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है। अर्थात् कि उन्हें वाणी होती है। इच्छा नहीं, तालु और होठ हिलते नहीं, तथापि वाणी होती है। आहाहा! **वे तीर्थ के कर्ता हैं,...** विधाता कहा था न? साधु, आर्यिका, श्रावक और श्राविका अथवा साधु के ही चार प्रकार हैं। उनके वे कर्ता हैं। साधु, अणगार, यति और ऋषि, ऐसे मुनि के भी चार प्रकार हैं।

अर्थात् जीवों को मोक्ष का मार्ग बतलानेवाले हैं-हितोपदेशी हैं;.... वह तो आत्मा का हित का ही उपदेश करनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। जिनकी वाणी में भगवान पूर्णानन्द शुद्ध स्वरूप की ओर झुकना और संयोगी चीज़, राग और पर्याय से हट जाना, ऐसा जिनका-भगवान का हितोपदेश है। आहाहा! उसमें हित है। स्वभाव सन्मुख होना। निमित्त, राग और पर्याय से हटकर वहाँ जाना। ऐसा ही भगवान का उपदेश है, वह हितोपदेश कहा जाता है। आहाहा! जिसमें आत्मा का मोक्ष और मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है, वह हित है। उस हित का ही उपदेश भगवान ने किया है। आहाहा! क्योंकि उनकी वाणी का सार वीतरागता है। अर्थात् उन्होंने वीतरागता होने का ही उपदेश किया है। आहाहा! पूर्ण स्वरूप आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप, वीतरागस्वरूप आत्मा, उसकी ओर की एकाग्रता के झुकाववाली ही दशा की है। आहाहा! लाख बात की हो तो भी वह आत्मा के ओर की सन्मुख दशा और सन्मुख स्थिरता—यह भगवान का उपदेश है।

समझ में आया? उसमें ही हित है। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप की ओर का झुकाव, वही हित का मार्ग है। समझ में आया?

भगवान के उपदेश में तो ऐसा आया कि परद्रव्य सन्मुख के झुकाव में तो राग होता है, दुर्गति होती है, ऐसा कहते हैं। वाणी ऐसा कहे, हमारी ओर के झुकाव में राग है। वह चैतन्य की गति नहीं—वह चैतन्य की जाति नहीं। ऐसा वीतराग का उपदेश है। अन्तर स्वरूप भगवान पूर्णानन्द स्वरूप है। आहाहा! उसकी ओर देख, वहाँ जा। वहाँ से तुझे हित का मार्ग प्रगट होगा। ऐसा भगवान का उपदेश हितोपदेश है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है न? सर्वज्ञ हैं, हितोपदेशी हैं। समझ में आया? वीतरागता का उपदेश करनेवाले हैं। आहाहा!

मोह के अभाव के कारण, उनके किसी भी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रही,.... कोई इच्छा मात्र रही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं धर्म को समझाऊँ तो समझे, तो वहाँ कुछ उसे लाभ हो, ऐसी इच्छा मात्र जिन्हें नहीं है। आहाहा! **अर्थात् वे वीतरागी हैं और ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों का नाश होने से, उनके अनन्त ज्ञानादि गुण प्रगट हुए हैं,....** आत्मा ऐसा है, ऐसा वे कहते हैं। ऐसा उन्हें प्रगट हुआ है। आहाहा! **अर्थात् वे 'सर्वज्ञ' हैं।** देखा न! हितोपदेशी कहा और सर्वज्ञ है, ऐसा।

तथा वे शिव हैं, धाता हैं, सुगत हैं, विष्णु हैं, जिन हैं और सकलात्मा हैं... शरीरसहित परमात्मा शुद्ध हैं। **ये सब उनके गुणवाचक नाम हैं।** आहाहा! इसलिए कहा है न, जो अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने कि आत्मा की ऐसी दशा, आत्मा का स्वरूप ही ऐसा है। वह अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने। वह जाननेवाला फिर अपनी और ढले। पर को जाने, तब तक तो विकल्प है। समझ में आया? **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं सो जाणदि अप्पाणं।'** इसका अर्थ—ऐसी आत्मा की दशा पूर्ण वह स्वरूप में शक्तिरूप थी, उसका शक्तिरूप स्वभाव ही पूर्ण वीतराग, पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण स्वच्छता—ऐसे प्रत्येक गुण से वे परिपूर्ण थे। तो थे, उसमें से परिपूर्ण पर्याय प्रगट की। समझ में आया? इसलिए उनके गुणवाचक नामक (कहे)। भगवान की वाणी अब कहनी है। यह भगवान वर्णन किये। आहाहा! छोटाभाई ने मेहनत बहुत की है, मिलानकर।

वह दिव्यवाणी है,.... दिव्यवाणी है। दिव्यवचन है न। दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि कहो या दिव्यवाणी कहो। दिव्य अलौकिक अचिन्त्य जिसकी वाणी है, कहते हैं। आहाहा! **जो भगवान के सर्वांग से बिना इच्छा के छूटती है,...** इच्छा बिना पूरे आत्मा से ॐ की ध्वनि उठती है। **सर्व प्राणियों की हितरूप है....** वह वाणी प्रत्येक प्राणी को हितरूप है। ऐसा कहा है न कि हितरूप है तो असंज्ञी प्राणी को हितरूप कैसे? तब कहते हैं, उन्हें नहीं घात करने का उपदेश दिया है, वह हितरूप है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भाई ने लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में। सर्व को हितरूप है तो असंज्ञी प्राणी आदि जो हैं, वे एकेन्द्रिय हैं, उन्हें कहाँ हितरूप उनकी वाणी हुई? तो उसका अर्थ इतना कि उन्हें दु:ख नहीं देना, उन्हें नहीं मारना, उसे स्वभाव सन्मुख हुआ, इसलिए पर को मारने का विकल्प नहीं होता, ऐसा भगवान ने उपदेश दिया है। समझ में आया? आहाहा! **और निरक्षरी है।** ॐ ध्वनि है न, वह ॐ ध्वनि एक अक्षरी कहलाती है। निरक्षरी। एक अक्षरी कहो या दूसरे शब्द नहीं, इसलिए निरक्षरी।

तथा भगवान की दिव्यध्वनि को देव, मनुष्य, तिर्यञ्चादि सर्व जीव अपनी-अपनी भाषा में अपने ज्ञान की योग्यतानुसार समझते हैं। आहाहा! ऐसी अस्ति सर्वज्ञ की और उनकी वाणी की ऐसी अस्ति जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहकर यह कहा। समझ में आया? उसकी जिसे प्रतीति हो.... आहाहा! वह प्रतीति तो स्वभाव सन्मुख हो तो ही होती है। समझ में आया? जिसमें पूर्णता पड़ी है, पूर्णता की प्रतीति और उसकी पूर्ण वाणी की प्रतीति। बात तो यह है कि अन्दर पूर्ण स्वभाव सन्मुख ढले, तब उसकी प्रतीति होती है। अपने पूर्ण स्वभाव की प्रतीति (हो), उसे दूसरे पूर्ण स्वभाव और उसकी पूर्ण वाणी दिव्य, उसकी प्रतीति उसे होती है। आहाहा! समझ में आया?

उस निरक्षर ध्वनि को 'ओंकारध्वनि' कहते हैं। 'ॐकार ध्वनि सुणि अर्थ गणधर....' क्या कहा फिर? 'ॐकार ध्वनि सुणि अर्थ गणधर विचारे....' आहाहा! वह वाणी और वह भगवान का दरबार, यह समुदाय जहाँ .... आहाहा! कहते हैं, **निरक्षर ध्वनि को 'ओंकारध्वनि' कहते हैं।** पूरे सर्वांग असंख्य प्रदेश से उठती ध्वनि है। प्रदेश में से नहीं। असंख्य प्रदेश भगवान आत्मा के, उसमें से नहीं परन्तु उनके समीप

में से ध्वनि-वाणी उठती है। आहाहा! यह निरक्षरी की व्याख्या की। गोम्मटसार का आधार दिया है। गोम्मटसार में है।

श्रोताओं के कर्ण प्रदेश तक वह ध्वनि न पहुँचे, वहाँ तक वह अनक्षर ही है.... यह है गोम्मटसार में। नीचे दिया है। **जीवकाण्ड गाथा २२७ की टीका में है।** क्या? कि निरक्षरी वाणी कहाँ तक? कि कान में न पहुँचे, वहाँ तक। है, यह पाठ है। गोम्मटसार में पाठ है। **और जब तक श्रोताओं के कर्ण में प्राप्त होती है (पहुँचती है), तब अक्षररूप होती है।** क्योंकि वे अक्षररूप से समझते हैं न? इसलिए वाणी अक्षररूप तब होती है, ऐसा कहते हैं। गोम्मटसार में पाठ है। यह चर्चा हो गयी है पहले। समझ में आया?

ॐ ऐसी ध्वनि उठी, उस ध्वनि का एकाक्षरीपना कहाँ तक है? इसलिए कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि भाई! यह एकाक्षरी ध्वनि नहीं। अक्षरसहित ध्वनि होती है। क्योंकि समझनेवाले अक्षरसहित समझते हैं। इसलिए ध्वनि में भी अक्षरपना आता है। वह पहुँचे कान में, तब अक्षररूप हो जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा! यह गोम्मटसार की गाथा में आता है। २२७ की टीका।

जैसे.... यहाँ मोक्षमार्ग का दृष्टान्त दिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक है न? गुजराती आवृत्ति पृष्ठ २०-२१। उसका आधार दिया है। **.....जैसे, सूर्य की ऐसी इच्छा नहीं है....** सूर्य को ऐसी इच्छा नहीं **कि मैं मार्ग प्रकाशूँ....** अन्धकार का नाश हो और मार्ग प्रकाशित करूँ, ऐसी सूर्य को इच्छा नहीं है। **किन्तु स्वाभाविक ही उसकी किरणें फैलती हैं,....** सूर्य की स्वाभाविक किरणें विस्तरित होती हैं-फैलती हैं। **जिससे मार्ग का प्रकाशन होता है;....** अन्धकार मिटकर मार्ग में उजाला होता है। मार्ग में उजाला होता है। आहाहा!

उसी प्रकार श्री वीतराग केवली भगवान के ऐसी इच्छा नहीं कि हम मोक्षमार्ग को प्रकाशित करें,.... आहाहा! उसमें तो कहा है मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आठवें अध्याय में, तीर्थंकर और केवलियों ने भी उपकार किया है। निमित्त से कथन आवे। उपकार किया है। हम भी यह उपकार की बात थोड़ी करेंगे। आठवें अध्याय में है। यह

किया है, वह हो गया है। यह कोई इच्छा नहीं कि मैं इसे मोक्षमार्ग प्राप्त कराऊँ। सूर्य को इच्छा नहीं कि मैं प्रकाश करूँ। है इच्छा? आहाहा! एक-एक तत्त्व की स्पष्टता और उसकी स्थिति की मर्यादा है, ऐसी इसे जानना चाहिए। आहाहा! ऐसे का ऐसा गड़बड़ माने, मिश्र माने तो वह तो वस्तु की विपरीतता हो जाती है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि.... पूरी दिव्यध्वनि की आवाज एकाक्षरी खिरी, पश्चात् उसे समझने में अक्षर आ गये। परन्तु उन्हें इच्छा नहीं कि मैं मार्ग को प्रकाशित करूँ। आहाहा! अघातिकर्म के उदय से उनके शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं। ऐसा है, हों! उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक में। वहाँ ऐसा लिखा है। शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप (परिणमते हैं)। समझे न? भाई! नहीं तो दिव्य शरीररूप पुद्गल तो औदारिक है। परन्तु उस शरीर की जाति के पुद्गल ऐसे जो पुद्गल भाषा के गिनकर (बात की है)। शब्द यही है, ऐसा ही है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक में है)। यहाँ तो एक-एक बात में उसकी सत्यता क्या है, यह जानना चाहिए न?

कहते हैं कि इस शरीररूप पुद्गल। अब शरीर जो है, वह तो औदारिकशरीर है। समझे न? उसके पुद्गल जो कुछ निकले, वे कहीं औदारिक शरीर के नहीं, परन्तु उन्हें पुद्गल की जाति बतलाकर **शरीररूप पुद्गल, दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं,....** यह तो मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में आया तब ख्याल था सब। समझ में आया? कि इस प्रकार यहाँ कहना चाहते हैं। आहाहा!

जिनसे मोक्षमार्ग का प्रकाशन सहज होता है। जैसे सूर्य को इच्छा नहीं कि अन्धकार दूर करूँ और प्रकाश-उजाला करूँ, तथापि स्वाभाविक प्रकाश होता है; इसलिए अन्धकार नाश होकर प्रकाश होता है। इसी प्रकार भगवान की वाणी, उन्हें इच्छा नहीं कि मैं मोक्षमार्ग प्रकाशित करूँ। आहाहा! गजब बातें परन्तु। वाणी की उसकी अपनी योग्यता ही ऐसी है, कहते हैं। उसमें तो सूर्य की किरणें कही थी। यह वाणी कहीं किरण नहीं है उनकी आत्मा की। दृष्टान्त में तो सूर्य की किरण का दिया था न? वाणी कहीं आत्मा की किरण है? परन्तु संयोग में वाणी की ध्वनि को किरण गिनकर (बात की है)। आहाहा! क्योंकि जैसा वह भाव है, वैसा वाणी में कहने की

ताकत है, इसलिए उस वाणी को भी किरण गिनकर.... आहाहा! दूसरे के धर्म का प्रकाश करते हैं। आहाहा!

एक-एक तत्त्व में जो उसकी स्थिति है, जिस प्रकार से उसका वास्तविक तत्त्व है, उस प्रकार से उसे जानना चाहिए। गड़बड़ करेगा तो कुछ का कुछ एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में आ जायेगा। आहाहा! स्वयं भगवान चैतन्यस्वरूप में, कहते हैं कि उसे परद्रव्यरूप मानना.... आहाहा! यह रागरूप मानना, कर्मरूप मानना.... आहाहा! उसे दिव्यध्वनिवाला मानना.... आहाहा! वह भी महामिथ्यात्व का पाप है। ओहोहो! स्वद्रव्य चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्दस्वरूप उसके अतिरिक्त का विकल्प और वाणी आदि या यह पैसे, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश वे सब मेरे हैं। अरे! उसने परद्रव्य मेरा माना। इसने स्वद्रव्य को नहीं माना। ऐसा भगवान में घोटाला करता है कि यह वाणी भगवान की है और भगवान ने की है।

मुमुक्षु : वह की वह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह दशा है। अपनी मान्यता इस प्रकार खतौनी करता है। आहाहा!

परमात्मा स्वयं चैतन्यस्वरूप भगवान यह आत्मा, हों! यह बात चलती है। इसे कुछ भी दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, उसे विकल्पवाला मानना, वह विकल्प है आस्रवतत्त्व है, परतत्त्व है, उसे ऐसा मानना, यही परद्रव्य को अपना मानकर स्वद्रव्य को चूक गया है। आहाहा! समझ में आया?

उसमें आता है, नहीं? समयसार में (कलश १३७) यह व्रत पालता है, ऐसा करता हो उसे पापी क्यों कहा? आता है न? उसमें भी आया है। शब्दकोश में भी आया है। यह शब्द सब डाले हैं। ऐसा कि व्रत पाले, अहिंसा, ब्रह्मचर्य शरीर से पाले और ऐसे जीव को पापी क्यों कहते हो? ऐसी क्रिया करे—दया की, दान की, व्रत की, तप की, भक्ति की, पूजा की ऐसी क्रिया शुभभाव की; और उसे तुम पापी कहते हो। भाई! पापी कहने का कारण वह राग है, वह परवस्तु है, उसे अपनी मानी, वही मिथ्यात्व का पाप है। आहाहा! वही महान मिथ्यात्व पाप है। महा पाप वह है। ऐसे पाप की नीचता और हल्काई, उसकी इसे खबर नहीं होती और भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप राग और पर

की चीज़रहित, अभावस्वभावस्वरूप, उसकी जो प्रतीति का अनुभव, उसकी क्या कीमत है, इसकी जिसे खबर नहीं, उसे सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। समझ में आया? बाह्य त्याग पर उसकी महिमा उसने मानी। बाह्य त्याग किया, स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा। बापू! यह क्या छोड़ा? वह था कब इसमें? उसमें जो था—परवस्तु मेरी, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसे तो इसने छोड़ा नहीं। समझ में आया? जो इसमें नहीं, उसे इसमें है ऐसा जो माना है अथवा वह मेरे स्वरूप को जो इसमें नहीं, वह मुझे लाभ करेगा। आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प है, वह राग है, वह आस्रवतत्त्व है, परतत्त्व है। वह ऐसा पालते होने पर भी इस पर को अपना मानता है.... आहाहा! वही मिथ्यादृष्टि बड़ा पापी है। २००वीं (गाथा) है न? २००-गाथा (के बाद का कलश १३७) समयसार। आहाहा! सावधानरूप से महाव्रत पालन करे, शरीर से ब्रह्मचर्य पाले।

मुमुक्षु : आत्मा को कहाँ पालता है? राग को पालता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर से अर्थात् यह तो जड़ है। जड़ को विषय में नहीं जाने दिया, वह कहीं तेरा कर्तव्य नहीं है। वह तो जड़ का कर्तव्य है कि इस ओर नहीं गया। आहाहा! उसे मैंने रोका है, यही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! शरीर की मिथ्या मैथुनक्रिया जुड़ान की सम्बन्ध की, वह मैंने नहीं की। वही जड़-रूपी का स्वामी हुआ और मैंने ब्रह्मचर्य पालन किया, वही मिथ्यात्वभाव है। स्वरूपचन्दभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग मार्ग है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिस प्रकाश से मोक्षमार्ग को प्रकाशित किया, उसमें यह विधि है। आहाहा!

यह व्रत को पालन करे अथवा करे.... आहाहा! परन्तु मैंने आज आहार नहीं किया। नहीं करने की वृत्ति हुई, इसलिए आहार नहीं आया, वह भाव ही मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि परद्रव्यसहित मैं हूँ (ऐसा हो) तो परद्रव्य को मैं छोड़ता हूँ। आहाहा! बहुत ही मार्ग सूक्ष्म, भाई! वीतरागमार्ग की दृष्टि.... अभी तो बहुत गड़बड़ उठी है। बहुत गड़बड़ उठी है। चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा हो गया है। प्रभु! मार्ग तो यह है, हों! जिसे, मैं शरीर की क्रिया विषय की करता था, उसे मैं अब छोड़ता

हूँ। आहाहा! इसका अर्थ यह कि वह स्वद्रव्य में, परद्रव्य की क्रिया करने की ताकत (मानता है)। इसलिए वह परद्रव्य की क्रिया रोकने की भी उसमें ताकत (मानता) है। ऐई! स्वरूपचन्दभाई! ऐसा मार्ग है, बापू! भाई! आहाहा! उसने भगवान आत्मा को परद्रव्यसहित माना। आहाहा! गजब बात है, भाई! यही महामिथ्यात्व का पाप है, उसकी इसे खबर नहीं है।

भगवान आत्मा अपने अस्तित्व में शुद्धता और परिपूर्णता से अस्तित्व पड़ा है। उसमें अपूर्णता भी नहीं, विपरीतता भी नहीं और परद्रव्य का सम्बन्ध भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन लगे परन्तु विचारना, भाई! ऐसा अवसर नहीं मिलेगा, बापू! आहाहा! अरे! मनुष्य का भव चला जाता है। स्थिति पूरी हो जाती है। छोटे-छोटे बालकों का सुनते हैं न। आहाहा! देह की स्थिति पूरी हुई। आहाहा! मनुष्य के भव को हारकर चले जाते हैं। जो करने का था, वह किया नहीं। और नहीं करने का किया, ऐसा माना। आहाहा! इससे यह सब अधिक स्पष्ट करना पड़ता है, यह वाणी का और यह सब। आहाहा!

कहते हैं कि केवलज्ञानी परमात्मा को जो वाणी निकलती है, वह उनकी इच्छा से नहीं, उनसे नहीं। आहाहा! क्योंकि वाणी की दशा तो जड़रूप है। जड़रूप का आधार आत्मा कैसे हो सकता है? आहाहा! ऐसी बात समझना सूक्ष्म, बापू! भाई! इसे रह गया शल्य सूक्ष्म ऐसा अन्दर में। आहाहा! वह वाणी निकली, वह भगवान की वाणी है, ऐसा कहना व्यवहार का वचन है। अर्थात् कि निमित्तपना भगवान का था, इतना बतलाने के लिये यह वाणी है। परन्तु वाणी भगवान की है और भगवान ने की है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह आवाज उठती है, वह जड़ है। भगवान आत्मा अरूपी चैतन्यघन है। उसमें से यह आवाज उठे, वह जड़ है, रूपी है, मूर्त है। वह आत्मा में से कहाँ से उठे? आहाहा! वह वाणी, वाणी के कारण से स्वतन्त्र निकलती है, ऐसा दृष्टान्त दिया।

सूर्य प्रकाश करता है, वह प्रकाश करूँ, ऐसी इच्छा नहीं है। स्वाभाविक रीति से निकलता है। उसकी वाणी के साथ जोड़कर बात की है। भाई! यह तो तब पढ़ा तब ख्याल में था कि बात तो सूर्य के किरण की कहते हैं और वाणी को किरणरूप से सिद्ध

करते हैं। परन्तु उसे ज्ञान में उस जाति का प्रकाश है न, इतना जो निमित्त है, इससे ऐसा कहा, वह वाणी उसे प्रकाश करती है। वह उसकी किरण है, ऐसा कहा, इतना। आहाहा!

उनके शरीररूप पुद्गल, दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं, जिनसे मोक्षमार्ग का प्रकाशन सहज होता है। आहाहा! समझ में आया? वाणी में उस प्रकार के भाव—पर से खस और अन्तर में बस, ऐसी वाणी में ध्वनि उठती थी। समझ में आया? इससे उसे भगवान के ज्ञान की वह वाणी एक किरण गिनी। व्यवहार से कहा, भाई! आहाहा! क्योंकि उस समय वह वाणी की पर्याय ऐसी ही स्वतन्त्र अपने से उत्पन्न होती है। भगवान के कारण से नहीं। भगवान के ज्ञान के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसा भिन्न-भिन्न स्वरूप का सत् है। उसे अतिशय (करके) वर्णन किया कि भगवान की वाणी की किरण निकली तो मोक्षमार्ग प्रकाशित हुआ। भगवान की पर्याय बाहर निकली है? पोपटभाई! यह सब समझने जैसी बात है। इसमें ऐसा का ऐसा ही घोटाला अनादि से किया है। आहाहा! यह तो शान्ति से, धीरज से तत्त्व की जो-जो स्थिति जहाँ-जहाँ जिससे है, उससे उसे जानना चाहिए। वह वाणी भगवान की है, ऐसा भी नहीं, यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

इस बात को सुनते ही कितने ही लोगों को तो ऐसा लगता है, इसमें धर्म कहाँ आया? अरे! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! धर्म कहाँ होता है? यह विकल्प है, वाणी है, उससे हट जाये और चैतन्यस्वरूप अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वयं विराजता है, वहाँ जाये तो धर्म हो। वाणी में जाये,.... वाणी में जा सके? एक सत् दूसरे सत् में प्रवेश कर सके? आहाहा! चैतन्य का सत् भगवान ज्ञानस्वरूपी अरूपी, वह वाणी के अस्तित्व के सत् में प्रवेश करे कि (जिससे) वाणी उसके कारण से निकले? समझ में आया? यह बिना भान के ऐसा का ऐसा बेचारा अनादिकाल से पड़ा है। वाडा में जन्मा हो, वह भी बिना भान के जिन्दगी निकाले, तत्त्व के भान बिना। और कुछ हमने धर्म किया, ऐसा माने। क्या हो? अरे! भाई!

मुमुक्षु : हजारों लोगों को उपदेश दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे? भाई! उस वाणी के योग से वाणी निकलती है।

भाई! आहाहा! वाणी जड़ है, अचेतन है, मूर्त है, अजीव है। उस अजीव की पर्याय को आत्मा करे? आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा अजीव हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो अजीव हो। समझ में आया?

यहाँ तो होशियार व्यक्ति तो बहुत काम करता है न? गिरधरभाई! तुम सब कार्यकर्ता कहलाते थे। वढवाण के आस-पास के। एक तो सेठिया, और कार्यकर्ता। कितना सच्चा होगा? आहाहा! गरीबों को कपड़े देना, भूखे को अनाज देना। प्यासे को पानी देना, रोगियों को औषध देना, स्थान से भ्रष्ट हो, उसे ओटला या स्थान देना। आहाहा! अरे! भगवान! क्या करता है तू? वह चीज़ कहाँ तेरी है कि तू दे और ले? आहाहा! उसे भ्रमणा हो गयी है अन्दर से। समझ में आया? मैंने इसे पानी पिलाया। प्यास थी, उसे पानी पिलाया। पानी कोई चीज़ है कि तूने दिया? पानी तो अजीव चीज़ है, उसे तू दे सकता है? तू उसे स्पर्श कर सकता है?

मुमुक्षु : देते हैं न रोज?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? उसका भान नहीं इसे।

भगवान आत्मा तो अरूपी है। उसमें तो रंग, गन्ध और स्पर्श प्रभु में नहीं है। प्रभु आत्मा हों! यहाँ। आहाहा! उसमें रंग, रस, स्पर्श, गन्ध नहीं है। वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श की वस्तु को स्पर्श करे? अरूपी रूपी को स्पर्श करे और रूपी को के देने का-लेने का काम करे?

यहाँ क्या कहा जाता है? कि परद्रव्य को अपना मानता है, उसकी व्याख्या ही सूक्ष्म है। ऐसी बात की है। यह आता है न? टीका में भी ऐसा आता है कि शुद्ध परमात्मा पूर्ण स्वरूप का अनुभव होकर प्रतीति होना, इस काल में वह समकित की उत्पत्ति है। उसी काल में परद्रव्य की रुचि जो है.... टीका में आया था जयसेनाचार्य की। भाई! परद्रव्य की रुचि अर्थात् रागादि मेरे और मैंने किये और मैंने दिया और मैंने दिया, ऐसी जो परद्रव्य की रुचि है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसका व्यय होता है और आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म पड़े

लोगों को, हों! आहाहा! मुम्बई में ऐसा डाला हो, दस-दस हजार लोगों के बीच (तो ऐसा हो) महाराज क्या कहते हैं यह? और मुम्बई जैसी मोहनगरी। धमाल... धमाल... धमाल.... घोड़े की भाँति लोग दौड़ते हैं। कुत्ते की भाँति भुं... भुं... करते (हों)। ऐई! रतिभाई! मुम्बई की यह उपाधि है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान ने जो वाणी की, ऐसा कहना वह व्यवहार है। समझ में आया? क्यों? कि **भगवान की दिव्यध्वनि द्रव्यश्रुत वचनरूप है,....** आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि, वह द्रव्यश्रुत वचनरूप है। जड़ वाणी परमाणु की पर्याय है। रजकण की, पुद्गल की, अजीव की वह दशा है। आहाहा! समझ में आया? **वह सरस्वती की मूर्ति है,....** वाणी को। द्रव्यश्रुत को कहते हैं न। अनेकान्त में आया है न? दूसरी गाथा में, नहीं?

मुमुक्षु : अनेकान्तमयी मूर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनेकान्तमयी मूर्ति। वहाँ वाणी को भी सरस्वती कहा है। आहाहा! वास्तव में वह सरस्वती तो आत्मा का भावज्ञान-भावश्रुतज्ञान, वह सरस्वती है। जिसके द्वारा आत्मा ज्ञात हुआ, जिसके द्वारा राग का अभावरूप आत्मा का अनुभव हुआ, ऐसी जो ज्ञानी की दशा अरूपी वेदन, उसे यहाँ भावसरस्वती कहा जाता है। वाणी को निमित्तरूप से गिनकर द्रव्यश्रुत को द्रव्य सरस्वती कहा जाता है।

क्योंकि वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मद्रव्य को वह परोक्ष बताती है। देखा! न्याय देते हैं। सरस्वती की मूर्ति वाणी को कैसे कहा? कि **वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मा को....** आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनेक शक्तियों रूप धर्म है। धर्मी ऐसा जो आत्मा, धर्मी अर्थात् धर्म करनेवाला, अभी यह प्रश्न नहीं है। धर्मी अर्थात् वस्तु आत्मा। उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण, वे उसके धर्म हैं, वह उसका स्वभाव है, वह उसका स्वरूप है। आहाहा! उसे-ऐसे अनन्त धर्मवाले आत्मा को.... ऐसा यहाँ नहीं कहा कि ऐसे रागवाले आत्मा को, वाणी कहनेवाले आत्मा को। आहाहा! यह वचनों द्वारा। निमित्त वाणी की। अनेक धर्मोंवाला प्रभु आत्मा। धर्म अर्थात् धार रखे हुए गुण। उसमें अनन्त-अनन्त गुण हैं और अभव्य हो तो भी अनन्त गुण हैं। आहाहा!

गुण अर्थात्? शक्ति। प्रगट होने के बाद की बात है। यह अनन्त गुण स्वभाववाला आत्मा है, उसे वाणी बताती है, निमित्त रूप से। आहाहा! यद्यपि वह आत्मा स्वयं जब अपने स्वभाव को जाने, तब वाणी ने उसे बताया, ऐसा निमित्तरूप से कहा जाता है। बहुत भेद पड़े, भाई! वीतराग की सूक्ष्मता, केवली की सूक्ष्मता।

श्रीमद् में भी आता है न, सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। महावीर का शिष्य कौन होता है? सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। राग से, पर से भिन्न ऐसे स्वभाव के सूक्ष्म बोध का-ज्ञान का अभिलाषी। वह वस्तु को समझ सकता है और प्राप्त कर सकता है। समझ में आया? कहते हैं, वह **वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मा को....** धर्म शब्द से गुण। उसमें आता है, अपने दूसरी गाथा में। समयसार में। तीसरी गाथा के अर्थ में आता है। अनेकान्त। अनेकान्तमय मूर्ति। उस अनन्त धर्मवाले को वाणी बतलाती है। आहाहा! यह वचन भी व्यवहार से है। समझ में आया? अनन्त गुण और अनन्त धर्मवाला प्रभु स्वयं जब उसे देखता और जानता है, तब उस वाणी ने अनन्त धर्मवाला आत्मा बतलाया, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त **धर्मात्मक आत्मद्रव्य को वह परोक्ष बताती है।** द्रव्यश्रुत है न! उसे ईशारा करता है, प्रभु! तू अनन्त गुण का धनी है। तुझमें राग का अंश नहीं, वाणी और शरीर की क्रिया का करने का अंश नहीं। क्योंकि उन सबको—स्व और पर को जानने के स्वभाववाला तेरा धर्म है। समझ में आया? ऐसा वाणी बतलाती है, कहते हैं। आहाहा! 'लक्ष थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी।' आता है न? श्रीमद् में आता है अन्तिम।

मुमुक्षु : 'जिनपद निजपद एकता....'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'लक्ष थवाने तेहनो....' मात्र ऐसा लक्ष्य करना। यह आत्मा चिदानन्दस्वरूप है, वह लक्ष्य बँधने के लिये यह शास्त्र की बात है। समझ में आया?

यह भी शास्त्र की वाणी है, उस काल में भी जो ज्ञान होता है, वह कहीं वाणी से नहीं होता। क्योंकि वाणी जड़ है और यहाँ ज्ञान की पर्याय चैतन्य है। यह जड़ से चैतन्य पर्याय कैसे हो? एक बात। और वह जानने की पर्याय हुई, स्वयं से हुई, वह भी एक परलक्षी ज्ञान है, वह चैतन्य का ज्ञान नहीं। आहाहा! परन्तु समझाना (हो), तब

किस प्रकार समझावे ? कि भाषा उसे अनन्त धर्मवाला आत्मा ऐसा.... तत्त्व की सूक्ष्मता और पर से पृथक्ता, यह अलौकिक बात है। प्रत्येक पदार्थ की पर से पृथक्ता और उसकी सूक्ष्मता, अलौकिक बात है ! इस सूक्ष्मता को वाणी बतलाती है, ऐसा यहाँ कहने में आता है। समझ में आया ?

केवलज्ञान अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है;.... वाणी परोक्ष बतलाती है, इतना कहा। क्योंकि उसके ख्याल में अभी परलक्ष्य आया है। स्व आया नहीं। वाणी निमित्त हुई और उस काल में सुननेवाले को ज्ञान की पर्याय खिलती है, वह स्वयं से खिलती है, कहीं वाणी से नहीं। वाणी का तो उसमें अभाव है। उसके भाव में से खिलती है, तथापि उस भाव का खिला हुआ ज्ञान... आहाहा! परोक्ष है। समझ में आया ? और **केवलज्ञान अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है;....** दूसरे प्रकार से कहें तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय, वह आत्मा को प्रत्यक्ष जानती है। क्योंकि उसमें पर का सहारा कुछ है नहीं। आहाहा! यहाँ तो केवलज्ञान की व्याख्या की है। परन्तु नीचे सम्यग्दर्शन में भी—धर्म की प्रथम दशा में भी जो मति और श्रुतज्ञान है, वह परोक्ष नहीं। उसने प्रत्यक्ष स्व का आश्रय किया है, उसमें पर का आश्रय नहीं रहा। इसलिए प्रत्यक्ष हो जाता है। द्रव्यश्रुत ने जाना, वह परोक्ष है। अन्दर में भावश्रुत द्वारा जाना, वह प्रत्यक्ष है। ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया ?

वाणी से जो उसे ख्याल में आया, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। परन्तु वाणी का निमित्तपना और इसे ख्याल में जो आया, वह भी अभी आत्मा का परोक्षपना है। उसमें आत्मा प्रत्यक्ष हुआ नहीं। आहाहा! ऐसा व्याख्यान यह किस प्रकार का! यह तो जैनदर्शन का होगा ऐसा ? वीतरागमार्ग में ऐसा! वह तो कहता है कि छह काय की दया पालो, किसी को न मारो, भूखे को दान दो, यह करो... यह करो। ऐसी बात तो भगवान के मार्ग में सुनी है। रतिभाई! भगवान! बापू! यह सब बातें सब है वह है बाहर की। वह अन्तर की वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, यह परोक्ष बताते हैं। प्रत्यक्ष रूप की यह व्याख्या की कि द्रव्यश्रुत जो वाणी है, उस समय ख्याल आता है, वह परोक्ष है। और जब यह ज्ञान वर्तमान की दशा

वह जाना हुआ ज्ञान जो है परसन्मुख का, वह नहीं। अब इस ज्ञान के बाद की दशा स्वसन्मुख झुकती है, तब वह प्रत्यक्ष हो जाती है। समझ में आया? कितनी बातें समझना इसमें! कितने ही यहाँ दो-चार वर्ष से सुनते हैं तो हम समझ गये हैं, (ऐसा मानते हैं)। स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! भाई! यह समझने का.... यह रास्ता अलौकिक है, बापू!

यहाँ तो कहते हैं, वाणी के काल में द्रव्यश्रुत से ज्ञान कहा-बतलाया, वह तो परोक्ष रीति से है। ऐसा कहा न? और केवलज्ञान तो प्रत्यक्ष है। और केवलज्ञान प्रत्यक्ष अर्थात् कि वाणी द्वारा उसका लक्ष्य नहीं उसे तो स्वसन्मुख के आश्रय से केवलज्ञान हुआ है। वह केवलज्ञान का उपाय भी पहले से... आहाहा! स्व के लक्ष्य के कारण से मति-श्रुतज्ञान हुआ है। वह भी सुनकर हुआ है, ऐसा है नहीं। ऐसा जो ज्ञान का प्रत्यक्षपना होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। वह धर्म की शुरुआत का अंश तब से होता है। बाकी सब बातें हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक १६-१२-१९७४, श्लोक-२-३, प्रवचन-६

दूसरी गाथा का अन्तिम है। **सरस्वती की मूर्ति है।** यहाँ तक चला है न! द्रव्यश्रुत है, वह आत्मा को परोक्ष रीति से बतलाता है। वाणी है न? और केवलज्ञान जो है, वह अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है। अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप, उसे केवलज्ञान प्रत्यक्ष देखता है। भावश्रुतज्ञान वह भी एक आत्मा को प्रत्यक्ष देखता है। वह भावश्रुतज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है, केवलज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है और वाणी भी सरस्वती की मूर्ति है।

इस प्रकार सर्व पदार्थों के तत्त्व को.... अर्थात् सर्व पदार्थ के भाव को **बतलानेवाली ज्ञानरूप और वचनरूप अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है।** यह सरस्वती का श्लोक समयसार का है। **सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादिक बहुत नाम हैं।** कहाँ तक यह घिसने का काम चलता है। कितना घिसा इसने। इसे बन्द कर दो। इसे क्या घिस-घिसकर... यह बात पूरी हुई यहाँ।

अब तीसरे श्लोक में क्या कहना चाहते हैं?

श्लोक - ३

ननु-निष्कलेतररूपमात्मानं नत्वा भवान् किं करिष्यतीत्याह -

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

अथ इष्टदेवतानमस्कारकरणानन्तरं। अभिधास्ये कथयिस्ये। कं? विविक्त-मात्मानं कर्ममलरहितं जीवस्वरूपं। कथमभिधास्ये? यथात्मशक्ति आत्मशक्तेरनति- क्रमेण। किं कृत्वा ? समीक्ष्य तथाभूतमात्मानं सम्यग्ज्ञात्वा। केन? श्रुतेन-

एगो मे सासओ आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

इत्याद्यागमेन। तथा लिंगेन हेतुना। तथाहि-शरीरादिरात्मभिन्नोभिन्नलक्षण-लक्षितत्त्वात्। ययोर्भिन्नलक्षणलक्षितत्त्वं तयोर्भेदो यथा जलानलयोः, भिन्नलक्षणलक्षि-

तत्त्वं चात्मशरीरयोरिति। न चानयोर्भिन्नलक्षणलक्षितत्त्वमप्रसिद्धम्। आत्मनः उपयोग-स्वरूपो-पलक्षितत्वात्शरीरादेस्तद्विपरीतत्त्वात्। समाहितान्तः करणेन समाहितमेकाग्री-भूतं तच्च तदन्तः करणं च मनस्तेन। सम्यक्-समीक्ष्य सम्यग्ज्ञात्वा अनुभूयेत्यर्थः। केषां तथाभूतमात्मान-मभिधास्ये? कैवल्यसुखस्पृहाणां कैवल्ये सकलकर्मरहितत्त्वे सति सुखं तत्र स्पृहा अभिलाषो येषां, कैवल्ये विषयाप्रभवे वा सुखे, कैवल्यसुखयोः स्पृहा येषाम्॥३॥

निष्कल से अन्यरूप आत्मा को (निष्कल नहीं, ऐसे सकल आत्मा को) नमस्कार करके आप क्या करोगे?

वह कहते है —

चहें अतीन्द्रिय सुख उन्हें, आत्मा शुद्ध स्वरूप।
श्रुत अनुभव अनुमान से, कहूँ शक्ति अनुरूप॥ ३॥

अन्वयार्थ - (अथ) परमात्मा को नमस्कार करने के अनन्तर (अहं) मैं [पूज्यपाद आचार्य] (विविक्तं आत्मानं) कर्ममलरहित आत्मा के शुद्धस्वरूप को (श्रुतेन) शास्त्र के द्वारा (लिंगेन) अनुमान व हेतु के द्वारा (समाहितान्तःकरणेन) एकाग्र मन के द्वारा (सम्यक् समीक्ष्य) अच्छी तरह अनुभव करके (कैवल्य-सुखस्पृहाणां) कैवल्यपद-विषयक अथवा निर्मल अतीन्द्रियसुख की इच्छा रखनेवालों के लिए (यथात्म-शक्ति) अपनी शक्ति के अनुसार (अभिधास्ये) कहूँगा।

टीका - अब, इष्टदेवता को नमस्कार करने के पश्चात् मैं कहूँगा। क्या (कहूँगा)? विविक्त आत्मा को, अर्थात् कर्ममलरहित जीवस्वरूप को (कहूँगा)। किस रीति से कहूँगा? यथाशक्ति-आत्मशक्ति का उल्लंघन किये बिना (कहूँगा)। क्या करके (कहूँगा)? समीक्षा करके, अर्थात् वैसे आत्मा को (विविक्त आत्मा को) सम्यक् प्रकार जानकर (कहूँगा)। किस द्वारा (किस साधन द्वारा)? श्रुत द्वारा —

'ज्ञान-दर्शनलक्षणवाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है; अन्य सब संयोग लक्षणवाले भाव, मुझसे बाह्य हैं।'

इत्यादि आगम द्वारा तथा लिङ्ग, अर्थात् हेतु द्वारा (कहूँगा), वह इस प्रकार —

शरीरादि आत्मा से भिन्न हैं, क्योंकि वे भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं। जो भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं, वे दोनों (एक-दूसरे से) भिन्न हैं; जैसे—जल और अग्नि (एक

-दूसरे से) भिन्न हैं; वैसे ही आत्मा और शरीर (दोनों) भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं और दोनों का भिन्न लक्षणों से लक्षितपना अप्रसिद्ध नहीं (अर्थात्, प्रसिद्ध है), क्योंकि आत्मा उपयोगस्वरूप से उपलक्षित है और शरीरादिक उससे विपरीत लक्षणवाले हैं।

समाहित अन्तःकरण से—समाहित, अर्थात् एकाग्र हुए और अन्तःकरण, अर्थात् मन; एकाग्र हुए मन द्वारा, सम्यक् प्रकार से समीक्षा करके -(विविक्त आत्मा को) जान करके-अनुभव करके (कहूँगा)—ऐसा अर्थ है। मैं किसको उस प्रकार के आत्मा को कहूँगा ? कैवल्य सुख की स्पृहावालों को। केवल, अर्थात् सकल कर्मों से रहित होने पर, जो सुख (उपजता है), उसकी स्पृहा (अभिलाषा) करनेवालों को (कहूँगा)। कैवल्य, अर्थात् विषयों से उत्पन्न नहीं हुए—ऐसे सुख की अथवा कैवल्य और सुख की स्पृहावालों को (कहूँगा)।

भावार्थ - श्री पूज्यपादस्वामी प्रतिज्ञारूप से कहते हैं कि मैं श्रुत द्वारा, युक्ति अनुमान द्वारा और चित्त की एकाग्रता द्वारा, शुद्धात्मा को यथार्थ जानकर तथा उसका अनुभव करके, निर्मल अतीन्द्रियसुख की भावनावाले भव्यजीवों को मेरी शक्ति अनुसार शुद्ध आत्मा के स्वरूप को कहूँगा।

विशेष स्पष्टीकरण -

आगम में आत्मा का स्वरूप —

समयसार में कहा है कि —

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥ ३८॥

दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित आत्मा जानता है कि—'निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ; कोई भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है—यह निश्चय है।[१]'

युक्ति (अनुमान) —

शरीर और आत्मा, एक-दूसरे से भिन्न हैं, क्योंकि इन दोनों के लक्षण[१] भिन्न-

---

१. मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे॥ श्री समयसार, गाथा-३८॥

भिन्न हैं। आत्मा, ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला है और शरीरादि उससे विरुद्ध लक्षणवाले हैं, अर्थात् अचेतन -जड़ हैं। जिनके लक्षण भिन्न-भिन्न होते हैं, वे सब एक-दूसरे से भिन्न होते हैं; जैसे कि जल का लक्षण शीतलपना और अग्नि का लक्षण उष्णपना है। इस प्रकार दोनों के लक्षण भिन्न हैं, इस कारण जल से अग्नि भिन्न है।

जैसे, सोने और चाँदी का एक पिण्ड होने पर भी, उसमें सोना अपने पीताशादि लक्षणों से और चाँदी अपने शुक्लादि लक्षणों से भिन्न-भिन्न हैं — ऐसा जान सकते हैं; वैसे ही जीव और कर्म-नोकर्म (शरीर), एक क्षेत्र में होने पर भी, अपने-अपने लक्षणों द्वारा वे एक-दूसरे से भिन्न ज्ञात हो सकते हैं।[२]

तथा अन्तरङ्ग राग-द्वेषादि विकारीपरिणाम भी वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं, क्योंकि राग-द्वेषादिभाव क्षणिक और आकुलता लक्षणवाले हैं; वे स्व-पर को नहीं जानते; जबकि ज्ञानस्वभाव तो नित्य और शान्त-अनाकुल है, स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है; इस प्रकार भिन्न लक्षण द्वारा ज्ञानमय आत्मा, रागादि से भिन्न है—ऐसा निश्चित होता है।[३] *अतः आत्मा, परमार्थ से परभावों से, अर्थात् शरीरादि बाह्यपदार्थों से तथा राग-द्वेषादि अन्तरङ्ग परिणामों से विविक्त-भिन्न है।*

अनुभव - आगम और युक्ति द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप जानकर, अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से आचार्य को जो शुद्धात्मा का अनुभव हुआ है, उस अनुभव से वे विविक्त आत्मा का स्वरूप बतलाना चाहते हैं।

जिसे आत्मा के अतीन्द्रियसुख की ही अभिलाषा है; इन्द्रिय विषयसुख की जिसे अभिलाषा नहीं है, वैसे (जिज्ञासु) भव्यजीवों को ही आचार्य, विविक्त आत्मा का (शुद्धात्मा का) स्वरूप कहना चाहते हैं।

इस प्रकार श्री पूज्यपाद आचार्य आगम, युक्ति, और अनुभव से आत्मा के शुद्धस्वरूप को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं।

---

१. बहुत से मिले हुए पदार्थों में से, किसी एक पदार्थ को भिन्न करनेवाले हेतु को लक्षण कहते हैं। - श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका व न्याय दीपिका।

२. श्री समयसार, गाथा २७-२८

३. श्री समयसार, गाथा २९४

आत्मा के पुनः कितने भेद हैं, जिससे 'विविक्त आत्मा'—ऐसा विशेष कहा गया है ? और आत्मा के उन भेदों में किसके द्वारा किसका ग्रहण और किसका त्याग करना योग्य है ?॥३॥

श्लोक-३ पर प्रवचन

निष्कल से अन्यरूप आत्मा को.... कल अर्थात् शरीर। शरीररहित, उससे अन्य रूप अर्थात् सकल आत्मा। अरिहन्त को सकल आत्मा कहा जाता है न ? शरीर सहित। **निष्कल से अन्यरूप आत्मा को (निष्कल नहीं,...)** अर्थात् कि शरीर नहीं। शरीर नहीं ऐसे दूसरे। शरीरसहित ऐसा। शरीर नहीं ऐसे शरीरसहित। **(ऐसे सकल आत्मा को) नमस्कार करके आप क्या करोगे ? वह कहते है —**

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

टीका - अब, इष्टदेवता को नमस्कार करने के पश्चात् मैं कहूँगा। यह टीका कहीं अमृतचन्द्राचार्य जैसी टीका नहीं है। यह तो साधारण सादी भाषा में है। प्रभाचन्द्र पण्डित की है न। बहुत गम्भीर नहीं है। विविक्त आत्मा को कहूँगा, ऐसा। **विविक्त आत्मा को, अर्थात् कर्ममलरहित जीवस्वरूप को....** भगवान आत्मा कर्म और राग और मलिनभावरहित आत्मा है। उसे मैं कहूँगा। सिद्धस्वरूप है, वह तो प्रगट हुआ है। परन्तु यह आत्मा कर्म और रागरहित उसका वस्तुस्वरूप जो है, ऐसे स्वरूप को मैं कहूँगा।

किस रीति से कहूँगा ? यथाशक्ति-आत्मशक्ति का उल्लंघन किये बिना.... अर्थात् कि मेरी शक्ति प्रमाण **कहूँगा।** ऐसा। सर्वज्ञ जो कहते हैं, इतना तो मैं कहाँ से कह सकता हूँ ? ऐसा आचार्य कहते हैं। मेरी शक्ति है, मैंने अनुभव किया है। रागरहित आत्मा.... राग अर्थात् आस्रव, कर्म अर्थात् अजीव। अजीव और आस्रवरहित जो आत्मा को जाना है, अनुभव किया है, उसे मैं शक्तिप्रमाण कहूँगा। ऐसा कहते हैं। यह यथाशक्ति का अर्थ—मेरी शक्ति प्रमाण।

क्या करके (कहूँगा) ? समीक्षा करके, अर्थात् वैसे आत्मा को (विविक्त

आत्मा को) सम्यक् प्रकार जानकर (कहूँगा)। सम-ईक्षा। सम्यक् प्रकार से जानकर। मैंने जाना है आत्मा कैसा है, ऐसा आचार्य कहते हैं। मैंने अनुभव किया है आत्मा कैसा है ? आहाहा! ऐसा जो जाना है, मैंने अनुभव किया है, तत्प्रमाण मैं कहूँगा। समझ में आया ? **किस द्वारा (किस साधन द्वारा) कहूँगा ? श्रुत द्वारा**—फिर नियमसार की गाथा दी है।

एगो मे सासओ आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

कैसा है आत्मा ? **ज्ञान-दर्शनलक्षणवाला....** जिसका लक्षण और जिस लक्षण से जो वस्तु ज्ञात हो, वह ज्ञानदर्शन लक्षण है। आहाहा! ज्ञानदर्शनलक्षण से ज्ञात लक्ष्य द्रव्य-वस्तु, ऐसा वह आत्मा है। विकल्प से और राग से और निमित्त से ज्ञात नहीं होता, ऐसा आत्मा है, ऐसा कहते हैं। प्रथम सम्यग्दर्शन में भी आत्मा स्वयं अपने ज्ञान-दर्शन के लक्षण द्वारा ज्ञात हो, ऐसा वह है। जानना-देखना जिसका लक्षण है। लक्ष्य अर्थात् द्रव्य का। उसके द्वारा ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

शाश्वत एक आत्मा मेरा है;... शाश्वत् त्रिकाल.... त्रिकाल.... त्रिकाल.... ऐसा जो त्रिकाली द्रव्यस्वरूप जो है, वह शाश्वत्, वह ज्ञानदर्शनलक्षण द्वारा ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। ऐसा **शाश्वत एक आत्मा मेरा है;...** ऐसा यहाँ कहते हैं। पर के आत्मा की यहाँ बात नहीं की। आहाहा! ज्ञान और दर्शन जो प्रगट लक्षण है व्यक्त है, उसके द्वारा मेरा आत्मा है, यह ज्ञात होता है। ज्ञात होता है, इस प्रकार मैं बात करूँगा। आहाहा! तो फिर मैं दूसरे को कहूँगा, इसका अर्थ क्या हुआ ? कि तुमको भी तुम्हारे ज्ञानदर्शनलक्षण से ज्ञात होता है। परन्तु व्यवहार आवे, तब वही आवे न। दूसरी आवे ?

'ज्ञान-दर्शनलक्षणवाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है; अन्य सब संयोग लक्षणवाले भाव, मुझसे बाह्य हैं।' अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव होते हैं, वे सब संयोगी लक्षणवाले हैं, स्वभाव लक्षणवाले नहीं। स्वभाव लक्षण से उसका जानना और देखना इस लक्षण द्वारा वह ज्ञात होता है। उसके द्वारा मैंने जाना है और दूसरे जो

पुण्य और पाप के भाव, वे अन्य लक्षणवाले हैं। है न? **अन्य सब संयोग लक्षणवाले भाव, मुझसे बाह्य हैं।** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र को सुनते हुए जो विकल्प हुआ, उस विकल्प से भी मेरी चीज़ तो भिन्न है, कहते हैं। ऐसी तुम्हारी भिन्न है, ऐसा यहाँ तो कहना है। मैं स्वयं ऐसा मैं कहूँगा, वैसा तुम्हारा आत्मा भी उस प्रकार से ही ज्ञात हो, ऐसा है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप है। यहाँ ज्ञान-दर्शन प्रगट है न, तो वह लक्षण लिया है। और उस लक्षण द्वारा मेरा भगवान ज्ञात होता है और जिस प्रकार से जाना है, उस प्रकार से जगत को मैं प्रसिद्ध करता हूँ, कहते हैं। समझ में आया?

इत्यादि आगम द्वारा तथा लिङ्ग, अर्थात् हेतु द्वारा.... अनुमान द्वारा **(कहूँगा)।** अन्वयार्थ में तो **'लिंगेन' अनुमान और हेतु....** ऐसे दो कहे हैं। परन्तु दो नहीं। अनुमान, वही हेतु है। इसमें दूसरा हेतु नया नहीं है। देखो न! वहाँ कहा न? लिंग अर्थात् हेतु द्वारा। वहाँ तो ऐसा कहा है। अर्थ में और दो भरे हैं। **'लिंगेन'** अन्वयार्थ में। **अनुमान और हेतु....** ऐसा कहा। परन्तु अनुमान, वही हेतु। आहाहा! समझ में आया? भाई! धर्म की बातें भारी सूक्ष्म। यह अन्दर वस्तु है—चैतन्यस्वरूप है, आनन्दमूर्ति है, वह मेरे जानने में घिसते है, बस बन्द ही कर दो, घिसने का बन्द कर दो। छुट्टी ही दे दो।

भगवान आत्मा मेरा और तुम्हारा दोनों का, ऐसा कहते हैं। मेरा है, उसे मैंने इस प्रकार से जाना, ऐसा तुमको कहूँगा परन्तु तुम्हें भी इस प्रकार से ज्ञात होगा, ऐसा कहेंगे। आहाहा! यह कोई क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा करने से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा आत्मा का लक्षण ही नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान हो, उसका लक्षण ही अपने ज्ञान से हो, ऐसा उसका लक्षण है। आहाहा! इसका नाम आगमज्ञान है। यह राग की क्रिया.... बहुत जगह आता है। व्यवहारमोक्षमार्ग है, व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। आता है या नहीं? बहुत कथन है। शब्दकोशवाले ने सब डाले हैं। उसमें कुछ छाँटकर निकालना हो तो भारी मुश्किल पड़े।

साधन व्यवहार है। एक ओर कहे कि एक ही आत्मा मोक्ष का मार्ग है, निश्चय

साधन है। व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। वापस यह डाला। पंचास्तिकाय में है या नहीं ? आहाहा ! यहाँ तो एक ही साधन है। सत्य ही वह साधन है। अन्दर ज्ञान और दर्शन द्वारा अन्दर को पकड़ना। ओहोहो ! ऐसा ही जाना है और इस प्रकार से मैं कहूँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

जो भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं, वे दोनों (एक-दूसरे से) भिन्न हैं;.... शरीरादि आत्मा से भिन्न है। शरीर, राग, पुण्य और पाप के विकल्प वे सब भगवान आत्मा से भिन्न हैं। आहाहा ! **क्योंकि वे भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं।** वे आकुलता और अजीव के लक्षण से ज्ञात हुए हैं। उनका लक्षण ही अलग प्रकार का है, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का जो भाव, उसका लक्षण ही, कहते हैं कि आकुलता और राग है। इससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है नहीं। आहाहा ! अलिंगग्रहण में आया है न ? कि अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? तो फिर यह सब सुनना और... यह सुनने में भी यह इसे सुनना कि हमारा सुनने से तुझे तू ज्ञात हो, ऐसा तू नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्ति से तू ज्ञात हो, ऐसा तेरा स्वरूप ही नहीं है। आहाहा ! उसका विकल्प जो उठे भगवान की भक्ति का शुभराग; साक्षात् त्रिलोकनाथ हो, उनकी वाणी सुने तो उस वाणी में ऐसा कहा कि तू यह वाणी और वाणी सुनते हुए होनेवाला विकल्प, उससे तू ज्ञात हो, ऐसा तेरा स्वरूप ही नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? गजब ! ऐसा मार्ग अकेला निश्चय है, वही मार्ग है। व्यवहार-फ्यवहार है, वह मार्ग है नहीं। आहाहा !

यहाँ तो यह कहा है कि शरीरादि, रागादि इसमें सब ले लिया। वे **आत्मा से भिन्न हैं, क्योंकि वे भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं। जो भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं, वे दोनों (एक-दूसरे से) भिन्न हैं;....** उनके लक्षण अलग, इसलिए वे अलग चीज़ हैं। भिन्न लक्षण से वे ज्ञात होते हैं, इसलिए वह भिन्न चीज़ है। आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा ज्ञान और दर्शन लक्षण से ज्ञात हो और दया, दान के विकल्प हैं, वह विभाव आकुलता

के लक्षण से ज्ञात वह चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और जिसके लक्षण अलग हैं, वह चीज़ अलग है। उसका लक्ष्य अर्थात् वस्तु। समझ में आया?

जैसे—जल और अग्नि (एक-दूसरे से) भिन्न हैं;.... पानी और अग्नि। **आत्मा और शरीर (दोनों) भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं....** अकेला शरीर डाला, हों! परन्तु पहला तो ऐसा था न, शरीरादि आदि सब। वह तो फिर शरीर में सब उसमें आ जाता है वहाँ शरीर डाला है अकेला। शास्त्र में ऐसा आता है न कि पुण्य और पाप के भाव पुद्‌गल है, वे पुद्‌गल के परिणाम हैं। फिर संक्षिप्त करके कहा कि पुण्य-पाप के भाव पुद्‌गल हैं। कर्ता-कर्म (अधिकार) में आया है। आहाहा!

भगवान आत्मा जानने और देखने के लक्षण से ज्ञात होता है, इसलिए उसका लक्षण अलग। वह अलग चीज़ हुई और रागादि का लक्षण अलग। क्योंकि वे आकुलता और दु:खरूप जिसका लक्षण है और दु:खरूप जो चीज़ है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भाव, वे सब दु:खरूप हैं। वे दु:खरूप के लक्षण से ही ज्ञात हों, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो मार्ग की मूल चीज़ है।

भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं और दोनों का भिन्न लक्षणों से लक्षितपना अप्रसिद्ध नहीं.... जल और अग्नि की भाँति। **वैसे ही आत्मा और शरीर (दोनों) भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं....** भगवान आत्मा और पुण्य दया, दान, व्रत के भाव पुण्य; हिंसा, झूठ का भाव पाप और शरीरादि अजीव, इन तीनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। अत: जिसका लक्षण भिन्न, वह वस्तु भिन्न हुई। वह वस्तु एक नहीं रही। आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। इसमें ही सब मर्म भरा हुआ है। आहाहा!

क्योंकि आत्मा उपयोगस्वरूप से उपलक्षित है.... देखा! भगवान आत्मा तो जानने-देखने के उपयोग व्यापार से ज्ञात हो, ऐसा है। जानने-देखनेरूपी उपयोग, उससे ज्ञात हो, ऐसा है। उसका लक्षण तो यह है। **शरीरादिक उससे विपरीत लक्षणवाले हैं।** आहाहा! शरीर की किसी क्रिया से आत्मा ज्ञात हो या राग की क्रिया से आत्मा ज्ञात हो, इन दोनों के लक्षण अत्यन्त भिन्न हैं। समझ में आया? तो फिर यह व्यवहार साधन है, यह कहाँ रहा? शास्त्र में आता है। यह तो उस समय राग की मन्दता की जाति कितनी

कैसी थी, उतना बतलाने के लिये उसे व्यवहार साधन का आरोप दिया है। आहाहा! ऐसी बातें भारी कठिन पड़े।

यहाँ तो आठ वर्ष की लड़की हो और सामायिक करे दो-चार-पाँच। एक आसन पर पाँच सामायिक। हो गयी सामायिक। और सेठिया दे उसे.... क्या कहलाता है? प्रभावना। प्रभावना-प्रभावना। आहाहा! दोनों को हो गया धर्म। अरे! भाई! कहाँ.... अभी सामायिक किसे कहना? वीतराग लक्षण से लक्षित तो सामायिक है। और वह आत्मा ज्ञान-दर्शन से लक्षित हो, उसमें स्थिर हो, उसका नाम सामायिक है। अब यह ज्ञानलक्षण से ज्ञात हो, वह चीज़ क्या है, उसकी ही अभी खबर नहीं होती और उसे हो गयी सामायिक और उसे हो गये प्रौषध, प्रतिक्रमण।

मुमुक्षु : भूतकाल में तो होते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....भाई! गत काल में होते थे?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते थे। आहाहा!

अरे! इसकी जाति न जगे, तब तक धर्म कैसे हो? यह पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ये सब भाव तो रागभाव है। आहाहा! यहाँ कहा न? **शरीरादिक उससे विपरीत लक्षणवाले हैं।** राग का और चैतन्य का दोनों का लक्षण ही विपरीत है। आहाहा! यह तो शान्ति से समझने जैसी बात है, बापू! यह तो कूदकर एकदम यह किया और यह किया और यह किया.... आहाहा!

बहुत से जीव अभी ऐसे के ऐसे कमाने में और कमाने में (जीवन) व्यतीत करते हैं। अर्थात् धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं उन्हें तो। आहाहा! ४०-४० वर्ष ४५-५० वर्ष उसमें और उसमें रुकते हैं। यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ.... यह करूँ। और उसे दिखाने में भी ऐसा आवे कि इसमें ऐसे पैसे इकट्ठे किये, इसने ऐसा किया, तब मुझे भी ऐसा करना। आहाहा! ऐसे पाप के परिणाम में तो बहुत समय गया। धर्म तो एक ओर रहा अभी। परन्तु उसे जो राग की मन्दता श्रवण करने के लिये चाहिए, निवृत्ति के

लिये राग की मन्दता (चाहिए), उसका भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! तो जो पुण्य, अभी राग की मन्दता का भाव जो पुण्य कि जिससे आत्मा ज्ञात नहीं हो, ऐसे पुण्य का भी जहाँ ठिकाना नहीं। आहाहा! अरेरे! ४०-४०, ५०-५०, ६०-६० वर्ष ऐसे का ऐसा यह किया.... यह किया.... यह भरा... यह किया... ऐसे पाप के परिणाम... आहाहा! भाई! उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। उससे आत्मा को नुकसान होता है। उससे आत्मा को लाभ कैसे होगा? आहाहा!

मुमुक्षु : दान करे तो लाभ हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब निवृत्ति में जरा ऐसा करे—राग की मन्दता दान में, दया में कुछ करे, वह तो अभी पुण्य है। आहाहा! यह कहीं धर्म नहीं। वह धर्म का लक्षण नहीं। आहाहा! करोड़ों रुपये दान में दे। वह बाहर ख्याति की आशा से नहीं, तो भी वह राग की मन्दता है। और ख्याति की आशा से दे कि मैंने कुछ किया, मैं कुछ करता हूँ, ऐसा लोग मुझे जाने, वह भाव तो पाप है। चन्दुभाई! आहाहा! यह तो जिस प्रकार से होगा, उस प्रकार से माल आयेगा। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि कितनों को तो अभी धर्म तो एक ओर रहा, परन्तु पुण्य के परिणाम करने का अवसर जिसे नहीं। आहाहा! उसे कहाँ उतारा करना है? समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तेरे हित के लिये तो साधन ज्ञान और दर्शन, वह साधन है। आहाहा! यह जानने-देखने के लक्षण से अन्दर में देख, तब उसे धर्म होता है, तब उसे आत्मा ज्ञात होता है, तब उसे आत्मा का ज्ञान होता है, तब उसे आत्मा की श्रद्धा होती है। आत्मा में आत्मा की श्रद्धा और आत्मा का ज्ञान होना चाहिए न? वह कब हो? कि जैसा यह भगवान पूर्णानन्द है, उस ओर ज्ञान-दर्शन को उन्मुख करे, स्वसन्मुख करे, (तब होता है)। आहाहा! समझ में आया? अभी तो परसन्मुख के पाप के परिणाम से परसन्मुख के पुण्य परिणाम में आने की ही जिसे दिक्कत। आहाहा! गजब बात भाई यह तो!

कहते है कि दोनों लक्षण ही अलग हैं। व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, पंच महाव्रत और बारह व्रत का भाव और शास्त्र-श्रवण और शास्त्र की

ओर के रागवाला ज्ञान, ये तीनों भाव आत्मा के जानने-देखने से प्रगट होता प्रभु, उसके लक्षण से इनका लक्षण है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा! उसमें अभी तो देखो न ऐसा सुनते हैं कि किसी को हार्टफेल हो गया, किसी को कैंसर हुआ। छह महीने में ज्ञात हुआ, वहाँ तुरन्त उड़ गया। वह क्या कहते हैं? ब्लड कैंसर। फिर यह किसी का यह (सुना), हेमरेज हुआ। आहाहा! भाई! वह तो जड़ की स्थिति हो, उस उस काल में उसका वैसा होना हो, वह होता ही है। उसमें आत्मा को क्या है? आहाहा!

भगवान इस स्थिति में भी ज्ञान और दर्शन से ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। वह चीज़ यहाँ विघ्न नहीं करती, वहाँ नजर न करे तो। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि नजर जहाँ जानी है, वह नजर स्वतन्त्र है। आहाहा! समझ में आया? उसे ऐसे रोग और रोग की ओर का विकल्प है, वह भी अवरोधक नहीं है, स्वभाव सन्मुख जाये तो। आहाहा! नारकी में सातवें नरक में उसकी नरक की पीड़ा। भगवान जाने और उसने भोगी है। आहाहा! भूल गया। घड़ीक में कुछ आया न। यह वेदना... इस वेदना के काल में सम्यग्दर्शन पाता है। आहाहा! कारण कि वेदना और वेदना का संयोग, उसका लक्षण ही अलग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा! भले वह वेदना हो और शरीर में वे संयोग भी प्रतिकूल हों, परन्तु उन दोनों के लक्षण भिन्न चीज़ है। क्योंकि वह भिन्न है, इसलिए दोनों के लक्षण भिन्न हैं। और उससे भगवान आत्मा... आहाहा! भिन्न है, कहते हैं। बाबूभाई! यह राग के भाव और देह की स्थिति की दशा, दोनों के लक्षण से प्रभु का लक्षण भिन्न है। उस लक्षण को वहाँ रूकावट नहीं। यदि लक्षण से लक्ष्य को रोके, लक्षण में लक्ष्य को रोके तो कोई रूकावट नहीं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? जानने-देखने के भाव को, भाववान यह वस्तु है, उसमें रोके तो उसे कोई रूकावट नहीं है। ऐसी उसकी चीज़ ही है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सातवें नरक की रव रव नरक की अपरिठाणा की पीड़ा और यह संयोग, सुनते हुए यह चिल्लाहट मचा जाये। वेदनायें भोगी, भगवान ने जानी, तथापि वह वेदना का काल होता है और शरीर भले हो ऐसे संयोग में.... आहाहा! उस काल में भी उसके

लक्ष्य से नहीं पहिचानना और आत्मा के लक्षण से पहिचाने, वह लक्षण ही अलग चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं.... आहाहा! **दोनों का भिन्न लक्षणों से लक्षितपना अप्रसिद्ध नहीं....** देखा? है न? **(अर्थात्, प्रसिद्ध है)...** आहाहा! राग का लक्षण आकुलता और भगवान का लक्षण ज्ञान-दर्शन.... आहाहा! दो लक्षण प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध हैं, प्रसिद्धि प्राप्त हैं। आहाहा! **क्योंकि आत्मा उपयोगस्वरूप से उपलक्षित है....** आहाहा! जानने-देखने के भाव से-पर्याय से-यह उपलक्षित अर्थात् लक्ष्य में आता है। उसके समीप में, उससे जाया जाता है। जानने-देखने के लक्षण द्वारा उपलक्षित अर्थात् स्वरूप में समीप जाया जाता है। आहाहा! समझ में आया? उस काल में रागादि और शरीरादि होने पर भी उनके लक्षण अलग हैं। इसलिए उनका लक्ष्य (ज्ञान) करके छोड़ दे। और जिसका लक्षण जानना-देखना है, उसका लक्ष्य कर लक्षण द्वारा (तो) ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। आहाहा! बातें तो बहुत सरल हैं।

श्रीमद् ने कहा है न, सत् सत् सरल है, सत् सहज है, सत् सर्वत्र है। आता है न भाई? पहले शुरुआत में आता है। सत् सहज है। आहाहा! सत् सर्वत्र है, सत् सत् है। आहाहा! परन्तु उसको बतानेवाला सत्समागम... इसे सत् मिले नहीं। यह सत् है, ऐसा उसे बतानेवाले। आहाहा! समझ में आया? है न? ...भाई! कहा गया? ऐसा है परन्तु इस सत् को बतलानेवाले, जनानेवाले मिले नहीं। इसका अर्थ वहाँ इसे लक्ष्य में लेनेवाला स्वयं नहीं हुआ, इसलिए इसे लक्ष्य में देनेवाले मिले नहीं ऐसा।

ऐसे तो भगवान की वाणी में समवसरण में अनन्त बार सुना है। भगवान की वाणी-भगवान की वाणी सुनी है। परन्तु उसे जिस लक्षण से जीव को जानना चाहिए, वह इसने नहीं जाना, इसलिए इसने सुना ही नहीं। आहाहा! इसे सुनने में जो बात आयी थी कि स्व का आश्रय कर तो तुझे हित होगा। यह नहीं किया। उस वाणी में ऐसा कहा कि हमारा आश्रय करने से तू तुझे नहीं मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? तेरा लक्षण जो है तेरा, उससे मिलेगा। इसका अर्थ कि तेरे आश्रय से तू मिले, ऐसा है। आहाहा! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' कहा न? इसका अर्थ यह है। जानने के-देखने के जो भाव हैं, वह लक्षण तो

जीव का है। उस लक्षण को पर में जोड़ दिया, राग में, पुण्य में। वह तो पर के लक्षण में इस जीव का लक्षण वहाँ जोड़ दिया। यह तो विपरीत किया। समझ में आया?

जिसका लक्षण है, उसके लक्ष्य में लक्षण को न ले जाकर, जिसका लक्षण वह नहीं; रागादि का लक्षण है ज्ञान—जानना-देखना? आहाहा! वहाँ लक्षण इसका (ऐसा) उसे लक्ष्य करना चाहिए। उसके बदले जिसका लक्षण नहीं, उसमें लक्षण को-ज्ञान की पर्याय को वहाँ जोड़ दिया। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भिन्न भाव में जिसने स्व के लक्षण को जोड़ दिया। समझ में आया? ऐसा कैसा उपदेश! सवेरे उत्पाद-व्यय-ध्रुव का चले। यह और ऐसा चले। इन दो के लक्षण विपरीत हैं। आहाहा! शब्द भले थोड़े परन्तु इसके भाव में क्या है? समझ में आया?

समाहित अन्तःकरण से.... कहेंगे, ऐसा कहते हैं। **समाहित अन्तःकरण से—समाहित, अर्थात् एकाग्र हुए और अन्तःकरण, अर्थात् मन; एकाग्र हुए मन द्वारा, सम्यक् प्रकार से समीक्षा करके....** सच्चे प्रकार से आत्मा को **(विविक्त आत्मा को) जान करके....** आहाहा! **अनुभव करके (कहूँगा)....** आहाहा! भगवान ने कहा है, इसलिए कहूँगा, ऐसा नहीं। श्वेताम्बर में तो ऐसा आता है। **'सुयं मे आउसं तेण भगवया'**। हे आयुष्यवन्त! मुझे भगवान ने ऐसा कहा था, वह मैं तुझे कहूँगा। ऐसी शैली ही उसमें आती है। पहली शुरुआत आचारांग की। यहाँ कहते हैं कि भगवान ने मुझे कहा है, इसलिए कहूँगा—ऐसा नहीं। आहाहा! मेरा भगवान अनुभव में आया है, इसलिए में कहूँगा। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। अन्तर का अन्तर कहाँ है, वह इसे जानना चाहिए। जेठाभाई! आहाहा! आचारांग के पहले शब्द से उठाया। पहला पद **'सुयं मे आउसं तेण भगवया'**। वह तो कल्पित रचना की है। वह कहीं भगवान की वाणी नहीं है। परन्तु इस प्रकार कही है। हे जम्बू! सुधर्मस्वामी कहते हैं। भगवान ने मुझे ऐसा कहा है, वह मैं तुझे कहूँगा।

यहाँ कहते हैं, मैंने मेरे आत्मा को एकाग्र मन द्वारा जाना, विकल्परहित जाना। आहाहा! ऐसा अनुभव कर कहूँगा **ऐसा अर्थ है।** है न पाठ? **'समाहितान्तःकरणेन, सम्यक्-समीक्ष्य'** मैं कहूँगा। आहाहा! अब मैं किसके लिये कहूँगा? ऐसा कहते हैं।

है ? **मैं किसको उस प्रकार के आत्मा को कहूँगा ?** आहाहा! ऐसा जो आत्मा भिन्न लक्षण से ज्ञात हो ऐसा अर्थात् अपने ज्ञान-दर्शन के लक्षणसे ज्ञात हो ऐसा, ऐसे को अनुभव कर मैं कहूँगा। परन्तु किसके लिये ? आहाहा!

कैवल्य सुख की स्पृहावालों को। जिसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा है, और भावना है। आहाहा! है न ? पाठ में है न, देखो न! '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' आहाहा! जिसे विषय के सुख की अभिलाषा छूट गयी है। आहाहा! जिसे इन्द्र के इन्द्रासनों में इन्द्राणियों के साथ विषय की वासना, वह भी जिसके हृदय में से छूट गयी है। आहाहा! देखो यह! ऐसे सुननेवाले के लिये कहते हैं। समझ में आया ? श्रीमद् में भी आता है 'काम एक आत्मार्थ का, दूजा नहीं मन रोग।' कहते हैं, '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' अकेला आत्मा का आनन्दस्वरूप, उसकी जिसे स्पृहा है। जिसे पुण्य का भाव है, जिसे पुण्य के फल में स्वर्ग की इच्छा है, ऐसे के लिये यह बात नहीं करूँगा। आहाहा! समझ में आया ?

मैं किसको उस प्रकार के आत्मा को कहूँगा ? कैवल्य सुख की स्पृहावालों को। केवल, अर्थात् सकल कर्मों से रहित होने पर, जो सुख (उपजता है), उसकी स्पृहा.... अर्थात् पूर्ण आनन्द की स्पृहा। आहाहा! अतीन्द्रिय पूर्ण आनन्द की जिसे स्पृहा है, अभिलाष है, जिज्ञासा है, ऐसे श्रोताओं के लिये मैं यह कहूँगा, ऐसे जैसे-तैसे सुनने बैठे और सुने, पुण्य की इच्छावाले हैं, पुण्य के फल को भोगने के भाववाले हैं, उन श्रोता के लिये यह वाणी नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

कैसी शैली से ग्रन्थकार भिन्न-भिन्न शास्त्र रचकर भिन्न-भिन्न हेतु से इस बात को सिद्ध की है। भले यह समाधितन्त्र ऐसे छोटा ग्रन्थ कहलाता है.... समझ में आया ? परन्तु इसके भाव, उन भाव में.... यह तो भगवान के पास गये थे। इनकी वाणी में तो बहुत ही गम्भीरता है। साक्षात् भगवान महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ मुनि पूज्यपादस्वामी गये थे। पहले के कथन है।

वे कहते हैं कि मैं मेरे आत्मा को राग से भिन्न अपने लक्षण से जानकर, अनुभव करके मेरी जाति के अनुभव से मैं यह बात करूँगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

और वह किसके लिये? आहाहा! **कैवल्य सुख की स्पृहावालों को।** जिसे अकेले आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दरूपी मोक्ष की जिसे स्पृहा है। आहाहा! ऐसे श्रोताओं को कहूँगा, कहते हैं। जिसके अन्दर में पुण्य के भाव की अभिलाषा है, उसका फल मिले या स्वर्गादि मिले, सेठाई मिले, रागादि मिले—ऐसे स्पृहावाले के लिये यह बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गाथा देखो न!

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

समीक्ष्य—अनुभव करके। आहाहा! सकल कर्म से रहित ऐसी आत्मा की पूर्णानन्द दशा के जो अभिलाषी हैं, उन्हें मैं कहूँगा। **कैवल्य, अर्थात् विषयों से उत्पन्न नहीं हुए....** आहाहा! पाँच इन्द्रिय की विषय की अभिलाषा से जो सुख है, वह तो दुःख है। आहाहा! जिसे उस विषय की अभिलाषा छूट गयी है.... आहाहा! और जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की दशा की स्पृहा, जिज्ञासा, रुचि है, ऐसी स्पृहावाले जीवों को.... आहाहा! मैं यह आत्मा के अनुभव से आत्मा को कहूँगा। दोनों ओर के जीव का वर्णन किया। कहनेवाले कैसे (होते हैं) और सुननेवाले कैसे (होते हैं) उसके लिये। आहाहा! सुननेवाले को गहरे-गहरे (ऐसा हो कि) हम सुनेंगे, फिर इसमें पुण्य होगा, फिर स्वर्ग के सुख भोगेंगे, ऐसा कहे। नागलपुरवाला, नागलपुर है न नागलपुर? बोटाद के पास नागलपुर नहीं? सलोत, सलोत। विसाश्रीमाली सलोत। स्थानकवासी। उनके केशवजी लड़का था। उसके पिता थे, वे आडतिया का काम करते थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे?

मुमुक्षु : हेमो....

पूज्य गुरुदेवश्री : हेमो सलोत, हेमो सलोत थे। मेमो सलात और हेमो। मेमो सलात बड़े थे और हेमो सलात छोटे थे। वहाँ तो हमारे बोटाद के पास हुआ न नजदीक, वहाँ बहुत बार जाकर आते हैं। वह हेमो सलोत का लड़का था, केशु। वह वहाँ बोटाद गये थे न जब हम, क्या कहलाता है वह लेख? म्युनिसीपलटी के मकान में व्याख्यान

था। उसमें रात्रि में आया था। तब रामजीभाई थे। महाराज! यहाँ कुछ पुण्य करें, यह करें, स्वर्ग के सुख पहले भोगें और फिर मोक्ष में जायेंगे। हमारे हीराजी महाराज के गाँव कहलाये वे सब। नागलपुर, बोटाद, खस और वे सब। आहाहा!

कहते हैं कि जिसे इन्द्रिय के विषय का अन्दर प्रेम है.... आहाहा! उसे दुःख का प्रेम है। आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय सुख की स्पृहा है.... आहाहा! यह उसकी शर्त। ऐसे श्रोताओं को (मैं कहूँगा)। भिन्न-भिन्न ग्रन्थ है न? भिन्न-भिन्न कर्ता ने भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। आहाहा!

कैवल्य, अर्थात् विषयों से उत्पन्न नहीं हुए.... यह नास्ति से बात की। परन्तु कैवल्य अर्थात् अकेले ऐसे सुख की अथवा कैवल्य के सुख की स्पृहावाले को मैं कहूँगा। आहाहा! जिसे आत्मा की अतीन्द्रिय सुखदशा ऐसा जो मोक्ष, उसकी जिसे स्पृहा है, ऐसा कहकर यह कहना चाहते हैं कि अतीन्द्रिय सुख की अभिलाषा (वाला जीव) बन्ध से रहित होना चाहता है। समझ में आया? उसे बन्ध होने के भाव का प्रेम नहीं है। आहाहा! उसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय सुख की जिसे स्पृहा है। आहाहा! चाहे तो शरीर की युवा अवस्थावाले हैं। आहाहा! ऐसे जीवों को मैं आत्मा की शान्ति, समाधि जैसे सत्य है, वैसा मैं कहूँगा। आहाहा! फिर तिर्यंच हो या नारकी हो। यहाँ तो सुननेवाले तो मनुष्य और देव दो ही होते हैं। बहुत तो तिर्यंच होते हैं। समझ में आया? परन्तु समझनेवालों में शर्तें यह। आहाहा!

जिसे अकेले अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करने की जिसे अभिलाषा है। समझ में आया? विषय के सुख और पुण्य के फल का लक्ष्य जिसे छूट गया है। आहाहा! पूज्यपादस्वामी दिगम्बर सन्त हैं। आहाहा! उनके पैर इन्द्र (और) देव पूजते थे और जिनके चरण में लब्धि ऐसी थी कि अमुक कुछ चोपड़े, वहाँ हिलने लगे। ऐसे चमत्कार बाहर से भी प्रगट हुए। परन्तु उन चमत्कार की अभिलाषावाले जीव की यहाँ बात नहीं है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का अनन्त आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द जिसे पूर्ण प्रगट हुआ है, ऐसे पूर्ण की ही जिसे अभिलाषा है। आहाहा! चन्दुभाई! यह शर्त रखी। सुननेवाले को ऐसा हो तो वह हमारी बात सुन

सकेगा। दूसरे को रुचेगी नहीं। पुण्य खराब, पुण्य जहर और उसके फल भोग भी जहर, यह (बात) नहीं सुहायेगी, अतीन्द्रिय सुख के अभिलाष बिना। समझ में आया? उसे ऐसा कहते हैं कि व्रत, तप और भक्ति का भाव जहर है। उससे बँधनेवाले कर्म वे जहर के वृक्ष हैं। और उनसे फलित हो वह जहर का फल है। आहाहा! वजुभाई! दूसरे ओर की मिठास उड़ा दे तो काम आवे, ऐसा यहाँ कहते हैं।

भावार्थ - श्री पूज्यपादस्वामी प्रतिज्ञारूप से कहते हैं कि मैं श्रुत द्वारा, युक्ति अनुमान द्वारा.... पाठ है न? **'श्रुतेन लिंगेन' और चित्त की एकाग्रता द्वारा,....** अन्त:करण आया, **'समाहितान्तः करणेन'** है न? **शुद्धात्मा को यथार्थ जानकर तथा उसका अनुभव करके, निर्मल अतीन्द्रियसुख की भावनावाले भव्यजीवों को मेरी शक्ति अनुसार शुद्ध आत्मा के स्वरूप को कहूँगा।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल ४, मंगलवार, दिनांक १७-१२-१९७४, श्लोक-३, प्रवचन-७

समाधितन्त्र। तीसरी गाथा चलती है न? तीसरी का भावार्थ। **आगम में आत्मा का स्वरूप...** है न? **विशेष।**

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञान-दृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे!

यह जीव अधिकार की ३८वीं गाथा है, समयसार की। इसलिए वहाँ तो पूर्ण स्वरूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त जीव का स्वरूप कैसा है? वह परिणमित जीव कैसा होता है? वह धर्म अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसरूप हुआ, परिणमित वास्तविक जीव का मोक्षमार्ग जिसे परिणमित हुआ है, वह जीव किस प्रकार अनुभव करता है और मानता है, ऐसा कहते हैं। **दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित आत्मा...** ऐसा कहा है न?

आत्मा शुद्ध दर्शन-ज्ञान-आनन्दमय है। परन्तु उसके स्वभाव के सन्मुख होकर दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप होना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। यह निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र की बात है। व्यवहारदर्शन-ज्ञान-चारित्र वह तो उपचार कहने मात्र है। वह कहीं वस्तु नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। चैतन्यस्वभाव मैं आत्मा पूर्ण द्रव्यस्वभाव की प्रतीतिरूप से परिणमित, उसरूप हुआ पूर्ण स्वरूप के ज्ञान को ज्ञेय बनाकर ज्ञानरूप पर्याय में स्वसंवेदनज्ञानरूप से हुआ और चारित्ररूप परिणमित। तीनों की बात लेनी है न? स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्द, उसकी दृष्टि, निर्विकल्प अनुभव और निर्विकल्प स्वसंवेदन और तदुपरान्त स्वरूप की रमणता, अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रता, उसका परिणमन होना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? बाह्य नग्नपना या अन्तर पंच महाव्रत के विकल्प-भाव, वह कहीं चारित्र नहीं है, वह कहीं मुक्ति का मार्ग नहीं है। आहाहा! यहाँ तो जीव की ३८ गाथा पूरी होने का वर्णन है न। आहाहा!

मुमुक्षु : परिणमता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमित। ऐसे आत्मा को समझाया, ऐसा आता है न टीका में? उसने जाना, उसने माना, स्वरूप की रमणता में, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। इस

जीव का स्वभाव अन्तर जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप स्वभाव त्रिकाल है, उसका वर्तमान दशा में उस स्वभाव-सन्मुख होकर जो परिणमन सम्यग्दर्शन निर्विकल्प परिणमन है। सम्यग्दर्शन अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा या नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह समकित नहीं है। समझ में आया? पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर ने-भगवान ने इस स्वरूप को वस्तुरूप से जो देखा है, ऐसा ही जो अन्दर में देखना आवे। आहाहा! उसकी ओर की प्रतीति करने से राग के मिश्रित विचार छोड़कर.... आहाहा! शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु की सम्यग्ज्ञान में-भान में प्रतीति होना (वह सम्यग्दर्शन है)। वैसा परिणमन होना। १५५ न? पुण्य-पाप की, '**जीवादीसद्दणं**' १५५ (गाथा)। यह प्रश्न हुआ था, वहाँ दिल्ली, यह विद्यानन्दजी ने प्रश्न किया था कि '**जीवादीसद्दणं**' यह क्या है? कहा, उसमें देखो, क्या है वह। '**जीवादीसद्दणं**' ऐसा आत्मा के ज्ञान का परिणमन होना। ऐसा नहीं कि आत्मा है और उसे हम विकल्प से मानते हैं और यह जीव है, और यह अजीव है, यह पुण्य-पाप है, ऐसी इसने विकल्प से श्रद्धा की, वह वस्तु नहीं है। समझ में आया?

यह **दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित....** वहाँ भी ऐसा कहा है। ज्ञानरूप श्रद्धा का परिणमना, आत्मारूप परिणमना। ऐसी निर्विकल्प श्रद्धा। शुद्ध चैतन्य पूर्ण स्वरूप का अस्तित्व है—मौजूदगी, उस अस्तित्व का स्वसन्मुख होकर विकास सम्यग्दर्शन की पर्याय द्वारा होना.... आहाहा! और सम्यग्ज्ञान द्वारा वह पूर्ण स्वरूप ज्ञेय होकर ज्ञान में आत्मा का उसरूप ज्ञानरूप परिणमन होना.... आहाहा! इसका नाम ज्ञान। और वह आत्मा अपने स्वरूप में रमणतारूप से परिणमन होना, आनन्द की दशा का परिणमन अवस्था का होना, वह चारित्र है। आहाहा! कहो, महेन्द्रभाई! ऐसी बात है। अरे! उसे यह चीज़ ऐसी है, उसकी ओर इसे देखना नहीं। जहाँ देखने का, मानने का जहाँ है, वहाँ देखा नहीं, माना नहीं। आहाहा! और पर को ऐसे देखकर उसे माना है कि यह आत्मा है, यह अमुक है। यह वस्तु का स्वरूप नहीं है। समझ में आया?

दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित.... पर्यायवाला, ऐसा कहते हैं। द्रव्य-गुण तो ध्रुव शुद्ध है। आहाहा! एक। वहाँ तक तो वह मिथ्यादृष्टि था। चाहे तो वह व्रत पालता हो, भक्ति करता हो, पूजा करता हो। समझ में आया? परन्तु यह उसे राग की क्रिया की सन्मुखता-दृष्टि है, इसलिए उसका स्वीकार है। परन्तु रागरहित पूर्णानन्द का नाथ प्रभु....

अर्थात् कि स्वसन्मुख होने पर वह पूर्ण चीज़ ही दृष्टि में आवे। ऐसे झुका न ? ऐसे झुका, वैसे राग और अल्पज्ञ पर्याय ही उसमें दृष्टि में आती है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! मार्ग भी ऐसा है। लोग ऐसा मानते हैं कि यह तो निश्चय... निश्चय। बापू! निश्चय, वह सत्य है। आहाहा! व्यवहार एक दूसरे द्रव्य की, एक दूसरे कारण-कार्य की भाव की.... आता है न ? बात करता है, परन्तु ऐसा माने, तब तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया ?

चैतन्यस्वभाव शुद्ध पूर्ण उसके सन्मुख होने पर उसका परिणमन होता है, ऐसा कहते हैं। उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन का परिणमन, सम्यग्ज्ञान की स्थिति होना और स्वरूप में आनन्द-लीनता की दशा होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! कहो, समझ में आया ? अभी तो यह गुजराती पुस्तक है न! इसमें तो हिन्दी मुश्किल पड़े। हिन्दी हो ऐसा नहीं इसमें। हिन्दी सवेरे होता है। यह तो गुजराती नया हुआ। इसका कहीं हिन्दी हुआ नहीं। गुजरातीवालों को तो हिन्दी में से गुजराती करना पड़ता है। ऐई! महेन्द्रभाई! अब यह हिन्दीवालों को गुजराती में से हिन्दी करना हो तो करे। यह तो पहला-वहला हुआ है न। आहाहा!

सम्यग्दर्शन अन्तर अनुभव-यह ज्ञानस्वरूपी प्रभु ज्ञाता दृष्टि में आकर, जिसकी दृष्टि का परिणमन दशा में होना, प्रतीतिरूप परिणमन होना, ज्ञान का ज्ञानरूप स्व को पूर्ण को ज्ञेय बनाकर, उसे ज्ञेय बनाया अर्थात् परिणमन ही ज्ञान का हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात कठिन, बापू! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ का मार्ग ऐसा है कि लोगों को यह ऐसा ही लगता है कि यह तो एकान्त... एकान्त, निश्चय-निश्चय। प्रभु! परन्तु मार्ग ही यह एकान्त है। ऐसा एकान्त ज्ञान हो, एकान्त दर्शन हो, स्व के आश्रय से, तब फिर उसमें जो कुछ राग बाकी रहे, उसे जानने का ज्ञान अनेकान्त का तब सच्चा होता है। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसा **परिणमित आत्मा जानता है कि—** ऐसा कहा है न ? ऐसे का ऐसा जानता है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो अर्थ में ऐसा किया है, भाई! मूल में। मूल में यह ही है। यह ही। यह देखा। शब्द शब्द। शब्द शब्द। परिणमित आत्मा ऐसा उसमें है। पहली लाईन में देखा था। परिणमित इसमें लिखा है, मूल स्थिति है ऐसी। आहाहा! दया, दान,

व्रत, भक्ति, पुण्य-पाप के भाव ये मेरे हैं, यह मैं हूँ—ऐसा मिथ्यात्व का परिणमन ऐसी मिथ्याश्रद्धा की दशा होना, इसका नाम मिथ्यादर्शन है। समझ में आया? अरे! ऐसी जिन्दगी मिले और उसका.... आहाहा! उसे तो देखा नहीं, माना नहीं, स्थिर हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करो, यन्त्र रचो। और यन्त्र बहुत आये हैं। शब्दकोश में इतने यन्त्र आये हैं कि उसने ऐसा अभ्यास किया है। नहीं यहाँ? नहीं? आज आये थे। कितने.... बताया था नहीं? ओहोहो! यन्त्र बनाये। चक्र और उसमें नाम और.... ओहोहो! ये कितने ही यन्त्र वापस ऐसे। पृष्ठ के पृष्ठ भरे हैं। ओहोहो! ऐसा पर के लिये याद करते अक्षरों में उसे रचना। यह अक्षर यहाँ है और यह अक्षर यहाँ है। बहुत सूक्ष्म। यह मेहनत बिना की चीज़ है बाहर की। उसमें कुछ बाहर का बहुत जानपना हो तो ही यह होता है, ऐसा कुछ है नहीं। यह परमात्मा स्वयं अन्दर शुद्ध चैतन्यघन, ऐसा इसका पूर्ण रूप ही है द्रव्य और गुण में। उसकी प्रतीति का परिणमना, ज्ञान का परिणमना और स्थिरता का होना। ऐसा आत्मा परिणमित आत्मा जानता है कि.... ऐसा। '**निश्चय से मैं एक हूँ,....** वास्तव में तो मैं एक हूँ। आहाहा! इस सम्यग्दर्शन में (स्वलक्षी) विषय में यह आत्मा परिणमित, ऐसा जानता है। आहाहा! लोग मध्यस्थ से, शान्ति से, धीरज से देखते नहीं, सुनते नहीं, विचारते नहीं। इसलिए ऐसी बात को एकान्त-एकान्त कहकर उड़ा देते हैं। अरे! भगवान! भाई! उसमें तू उड़ जाता है, भाई! तू किसे उड़ाता है? समझ में आया? आहाहा! जिसके परलक्ष्यी ज्ञानी में अभी ऐसी खबर नहीं कि भगवान आत्मा अन्दर में पूर्णानन्द के नाथ के जहाँ स्मरण में जाता है, तब उसका ज्ञान का ज्ञानरूप परिणमन, समकितरूप परिणमन और शान्ति, आनन्द.... आनन्द.... आनन्द.... आनन्द.... आहाहा! ऐसा परिणमित आत्मा अपने को ऐसा जानता है कि.... जीवतत्त्व की अन्तिम है न यह गाथा? जीव की अन्तिम गाथा है। आहाहा!

यह समयसार और यह वस्तु। भरतक्षेत्र में केवली की वाणी रह गयी है। आहाहा! केवली ने कहे हुए तत्त्व समयसार द्वारा प्रसिद्ध किये हैं। आहाहा! कहते हैं कि तू यह समयसार शास्त्र द्वारा प्रसिद्ध हो, ऐसा तू नहीं है। आहाहा! सुजानमलजी! आहाहा! तू तो तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है। प्रभु! आनन्द का सागर है। उस

आनन्द के सागर को स्वीकार करने में तेरा परिणमन है, कहते हैं। ऐसा परिणमित आत्मा अपने को कैसा जानता है ? (ऐसा कहते हैं)। आहाहा!

कि—'निश्चय से मैं एक हूँ,... आहाहा! मैं एक शुद्ध हूँ। वास्तव में वस्तु तो मैं एकरूप ही हूँ, एक हूँ। गुण-गुणी के भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! राग और पुण्य के परिणाम भी (जिसमें नहीं)। मैं जो हूँ आत्मा, वह परिणमित मैं आत्मा को ऐसा जानता हूँ। आहाहा! समझ में आया ? इसकी टीका तो लम्बी है न बड़ी। इसमें तो संक्षिप्त इतने शब्दों में से निकालकर (आधार दिया है)। आहाहा!

वास्तव में... आहाहा! '**खरे**' है न शब्द ? **मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानदृग हूँ, यथार्थ से...** यथार्थ से शब्द है। आहाहा! परन्तु यह आत्मा मैं नहीं। समझ में आया ? मैं तो मेरे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित ऐसा वह मैं एक हूँ। ऐसे तीनरूप से परिणमित हुआ हूँ, तथापि उस द्वारा एक हूँ, ऐसा मैंने निश्चित जाना है। आहाहा! समझ में आया ? अरे! ऐसी वाणी कहाँ है ? बापू! कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् भगवान के पास (गये थे)। आहाहा! है न ? यहाँ सामने है न, समवसरण में है। यह आचार्य दिखते हैं, देखो न! यह दिखते हैं न ? सामने। वहाँ कहाँ ? यहाँ दिखते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य स्तम्भ की आड़ में से ऐसे दिखते हैं। स्तम्भ आड़े नहीं आता। उस ओर दिखते हैं। साक्षात् दिगम्बर सन्त, जिन्हें आत्मदर्शन-ज्ञान-चारित्र सच्चे परिणमित भावलिंगी मुनि हैं, सन्त हैं। आहाहा! णमो लोए सव्व आईरियाणं, उसमें ये सम्मिलित हो गये हैं। वे समवसरण में खड़े हैं। समझ में आया ? आहाहा!

वे ऐसा कहते हैं कि मैं अर्थात् कौन ? मैं अर्थात् कौन ? मैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी निर्मलानन्द की पर्यायरूप परिणमित। वह मैं मेरे आत्मा को कैसा जानता हूँ ? ऐसा परिणमित कैसा जानता हूँ ? आहाहा! **मैं एक हूँ....** आहाहा! तीनरूप परिणमित चीज़ तथापि मैं इस द्वारा तो ऐसा जानता हूँ कि मैं एक हूँ। आहाहा! कहाँ गये तुम्हारे वृद्ध ? वहाँ बैठे हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा!

मैं शुद्ध हूँ.... मैं शुद्ध हूँ। आहाहा! अशुद्ध, वह मैं नहीं—ऐसा न कहकर अस्ति से ऐसा लिया है। बाद में नास्ति से कहेंगे। आहाहा! वास्तव में मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ। वह

टीका करते हैं पीछे। द्रव्यानुयोग के अभ्यासी ऐसा कहते हैं कि हम तो शुद्ध हैं, शुद्ध हैं। अरे! भगवान सुन न, भाई! यह अशुद्धता है, उसका ज्ञान करते हैं, परन्तु वह ज्ञान और दर्शन ऐसा मानता है कि मैं तो शुद्ध हूँ। समझ में आया? पर्याय में अशुद्धता है। यह लिखते हैं तब विकल्प नहीं? परन्तु वह तो ज्ञान उसे जानता है। व्यवहारनय का ज्ञान। यहाँ तो निश्चय का ज्ञान और निश्चय की श्रद्धा और निश्चय की अन्दर चारित्र की परिणति दशा, भाई! आहाहा!

'दर्शनमोह व्यतीत हुआ उपजा बोध जो।' आता है न? 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो।' आहाहा! महेन्द्रभाई! किसमें आता है? श्रीमद् में। तुम्हारे पिता को बहुत प्रेम है। सेठी को अपूर्व अवसर का बहुत है। आहाहा! 'दर्शनमोह व्यतीत हुआ उपजा बोध जो,....' अपेक्षा से बात की है। यहाँ तो समयग्दर्शन की पर्याय अपने कारण से हुई है और स्व का आश्रय कहना, वह भी.... इस कथनी को निश्चय में यदि न समझे-रचे तब तो मुश्किल पड़ जायेगी। समझ में आया?

कहते हैं, मैं **शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ,...** अपूर्ण हूँ, ऐसा भी नहीं। मैं आत्मा वस्तु वह तो दर्शनज्ञानमय। दर्शनज्ञानवाला भी नहीं। वह तो भेद पड़ता है। आहाहा! मैं यह दर्शन—देखना, ऐसा स्वभाव; ज्ञान—ऐसा स्वभाव, स्वभाव। वह मैं दर्शनज्ञानमय हूँ। मैं आत्मा अर्थात् परिणमित आत्मा, ऐसे आत्मा को जानता है कि.... आहाहा! आत्मारूप हुआ आत्मा ऐसा जानता है कि.... आहाहा! **शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ,...** अनन्त गुण हैं, वे कहाँ गये? यह दर्शन-ज्ञान की मुख्यता में सब गये। क्योंकि देखना-जानना वही उसका उपयोग, वही उसका वास्तविक स्वरूप है। उपयोग, वह आत्मा ऐसा कहा है न? तो दर्शनज्ञानमय उपयोगलक्षणों जीवो। आता है? (उपयोग लक्षण)। इसका अर्थ क्या हुआ? यह दर्शनज्ञान जो उपयोग है, वह मैं हूँ। समझ में आया? दर्शन-ज्ञान में सब गुण अविनाभावीरूप से है और दर्शन-ज्ञान को देखता-जानता है तो वह दर्शन-ज्ञानमय ही मैं हूँ। उन सब गुणों को देखनेवाला ज्ञान, ऐसा जो सम्यग्ज्ञानमय मैं हूँ। कान्तिभाई! आहाहा! समझ में आया?

सदा अरूपी हूँ;.... यह कर्म के सम्बन्ध से रूपी भी कहा है न? मैं कर्म के

सम्बन्ध में हूँ ही नहीं। मेरा जो ज्ञायकभाव त्रिकाल दर्शन-ज्ञानमय उसे और कर्म को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें, बापू! भगवान वीतराग का आत्मा अर्थात् कि वीतराग ने कहा हुआ आत्मा, उसका ज्ञान और दर्शन होने से आत्मा हूँ (ऐसा) उसे जानता है। आहाहा! समझ में आया?

यह ऐसा कहते हैं कि शास्त्र से मैं ऐसा जानता हूँ, ऐसा नहीं। मैं तो मेरे दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय से परिणमित आत्मा ऐसा मुझे मैं जानता हूँ। सदा अरूपी। सदा अर्थात् त्रिकाल अरूपी, ऐसा। और कर्म का सम्बन्ध था, इसलिए उसे रूपी कहने में आया है। आहाहा! यह तो व्यवहार का ज्ञान कराने को (कहा है)। परन्तु मैं तो त्रिकाल अरूपी। मेरे स्वरूप में रंग, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ही नहीं। आहाहा! यह फिर कहेंगे। कुछ अन्य वह मेरा नहीं। यहाँ तो है रूप का (अस्ति का) लेते हैं न अभी तो? आहाहा!

सदा अरूपी हूँ;.... यह है न अर्थ? **मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, सदा अरूपी हूँ;...** इसके पहले दर्शन-ज्ञानमय ले लिया। अब कहते हैं, '**कुछ अन्य वह मेरा नहीं....**' अब नास्ति से बात करते हैं। आहाहा! यह गुण-गुणी के भेद का जो विकल्प उठे, वह भी जरा मेरा नहीं। आहाहा! मैं तो ज्ञान-दर्शन से भरपूर प्रभु, अन्य वह मेरा कुछ नहीं, जरा भी नहीं। है? **कोई भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है....** आहाहा! यह और पैसेवाला हूँ, पत्नी का पति हूँ, नर का नृपति हूँ। नृपति—राजा। आहाहा! कहते हैं, मैं इस संस्था का प्रमुख हूँ।

मुमुक्षु : है तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

प्रभु आत्मा आनन्द का नाथ अन्दर ज्ञानसागर से भरपूर। आहा! मुझमें अन्य राग का विकल्प या अन्य की पदवीं, वह कोई चीज़ मुझमें नहीं। आहाहा! मैं शिष्य का गुरु.... आहाहा! अन्य **कोई भी अन्य पर...** यह तो हो गया, शिष्य भी मेरा नहीं। आहाहा! यह सम्प्रदाय मेरा है, यह संघ मेरा है, (यह मान्यता खोटी है)। आहाहा! भगवान आत्मा अपने पवित्र स्वरूप को दृष्टि-ज्ञान में परिणमकर... आहाहा! और यहाँ

तो चारित्र को परिणम कर। पूर्ण अधिकार लेना है न? वह ऐसा कहते हैं.... ऐसा जानता है। कहना है कहाँ? कि मैं **कोई भी अन्य परद्रव्य....** इस राग का कण जो व्यवहाररत्नत्रय का.... आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का जो विकल्प, **अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है...** समझ में आया? ऐसा धर्म का उपदेश। भारी ऐसी बातें! अब तो ऐसा पालन करे, ऐसा व्रत पालो, यात्रा.... क्या कहलाता है अपने? सम्मेदशिखर। यात्रा करो, पालीताणा की यात्रा करो, गिरनार की करो, तीर्थों में जाओ। अरे! यह सब बातें विकल्प की हैं, बापू! यह विकल्प उठता है वह, कहते हैं कि मैं नहीं हूँ, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! ऐसा आत्मा जाना, उसे परिणमित, उसने ऐसा आत्मा को जाना है। आहाहा!

कोई भी.... ऐसा शब्द है न? **अन्य.... कोई अन्य....** ऐसा शब्द है न पाठ? **कोई अन्य....** कुछ भी अन्य। जितना मेरे स्वभाव से विरुद्ध कहा जाता है, वह सब अन्य है। **कोई भी अन्य....** मैं इस प्रकार हूँ, तो इस प्रकार मैं इस (पर) रीति से भी नहीं। कुछ भी अन्य परद्रव्य अर्थात् रजकण और राग, एक राग का कणमात्र, अरे! जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसा भाव भी मुझमें नहीं है। आहाहा! ऐई! आहाहा!

कोई भी अन्य.... कुछ भी अन्य। अरे! गुण-गुणी का भेद पड़ता है, वह भी अन्य है। आहाहा! मैं एकरूप में ऐसा अन्यपना कुछ मुझमें नहीं है। समझ में आया? धर्मी की दृष्टि धर्म के ऊपर होने से वह धर्मी ऐसा अनुभव करता है और जानता है। आहाहा! समझ में आया? **अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र....** एक रजकण-पॉईन्ट भी... आहाहा! यह अनन्त रजकण, कर्म अनन्त रजकण, वाणी अनन्त रजकण, तेजस, उसके अन्तिम में अन्तिम एक रजकण और राग का भी छोटे में छोटा एक अंश.... आहाहा! वह भी (मैं नहीं)। अनेकान्त आया है, भाई की ओर से पुस्तक। हुकमीचन्दजी, जयपुर से आयी है। अनेकान्त की पुस्तक आयी है। दो पूजा की आयी है, वह तो अपने यहाँ पढ़ा गये हैं न? पढ़ा गये हैं, उसे छपाया है। वह हाथी का दृष्टान्त दिया है। एक ने पूंछ पकड़ी और एक ने दाँत पकड़ा और एक व्यक्ति पूरे को देखता है। यह फोटो दिया है सामने। आज थोड़ी पुस्तकें लेकर आये हैं। २०००। थोड़ी-थोड़ी है।

अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है — यह निश्चय है। देखो! इसमें लिखा

है। यह कहाँ से (लिया है)। **श्री समयसार गुजराती आवृत्ति गाथा-३८।**

अब **'युक्ति'। शरीर और आत्मा, एक-दूसरे से भिन्न हैं,....** भगवान चैतन्यस्वरूपी और यह शरीर जड़ रूपी, अत्यन्त भिन्न चीज़ है। व्यवहारनय से ऐसा कहते हैं कि आत्मा और शरीर एक है। आता है न? वह झूठे नय का कथन है। आहाहा! झूठाबोला, झूठा का सत्य करने के लिये कुछ प्रपंच करना पड़े। वैसे शरीर और आत्मा को एक मानने के लिये व्यवहार की कुछ कल्पनायें उठें। हमारा ऐसा सम्बन्ध है न, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है या नहीं? अमुक है या नहीं? समझ में आया? यह तो पंचाध्यायी में नहीं कहा? वहाँ भी निमित्त अर्थात् क्या? शरीर शरीर के कारण से परिणमता है, तू तेरे कारण से परिणमे। उसमें निमित्त करे क्या तुझे? भाई ने लिखा है। मक्खनलालजी ने अर्थ किया है। परन्तु वापस अर्थ.... अरे! भाई! यह कोई पक्ष की चीज़ नहीं। यह तो वस्तु की सत्ता की मर्यादा की चीज़ है। आहाहा! उसकी मर्यादा में जाने से कि मैं तो ऐसा एक शुद्ध सदा अरूपी दर्शन-ज्ञानमय अभेद और उससे भिन्न रजकण और राग का अंश भी मुझमें नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह मुझमें नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शरीर और आत्मा, एक-दूसरे से भिन्न हैं,.... यह प्रश्न किया था भाई ने, नहीं? वहाँ तब (संवत्) १९९५ के वर्ष में, ...सागरामलजी ने कहा (पूछा), द्रव्ययोग और भावयोग क्या है? ९५में। पालीताणा गये न तब। थे न। तब कहे, द्रव्ययोग भाव (योग) अभी अलग नहीं। अरे...! भगवान! समझ में आया? द्रव्ययोग यह कम्पन होना आदि प्रदेश का। भावयोग तो कर्म ग्रहण होने की शक्तिरूप जो भाव, वह भावयोग। ये दोनों भिन्न हैं। मुझमें ये हैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह कम्पन और कर्म ग्रहण में निमित्तरूप भावरूप शक्ति वह मुझमें नहीं है। आहाहा! कब? अभी। आहाहा! अरे! इस बात को अन्दर बैठाना, बापू! इस भाव को अन्दर में रचना, व्यवस्थित करना अलौकिक बातें हैं, बापू! अपवास नहीं कि यह कर दिये आठ अपवास। शरीर का बल हो तो आठ अपवास और पन्द्रह अपवास कर दिये। हो गयी तपस्या। धूल भी नहीं तपस्या। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसमें उप अर्थात् समीप में जाने से, वस्तु है उसके

समीप में जाने से उसे उपवास कहा जाता है। बाकी उसका समीपपना छोड़कर यह सब अपवास आदि होते हैं, वह सब लंघन है। समझ में आया? क्या कहा? त्रागा... ऐई! नवरंगभाई! ऐसी बात है, भाई! वस्तु ऐसी है, हों! आहाहा!

कहते हैं, **दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं।** भगवान आत्मा का लक्षण ज्ञान-दर्शन और शरीर का लक्षण जड़ अचेतन। आहाहा! अरे! राग का लक्षण भी अचेतन है। भगवान आत्मा का लक्षण तो ज्ञान-दर्शन है। समझ में आया? **आत्मा, ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला है और शरीरादि उससे विरुद्ध लक्षणवाले हैं, अर्थात् अचेतन-जड़ हैं।** आहाहा! **जिनके लक्षण भिन्न-भिन्न होते हैं,....** जिनके लक्षण-जानने योग्य चिह्न भिन्न होते हैं, **वे सब एक-दूसरे से भिन्न होते हैं;....**

मुमुक्षु : युक्ति बतायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, युक्ति अनुमान। अनुमान कहा है न!

वे सब एक-दूसरे से भिन्न होते हैं; जैसे कि जल का लक्षण शीतलपना.... जल... जल-पानी। वह तो शीतलरूप से ज्ञात होता है। **अग्नि का लक्षण उष्णपना है। इस प्रकार दोनों के लक्षण भिन्न हैं, इस कारण जल से अग्नि भिन्न है।** ऐसा सिद्ध किया कि एक का लक्षण ठण्डा और एक का लक्षण उष्ण। ऐसे दोनों के लक्षण भिन्न हैं, इसलिए वस्तु भिन्न है। युक्ति कही। दो के लक्षण भिन्न हैं, इससे दोनों चीज़ें भिन्न हैं। आहाहा! यह तो मेरा शरीर, मुझे रोग हुआ, मुझे रोग मिट गया, मेरा शरीर, मेरी काठी पतली है, मेरा शरीर <u>अदोदलुं</u> है। बापू! वह सब कहाँ है तुझमें? वे तो सब शरीर के लक्षण की बातें हैं। आहाहा! जिसके चिह्न उस द्रव्य को पहिचानने के लिये जिसके चिह्न अलग हैं, वह चीज़ अलग है। आहाहा! **इस प्रकार दोनों के लक्षण भिन्न हैं,...** जल का शीतलपना (लक्षण) और अग्नि का लक्षण उष्णपना। इसलिए जिसके लक्षण अलग तो उन दोनों के लक्षण से भिन्न वह वस्तु भी भिन्न है। आहाहा!

जैसे, सोने और चाँदी का एक पिण्ड होने पर भी,... यह आता है। सोना का और चाँदी का इकट्ठा पिण्ड करें, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि यह सफेद सोना। सफेद सोना नहीं। सोना तो पीला है। सफेद तो चाँदी है। परन्तु इकट्ठा डाले, इसलिए

सफेद सोना, ऐसा कहते हैं। इससे सोना सफेद नहीं है। सफेद तो चाँदी है। आहाहा! **सोने और चाँदी का एक पिण्ड होने पर भी,...** स्कन्ध-स्कन्ध। पिण्ड अर्थात् स्कन्ध। **उसमें सोना अपने पीताशादि लक्षणों से और चाँदी अपने शुक्लादि लक्षणों से भिन्न-भिन्न हैं....** पिण्ड एक होने पर भी दोनों के लक्षण से वह वस्तु भिन्न है। सोना गलाकर चाँदी को इकट्ठा डाले या चाँदी गलाकर सोना इकट्ठा डाले, परन्तु तो भी दोनों के लक्षण तो भिन्न हैं। पीलापन लक्षण सोना, चाँदी का लक्षण सफेद। दोनों के भिन्न लक्षण हैं, तो वस्तु भिन्न हो गयी। आहाहा!

वैसे ही जीव और कर्म-नोकर्म (शरीर), एक क्षेत्र में होने पर भी,.... लो! देखा! वह पिण्ड कहता था न? सोना और चाँदी का एक स्कन्ध इकट्ठा किया हो, तथापि दोनों के लक्षण से दोनों उस काल में भी भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? यह **जीव और कर्म-नोकर्म (शरीर),....** नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी आदि, कर्म में रागादि और सब आता है। **एक क्षेत्र में होने पर भी,....** एक जगह रहे होने पर भी, सोना और चाँदी का एक जत्था / स्कन्ध-पिण्ड किया होने पर भी, दोनों के लक्षण अर्थात् चिह्नों द्वारा दो भिन्न चीज़ है, ऐसा ज्ञात होता है। उसी प्रकार जीव और शरीर और कर्म **एक क्षेत्र में होने पर भी, अपने-अपने लक्षणों द्वारा वे एक-दूसरे से भिन्न ज्ञात हो सकते हैं।** बहुत सादी भाषा में।

तथा अन्तरङ्ग राग-द्वेषादि विकारीपरिणाम भी वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं,.... आहाहा! व्रत करूँ, तपस्या करूँ, अपवास करूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है, कहते हैं कि वह तो विकारी राग-द्वेष विकारी परिणाम है। आहाहा! वे विकारी परिणाम जिससे बन्ध होता है, वे आत्मा के परिणाम हैं? वह तो विकारी है। आहाहा! **वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से....** यह विकारी परिणाम राग शुभभाव, दया का, दान का, व्रत का, भक्ति का, यात्रा का भाव इस ज्ञान लक्षण से तो उनका स्वरूप भिन्न है। आहाहा!

सवेरे ऐसा कहा कि राग की उत्पत्ति या राग का व्यय होकर अराग की उत्पत्ति, तीव्रराग का व्यय होकर मन्दराग की उत्पत्ति वह अपनी सत्ता का अनुभव है। अपनी सत्ता के अस्तित्व का अनुभव है। यह तो पूरा तत्त्व द्रव्य और पर्याय सहितवाले की बात

की। यहाँ तो यह राग की पर्याय से भिन्न वस्तु है, उसे यहाँ बताना है। उसकी सत्ता में यह नहीं, ऐसा बताना है। सवेरे तो उसकी सत्ता का उत्पाद-व्यय और (ध्रुव), वह गुण-पर्यायवाला सत् द्रव्य है और वह सत्ता की दशा है। यह आत्मा की सत्ता की ये दशायें हैं। वह तो पर से भिन्न करके बतलाने की बात है। समझ में आया? उसकी सत्ता के अस्तित्व में हो, इतना बतलाने का वहाँ काम है। पर्याय के अस्तित्व में हो, वह भी वहाँ बताना है। आहाहा!

यहाँ तो अभी इस पर्याय में रागादि अस्तित्व है, वह त्रिकाली ज्ञानस्वरूप में नहीं। आहाहा! किस अपेक्षा से कौन सा कथन है यह समझे नहीं और यह लिखा शास्त्र में। सब लिखा है शास्त्र में, सुन न! परन्तु किस नय का कथन है, किस अपेक्षा से कहा है? कहाँ क्या सिद्ध करना है? उसे जाने बिना अर्थ करे (तो) गड़बड़ उठे। आहाहा!

कारण.... अब कारण देते हैं। राग-द्वेष विकारी परिणाम वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं। उसमें ज्ञान है राग में? राग जानता है कुछ? चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, वह राग कुछ जानता है? वह तो अनजान चीज़ हुई। जाननेवाली चीज़ नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से....** अर्थात् कि जो राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध का जो राग उत्पन्न होता है, उस राग में ज्ञान नहीं है। ज्ञान का लक्षण तो आत्मा का है। इस लक्षण से पहिचाना जाता है। राग आकुलता के लक्षण से ज्ञात होता है। समझ में आया? ऐसी बात! ऐसा धर्म का उपदेश! वह तो करो, यह करो, यह करो। धमाल। यह गजरथ होनेवाला है या नहीं अभी कहीं? भगवान के २५००वें वर्ष हुए इसलिए। कल कहता था, नहीं? कुण्डलपुर। गजरथ। आहाहा! हाथी निकाले और रथ में चढ़े, पाँच-दस लाख, दो-पाँच लाख खर्च करे। इतने अधिक नहीं खर्चते होंगे। फिर संघवी की पदवी दे, संघवी। वहाँ आत्मा उसमें नहीं, कहते हैं। यह हाथी के रथ निकले, उसमें भी आत्मा नहीं है और उसकी ओर का जो शुभभाव है, उसमें भी आत्मा नहीं है, आत्मा का स्वरूप नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! तब तुमने नहीं किया यह सब? वह छब्बीस लाख का मकान (परमागममन्दिर)। रामजीभाई ने किया? तब किसने किया?

यह कहाँ चौबीस घण्टे यहाँ रहते थे सब ? अखण्ड... रामजीभाई थे। कौन करे ? भाई ! यहाँ तो यह कहते हैं। उसके परमाणु की पर्याय के काल में वे परमाणु रच गये हैं। उन्हें जीव करे, तब तो जीव अजीव हो जाये। समझ में आया ? आहाहा !

या तो ऐसा कहे, कानजीस्वामी ने यह बनाया, देखो ! यहाँ पुण्यवन्त प्राणी है और करोड़ोंपति यहाँ आते हैं। करोड़ोंपति आवे, या न आवे। किसी को हमने कुछ कहा नहीं। पोपटभाई ! यह करोड़पति रहे। कहा है तुमको कभी कि तुम इसमें पैसे दो ? यह तो इसके कारण से बनने की चीज़ हो तो बने बिना रहे नहीं। यदि आत्मा उसे रचे, ऐसा हो तब तो आत्मा जड़ हो गया। ज्ञान लक्षणवाला रहा नहीं। वह तो जानने के लक्षणवाला है। आहाहा ! और उसमें होनेवाला जो भाव शुभ, वह भी जानने के लक्षणवाला स्वरूप नहीं है, वह तो अजाननस्वरूप है। आहाहा ! वह शुभराग (हो) कि यह होता है। भले कहा न हो और होता है, ऐसा शुभराग। वह शुभराग कहीं चैतन्य के लक्षणवाला नहीं। उसमें तो अजानपना है। राग जानता है कुछ ? राग अपने को जानता है कि मैं कौन हूँ ? राग के समीप भगवान चैतन्यमूर्ति अन्दर है, उसे राग जानता है ? आहाहा ! इसलिए राग का लक्षण और चैतन्य का लक्षण, दोनों भिन्न चीज़ है। गले उतरना कठिन, हों ! और व्यवहार साधक होता है, निश्चय साध्य होता है। देखो ! ऐसा आता है। ऐई ! पण्डितजी ने नहीं लिखा ? बड़ा अर्थ किया है। सब लिखा है। व्यवहार साधन है और धीरे-धीरे ऐसा होता है और ऐसा होता है। धीरे-धीरे आया नहीं ? क्षण-क्षण में आता है न ? आहाहा ! भाई ! वह तो राग की दशा वहाँ कैसी थी निमित्तरूप से। उपादान के कार्य उससे नहीं होते, इस प्रकार कैसा है, वैसा वहाँ ज्ञान कराया है। आहाहा !

देखो भाषा ! **आत्मा के ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं, क्योंकि राग-द्वेषादिभाव क्षणिक और आकुलता लक्षणवाले हैं;....** देखा ! वह तो त्रिकाल नित्यानन्द ध्रुव है। उसका ज्ञानानन्द स्वभाव। उपयोग वह त्रिकाल स्वरूप है। आहाहा ! उपयोग में उपयोग है। आया है न ? वह तो आकुलता में आत्मा है ? आहाहा ! **वे स्व-पर को नहीं जानते;....** कौन ? आकुलता के लक्षणवाला राग, वह स्वयं और पर को नहीं जानता। विशेष कहेंगे, लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

मगसिर शुक्ल ५, बुधवार, दिनांक १८-१२-१९७४, श्लोक-३-४, प्रवचन-८

....चलता है। यह आत्मा तथा शरीर और कर्म ये भिन्न चीज़ है। आत्मा तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। यह शरीर तो जड़स्वरूप है। यह तो मिट्टी है। अन्दर कर्म है, वह भी एक जड़स्वरूप है। तो दोनों के लक्षण भिन्न हैं। जिसे आत्मा प्राप्त करना है अर्थात् जिसे धर्म करना है, उसे आत्मा के ज्ञानलक्षण द्वारा आत्मा को जानना पड़ेगा। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप का ज्ञान करने, उसका लक्षण जानना और देखना ऐसे लक्षण—चिह्न—निशान से आत्मा जाना जा सकता है। उससे आत्मा को सम्यग्दर्शन की पहली धर्मदशा प्रगट होती है, इसलिए कर्म और शरीर से भिन्न चीज़ है।

अब **अन्तरङ्ग राग-द्वेषादि विकारीपरिणाम भी....** थोड़ा चला है, थोड़ा बाकी है। सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तरंग में जो कुछ दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प उठे, वह राग है। और प्रतिकूलता सहन न हो, तब इसे द्वेष होता है। यह राग-द्वेष, विषयवासना या शुभ-अशुभभाव, वे सब विकारी परिणाम हैं। **भी वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं,....** भगवान आत्मा ज्ञान लक्षण से लक्षित (होता है), तब वह पुण्य और पाप के भाव, शुभ और अशुभभाव वह क्षणिक और आकुलता के लक्षण से ज्ञात हों, ऐसे हैं। आहाहा! समझ में आया? है?

क्योंकि राग-द्वेषादिभाव.... आहाहा! चाहे तो भगवान की भक्ति का भाव हो, भगवान के स्मरण का भाव हो या पर की दया पालने का भाव हो। पाल सकता नहीं। आहाहा! क्योंकि वह भिन्न चीज़ है, उसका आत्मा कुछ कर नहीं सकता। परन्तु उसकी दशा में जो दया का भाव, व्रत करूँ, अहिंसा, ब्रह्मचर्य पालन करूँ देह से—ऐसा जो भाव उठता है, वह भी एक राग है। वह विभावस्वभाव है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। भारी सूक्ष्म बातें। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर तीर्थंकर भगवान ने तीन काल-तीन लोक देखे, उसमें यह चीज़ इस प्रकार से देखी। आहाहा!

कहते हैं कि यह प्रभु अन्दर आत्मा जो है, वह तो ज्ञान-दर्शन लक्षणों से ज्ञात हो ऐसी चीज़ है और शरीर और कर्म तो जड़ हैं। वे अचेतन लक्षण से ज्ञात हों, ऐसे हैं। वह

आत्मा की चीज़ नहीं। उसी प्रकार अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं। आहाहा! वे भी.... है? **राग-द्वेषादि भाव क्षणिक और आकुलता लक्षणवाले हैं;....** क्षणिक है कृत्रिम। रहे और जाये.... रहे और जाये.... होवे और जाये। आहाहा! प्रभु अन्दर आत्मा तो नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति है।

जिसे धर्म करना हो—जिस सुखी होना हो, जिसे सुख के पन्थ में जाना हो, तो उसे ज्ञान और दर्शन के लक्षणवाला प्रभु, उसे अनुभवना और पकड़ना पड़ेगा। कहो, पोपटभाई! यह पैसे से सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। दुःखी होगा? पैसे से दुःखी नहीं। पैसे मेरे, मैंने कमाया, मैंने होशियारी की तो यह करोड़-दो करोड़ इकट्ठे हुए। ऐसा जो ममत्वभाव, वह दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह रागादि भाव, वे क्षणिक हैं और आकुलता अर्थात् दुःखरूप हैं। वे आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा!

जैसे यह शरीर और कर्म वह मिट्टी-जड़ और अजीव है, उसी प्रकार पुण्य और पाप के भाव में उसे जानने का स्वभाव नहीं, उसका उसे। राग में राग को जानने का स्वभाव नहीं; इसलिए वह तो क्षणिक और अचेतन और आकुलता के कारण हैं। आहाहा! तत्त्व बहुत सूक्ष्म। बाहर से जिसे देखना है, उसे तो यह मिले ऐसा नहीं है। भगवान तो अन्दर पड़ा है प्रभु। आहाहा! जानने-देखने के निशान से—चिह्न से यह आत्मा, ऐसा पकड़े तो उसे सम्यग्दर्शन होता है, आनन्द होता है, तो उसे धर्म होता है। आहाहा! बाकी कोई यह क्रियाकाण्ड करे, व्रत और भक्ति, पूजा और दान और दया, वह सब तो रागभाग क्षणिक और आकुलता के करनेवाले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान की भक्ति?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? पहले तो यह कहा था। आज अभी कहा पहले। कहा था अभी पहले। भगवान की भक्ति भी राग है और आकुलता है। आहाहा! क्योंकि सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर पूर्ण परमात्मदशा प्राप्त (की) परन्तु वह द्रव्य से तो भिन्न चीज़ है न? और उस भिन्न चीज़ की भक्ति जब.... हो, वह सब राग है। आहाहा! समझ में आया? वह राग क्षणिक है। क्योंकि वह राग पलटकर और दूसरा व्यापार का राग आवे, व्यापार का राग पलटकर और कोई दया का भाव आवे। आहाहा! यह सब

विकल्प राग, वह क्षणिक है और आकुलता को उपजानेवाले हैं। प्रभु आत्मा का यह स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह तो **क्षणिक और आकुलता....** यहाँ तक आया था कल। **वे स्व-पर को नहीं जानते;....** आहाहा! जो अन्दर विकल्प-राग उठता है, वह राग तो स्वयं क्या चीज़ है, ऐसा वह राग अपने को जानता नहीं तथा उस राग के साथ चैतन्य भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसे राग जानता नहीं। अरे! ऐसी बात लोगों को.... आहाहा! कहते हैं कि वह **स्व-पर को नहीं जानते;....** कुछ राग की वृत्ति जो उठी—दया की, दान की, व्रत करूँ, भक्ति करूँ, पूजा करूँ या पाँच-पच्चीस हजार का दान दूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह राग का भाग है। वह राग नहीं जानता अपनी जाति को, वह राग नहीं जानता राग के समीप में रहे हुए भगवान ज्ञानस्वरूप को वह राग नहीं जानता। स्व-पर को जानता नहीं, कहा न? आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की रीति कोई अलग है, बापू! आहाहा! दुनिया जो मानकर बैठी है और दुनिया को जो मिला है, वह सब बाहर की बातें मिली हैं। तत्त्व की बात नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी में यह आया। भगवान! तू तो ज्ञान-दर्शन के लक्षण से-चिह्न से-निशान से ऐसा है आत्मा, ऐसा ज्ञात हो, ऐसा है न! वह राग से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। क्योंकि राग है, वह पर के लक्ष्य से हुई चीज़ है और राग अपने को जानता नहीं तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा साथ में है, उसे राग कहाँ से जाने? आहाहा! समझ में आया? इस प्रकार कैसा धर्म ऐसा? ऐसा वीतराग का धर्म ऐसा होगा? पहले तो ऐसा कहते, छह काय की दया पालना। भोगीभाई! क्या था वहाँ कुण्डला में? आहाहा! या तो किसी के दुःख मिटाना या किसी को मदद करना। ऐसी सब बातों में जगत मानता था।

मुमुक्षु : इस पुण्य से धर्म होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य हो और उससे धर्म होगा। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। तू लुट गया है। यह राग की क्रिया, वह क्षणिक है और दुःखरूप और आकुलता है। उसे तू धर्म मान और उसे धर्म का कारण मान, मिथ्यात्वभाव में तू लुट गया है। समझ में आया?

स्व-पर को नहीं जानते; जबकि ज्ञानस्वभाव तो नित्य.... है प्रभु। जानना... जानना... जानना.... ऐसा जो गुण और स्वभाव, वह तो आत्मा का स्वभाव त्रिकाल है। समझ में आया? वह **शान्त है।** क्षणिक के सामने नित्य है और आकुलता के सामने शान्त है। आहाहा! ज्ञानस्वभाव जानना.... जानना.... जानना.... ऐसा जो स्वभाव, वह तो त्रिकाल है, नित्य है और वह तो शान्त है। आहाहा! ऐसे स्वभाव को जानने से तो शान्ति आवे—अकषायस्वभाव आवे, उसे शान्ति कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह **अनाकुल है,....** यह शान्ति की व्याख्या है। सुखरूप है, आनन्दरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव नित्य है, आनन्द है, अर्थात् अनाकुल है।

स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है;.... भगवान आत्मा का स्वभाव स्व अर्थात् अपने को जानने का और राग, वह पर है, विकल्प आकुलता को पररूप से भी जानने का उसका स्वभाव है। आहाहा! भारी लोगों को, नये लोगों को तो ऐसा लगे। यह किस प्रकार का धर्म निकाला, कहते हैं। जैनधर्म ऐसा होगा? भगवान! जैनधर्म ही यह है। बापू! तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

यह राग की वृत्तियाँ जो उठती हैं, वे दुःखरूप हैं, आकुलता है। उसे छोड़कर परमात्मा स्वयं अपने ज्ञान-दर्शन से जाने तो उसे वहाँ शान्ति आवे, सम्यग्दर्शन अर्थात् सत् की प्रतीति आवे और स्वरूप में रमणता का आचरण आवे। आहाहा! उसे यहाँ जैनधर्म कहो या वस्तु का स्वभाव कहो। ऐसा कहते हैं। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? क्योंकि जैन अर्थात् जीतना। किसे? कि उसके स्वभाव से विरुद्ध जो अज्ञान और राग-द्वेष को, उसे जीतना अर्थात् कैसे जीतना? कि वह पूर्णानन्द का नाथ स्वयं ज्ञान-दर्शन से ज्ञात हो ऐसी चीज़ है, उसे जानने से उसे आनन्द आता है और उसे राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती, उसका नाम राग को जीतना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? जैन अर्थात् कि आत्मा का स्वरूप ही ऐसा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! समझ में आया? आहाहा! हिन्दी भाषा आ जाती है। अभी तो सब गुजराती है। आहाहा!

आत्मा ज्ञानस्वभावी है और नित्य और शान्त और **स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है; इस प्रकार भिन्न लक्षण द्वारा....** आहाहा! दोनों के निशान-दोनों के लक्षण (अर्थात्) राग-द्वेष के, शरीर के, कर्म के और आत्मा के, दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया? यह तो कुछ दया, दान, व्रत, तप, अपवास करे तो आत्मा ज्ञात होगा। अरे! भगवान! यह तो सब वृत्तियों का विकल्प और राग है। राग तो आकुलता है। आकुलता द्वारा अनाकुल आत्मा ज्ञात हो? समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, वह यहाँ लिखा है। आहाहा! इन दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। **ज्ञानमय आत्मा, रागादि से भिन्न है—** आहाहा! **भिन्न लक्षण द्वारा (भगवान) ज्ञानमय आत्मा,....** और रागादि आकुलता से भिन्न है। आहाहा! वह ... तो ऐसा हो गया है न कि इसमें सब गोता खा गये हैं न? कि भगवान की ऐसी भक्ति करते हैं, त्रिलोकनाथ परमात्मा साक्षात् विराजते हों। महाविदेह में तो प्रभु विराजते हैं। सीमन्धरस्वामी भगवान त्रिलोकनाथ जीवन्तस्वामी, जीवन्त अरिहन्त हैं। सब चौबीस तीर्थंकर हुए, वे तो अरिहन्त थे तो अभी तो सिद्ध हो गये। वे तो सिद्धालय में गये—णमो सिद्धाणं। ये णमो अरिहन्ताणं में हैं। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। है न यह समवसरण, देखो न! सामने समवसरण है, वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। समझ में आया? आहाहा! उन भगवान की वाणी में तो यह आया कि भाई! **भिन्न लक्षण द्वारा ज्ञानमय आत्मा,....** और भिन्न लक्षण द्वारा रागादिभाव, यह दो चीज़ तो भिन्न है। **ऐसा निश्चित होता है।** इसलिए.... नीचे श्लोक दिया है न!

छेदन करो जीव बन्ध का, तुम नियत निज निज चिह्नते
प्रज्ञा छैनी के छेद के, दोनों पृथक् हो जाये हैं।

यह कुन्दकुन्दाचार्य की भाषा-वाणी है। **जीव बन्ध दोनों,....** जीव ज्ञानानन्दस्वरूप और बन्ध रागादि स्वरूप। यह **नियत....** निश्चय। रागादि और आत्मा इनका निश्चय निज लक्षण—अपने लक्षण से वह राग और आत्मा दोनों भिन्न पड़ते हैं। **प्रज्ञा छैनी से छेदते....** यह ज्ञान की धारा, उसे आत्मा की ओर झुकाने से राग से भगवान आत्मा भिन्न पड़ जाता है। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

दोनों पृथक् हो जाये हैं। आचार्य ने तो वहाँ टीका में ऐसा कहा है न, भाई! **ऐसा हम जानते हैं।** आहाहा! जाति की बात है न?

हमारा भगवान आत्मा ज्ञान से भिन्न पड़कर अर्थात् राग से ज्ञान की दशा भिन्न करके। ज्ञान से भिन्न पड़ता है न? राग से (-राग द्वारा) कहीं भिन्न (नहीं पड़ता)। ज्ञान की पर्याय प्रज्ञाछैनी द्वारा। जैसे एक लोहे में छैनी मारने से दो टुकड़े हो जाते हैं, वैसे भगवान आत्मा अन्दर की ज्ञान की पर्याय, उसे अन्तर में झुकाने से राग और भगवान दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! यह प्रज्ञाछैनी से छेदे जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया? **समयसार गुजराती आवृत्ति २९४ गाथा।** है न?

अतः आत्मा, परमार्थ से परभावों से, अर्थात् शरीरादि बाह्यपदार्थों से तथा राग-द्वेषादि अन्तरङ्ग परिणामों से विविक्त है- पाठ में आया था न, भाई? विविक्त शब्द है। पाठ में है। चौथा पद। **'विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये'** विविक्त—भिन्न भगवान आत्मा अन्दर है। वह राग की क्रिया और शरीर और कर्म से भगवान अन्दर ज्ञानलक्षण भिन्न है। प्रज्ञाछैनी से उसे पृथक् किया जा सकता है। आहाहा! समझ में आया? यह प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की यह क्रिया। आहाहा! विविक्त है न अन्तिम?

बाह्यपदार्थों से तथा राग-द्वेषादि अन्तरङ्ग परिणामों से विविक्त है- बाह्य पदार्थ अर्थात् शरीर, कर्म, वाणी। यह बाह्य की चीज़ स्त्री-पुत्र-परिवार, वह तो कहीं दूर रह गये। उसमें कहीं है नहीं। बाह्य पदार्थों से भिन्न है और अन्तरंग जो परिणाम हों, उसकी पर्याय में, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह शुभ और अशुभराग से भी प्रभु तो अन्दर भिन्न है। समझ में आया? यह पहले आगम से बात की। फिर युक्ति से की। पहले आगम से की थी न? **'मैं एक शुद्ध सदा...'** फिर यह युक्ति और अनुमान से की, अब अनुभव से बात करते हैं।

आगम और युक्ति द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप जानकर, अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से.... भगवान शुद्ध चैतन्यघन नित्यानन्द प्रभु है, उसे आगम द्वारा जाना और युक्ति द्वारा जाना। अब उसे **शुद्धस्वरूप जानकर, अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से....** जो वस्तु है त्रिकाल आनन्द और ज्ञानस्वरूपी भगवान, उसके सन्मुख

होने पर, दिशा पलटने से... परसन्मुख जो ज्ञान की दशा है, वह मिथ्यादशा है.... आहाहा! उसे त्रिकाली चैतन्य के स्वभाव का सत्कार, आदर, सन्मुख होने पर, उसकी अस्ति का आदर होता है। समझ में आया? और राग, दया-दान के विकल्प का आदर करने से भगवान त्रिकाली आनन्दकन्द का अनादर होता है। आहाहा! समझ में आया? अभी यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात है, हों! आहाहा! चारित्र तो उसमें फिर बहुत चीज़ है अन्दर स्थिरता, आनन्द की दशा वह तो। ... आहाहा!

अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से.... सत् स्वरूप ऐसा जो ध्रुव भगवान आत्मा, उसके सन्मुख होने पर। सत् मुख। सत् के ऊपर दृष्टि पड़ने से। आहाहा! **आचार्य को जो शुद्धात्मा का अनुभव हुआ है, उस अनुभव से वे विविक्त आत्मा का स्वरूप बतलाना चाहते हैं।** तीन बात हुई। आगम से, अनुमान और युक्ति से तथा अनुभव से। चार बात रखी है न भाई पाँचवीं गाथा में, समयसार में। यह तीन रखी। पर का युक्ति से निषेध करके, यह चौथा बोल ले लेना। परन्तु इस अस्ति में यह आ जाता है। समझ में आया?

आचार्य कहते हैं कि आगम से अर्थात् मैंने मेरे स्वरूप को आगम के ज्ञान से जाना। अनुमान और युक्ति से भी लक्षण के भेद से जाना और अब यह अनुभव से जाना। आहाहा! यह राग और पुण्य की क्रिया का विकल्प राग, उससे विमुख होकर और त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्यघन के सन्मुख होकर-अनुभव करके मैंने आत्मा को जाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उस अनुभव से वे विविक्त.... शब्द है न अन्दर चौथा? यह।

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

यह अब बाद में आयेगा। उसे मैं कहूँगा। समझ में आया? किसे अब मैं कहूँगा? ऐसा कहते हैं।

आचार्य आत्मा का स्वरूप किसे बतलाना चाहते हैं? जो माल लेने का इच्छुक है और माल लेने आया है, उसे वह व्यापारी माल देते हैं। घर में जाया जाता है? घर में

देने जाया जाता है ? यह पोटला बाँधकर घर में देने जाये, उसकी कुछ कीमत नहीं होती। घर में जाते हैं न कितने ही यह फेरीवाले अधमण पोटला लेकर कठियाणी के घर में जाते हैं, गरासिया के घर में जाते हैं। अब इस भाव देना है, ऐसा करके बाहर निकले तब वापस आओ वापस। वहाँ जाये उसे फेरे। यहाँ तो दुकान पर बैठे हों। जो माल लेने आया हो और चाहिए हो तो यह माल है, बापू! उसे रुचे तो माल लेकर जाये तो वह जाये और आवे। यह तो बैठा है। भाई! यह माल है, इस भाव है और कहीं एक ही भाव होता है।

हमारे भरूच में एक पारसी की दुकान थी। यह तो उस दिन की बात है, हों! ६५ वर्ष पहले की। पारसी की दुकान में एक ही भाव। कोई भी लड़का जाओ या सेठिया जाओ। यह तो मैंने उन्हें देखा है। पारसी की एक दुकान (थी)। टोपी उस प्रकार की, लुंगियाँ उस प्रकार की, बहुत प्रकार की चीज़ें। गोदाम के गोदाम भरे हुए। भरूच माल लेने जाते थे जब वहाँ ? पालेज दुकान थी न। पालेज में। वहाँ से माल लेने जाते थे। आठ कोस होता है भरूच। हम जाते तो ऐसा पारसी भी.... एक बार टोपी चाहिए थी, टोपी ओढ़ते थे न। टोपी का क्या भाव है ? कि यह भाव है। दुकान में कहा, वहाँ कहा इसमें कुछ कम (नहीं होगा ?) यहाँ हमारे दूसरा भाव नहीं है। पारसी कहे, हमारे दूसरा भाव नहीं है। बालक आयो, सेठिया आओ, वकील आओ, बेरिस्टर आओ। हमारे तो एक ही भाव है। यहाँ एक भाव से-वीतरागभाव से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा एक भाव है। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा आत्मा को मैं किसे कहूँगा ? कहते हैं। जो कुछ खास लेने आया है, उसे। आहाहा!

क्या कहते हैं ? देखो! **आत्मा के अतीन्द्रियसुख की ही जिसे अभिलाषा है;....** आहाहा! जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों की इच्छा गयी है.... आहाहा! जिसे आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, उसकी जिसे स्पृहा, इच्छा, लगनी, भावना यह है, उसे मैं कहूँगा। आहाहा! राग के रसियाओं को यह बात नहीं जँचती। विषय शब्द से राग का प्रेम है जिसे, उसे यह बात नहीं जँचती, उसे मैं नहीं कहूँगा। आहाहा! समझ में आया ? यह उनकी शर्त है। मेरी शर्त में तो मैंने कहा कि आगम से, अनुमान से, अनुभव से मैंने जाना। अब यह मैं बतलाना चाहता हूँ, वह किसे ? **आत्मा के अतीन्द्रियसुख की ही**

अभिलाषा है;.... उसे। आहाहा! यह उनकी शर्त है–सन्तों की यह शर्त है। समझ में आया? समाधि है न? समाधितन्त्र है न? आहाहा! गजब भाई!

मुमुक्षु : माल भी अनमोल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनमोल है, भाई!

बापू! कहते हैं, भाई! मैं समाधि—आत्मा की शान्ति जो आत्मा में भरी पड़ी है, शान्ति का सागर प्रभु है, अतीन्द्रिय आनन्द का वह समुद्र है, वह मैं मेरे अनुभव से किसे कहना चाहता हूँ? आहाहा! जिसे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा है, दूसरी कोई स्पृहा नहीं। आहाहा! यह तो कुछ सुनूँगा तो कुछ पुण्य बँधेगा और पुण्य बन्धन से कुछ स्वर्ग और पैसे मिलेंगे। यह मांगलिक सुने न तो व्यापार में लक्ष्मी–बक्ष्मी पैसा मिले। ... क्या है? एक दुकान खोलनी है दशहरा में। तो क्या है? दुकान ठीक से चले। यह तो राग का अभिलाषी और जड़ का कामी है। ऐई!

मुमुक्षु : ऐसों के लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा के लिये यह शास्त्र नहीं है। आहाहा! वे तो भटकते राम जीव, जिन्हें भटकना है, उनके लिये यह नहीं है। आहाहा!

जिसे आनन्द की स्पृहा है, भले उसने देखा न हो आनन्द... समझ में आया? परन्तु यह विषय की सुख की मिठास से–जहर है उससे–कोई अलग चीज़ है। विषय के सुख यह अरबोंपति, करोड़ोंपति और इन्द्राणियाँ इन्द्र की करोड़ों इन्द्राणियाँ। जिन्हें ऐसा अनाज नहीं, उन्हें तो कण्ठ में से अमृत (झरे), ऐसा तो उनका आहार। ऐसी इन्द्राणियों के भोग भी जिसे जहर जैसे लगते हों। आहाहा! समझ में आया? जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा हो। आहाहा! यह श्रोता के साथ यह शर्त यह। दुनिया प्रसन्न हो, न हो, उसके साथ हमारे कुछ सम्बन्ध नहीं है। तेरे अतीन्द्रिय आनन्द में से तुझे प्रसन्नता हो तो यह बात हम तुझे कहेंगे। कहो, जेठालालभाई! आहाहा! गजब बात करते हैं या नहीं?

हमारा हेतु तो, अतीन्द्रिय सुख प्राप्त करे यह प्राणी, ऐसे हेतु से तो कथन है, कहते हैं। अब इस हेतु का कथन लागू किसे पड़े? आहाहा! दुनिया की अभिलाषा मान की, पूजा की, यह सब उठ जाये जिसे। मेरा भगवान तीन लोक का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द

से भरपूर मैं हूँ। उसे मुझे प्रगट करने की भावना है। आहाहा! राग प्रगट करने की, पुण्य प्रगट करने की भावना (जिसे है), उस जीव के लिये यह बात नहीं है। आहाहा! भाषा देखो न! वीतरागरूप से अनुभव किया और वीतरागता की अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे स्पृहा है, उसके लिये यह समाधितन्त्र का उपदेश है। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद् में आता है न, 'काम एक आत्मार्थ का, दूसरा नहीं मन रोग।' दूसरा रोग नहीं। आहाहा! यहाँ तो गुप्तरूप से कितने ही पत्र आते हैं गुप्तरूप से, हों! महाराज! आपके पास तो करोड़पति आते हैं। उन्हें कुछ कहो तो हम रास्ते चढ़ें। देखो! यहाँ पैसा दे। गुप्तरूप से ऐसे पत्र आते हैं। अरे! यह दुकान भूला। वह दुकान यह नहीं है। यह हलवाई की दुकान में अफीम नहीं मिलता। वहाँ मिलता होगा अफीम? उसकी दुकान अलग होती है। समझ में आया? अभी ही एक पत्र आया था, नहीं? परसों पढ़ा नहीं? महाराज! आपके जो भक्त हैं, वे तो बहुत पैसेवाले हैं, सुखी हैं, अढणक है। ऐसा लिखा था, हों! परन्तु मुझे अढणक हो मुझे, हम दुःखी हैं। ऐई! पढ़ा या नहीं? पत्र, नहीं? ....अढणक मिले। हमारे धन्धा चलता नहीं, गाँव में रह गये, हमारे परिवारी बाहर गये तो वे तो सब पैसेवाले हो गये। आहाहा! भगवान! तू भूला बापू! पत्र लिखने में। परन्तु कितने ही एकान्त में आते हैं। बेचारे बहुत दुःखी हों और यह वापस दुष्काल। दुकान चले नहीं, लोग सात-आठ घर में (हों), यह सौ-डेढ़ सौ-दो सो मिले महीने में, खर्च पूरा पड़े नहीं। हैरान-हैरान हो गये हैं। अरे! बापू! तेरी श्रद्धा से तू हैरान हो गया है। इस प्रतिकूलता से नहीं। आहाहा!

आनन्द का धाम परमात्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप आत्मा का। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' यह सिद्ध भगवान स्वरूप ही चैतन्य भगवान विराजता है। उसका एन्लार्ज होकर पर्याय में सिद्धपना आता है। वह अन्दर है, वह आता है। समझ में आया? उसके सामने देखना नहीं, उसकी भावना नहीं और शास्त्र सुनकर कुछ पैसा मिले, इज्जत मिले, सुख मिले, लड़के अच्छी जगह विवाह हो, लड़कियों का अच्छी जगह विवाह हो। अरे! बापू! तू कहाँ आया भाई?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहा न, बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९९२ के वर्ष की। चार सौ का वेतनवाला एक पारसी था, यहाँ घोळा जंक्शन। चार सौ का वेतन था ९२ के वर्ष में। मैं वहाँ बैठा था। उस मकान में आये थे न, हीराभाई के मकान में। अकेला बैठा, वहाँ आया था। पारसी था। ४०-४५ वर्ष की उम्र। ऐसे हाथ निकाला। क्या है भाई? महाराज! हाथ देखो न। अरे! भाई! यह वह दुकान नहीं है। वह दुःखी होगा, कुछ दुःखी होगा। फिर महीने, दो महीने में बन्दूक (गोली) खाकर मर गया। सुना था। यहाँ सुना था, यहाँ घोळा में था पारसी। कुछ होगा। जगत की बहुत प्रकार की भ्रमणा। हाथ देखो। क्या है, बापू? कि यह मुझे कब पैसे मिलेंगे? भगवान! भूला बापू! यह वह दुकान नहीं है, कहा। यहाँ तो आत्मा की दुकान है, बापू! आत्मा देखना, जानना, वह कैसे मिले और धर्म कैसे (हो)—सुखी हुआ जाये, वह मार्ग है, बापू! हमारे पास दूसरा कुछ है नहीं। हमारी महिमा तुम ऐसे गिनते हो, बड़े महाराज इसलिए उसे आशीर्वाद दे तो अच्छा हो, ऐसा हमारे पास कुछ है नहीं। चन्दुभाई! आशीर्वाद दे आशीर्वाद।

अभी कल एक ब्राह्मण आया था। पालडी। वह पालडी नहीं? तीन कोस दूर है। यह भीखाभाई रवारी वहाँ के हैं। हम निकले नहीं थे तब? (संवत्) २०१३ के वर्ष। पालडी निकले थे। आये थे, नहीं? यहाँ से सिहोर जाते हुए तीन कोस है। पालडी का आया था। महाराज! हाथ रखो। मैं वहाँ मुम्बई तो हमेशा बात सुनने आता हूँ। परन्तु अब तो हाथ रखो, हों! अरे! जवान लड़का था। उसने बेचारे ने सवा पाँच रुपये रखे। जेब में से निकालकर (रखे)। यहाँ तो आत्मा की बातें हैं, भाई! हाथ जड़ है उसमें क्या हो? आहाहा! अरे! ऐसी जिसे संसार की झंखना है, (उसके लिये यह बात नहीं है)। आहाहा!

यहाँ तो भव का अभाव होकर आत्मा की शान्ति कैसे मिले, यह बात है, कहते हैं। जिसे भव के अभाव की भावना है.... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा का अर्थ क्या हुआ? अतीन्द्रिय आनन्द मुझे तो चाहिए है। आहाहा! वह कहाँ से मिलेगा? ऐसा पूछे, तब तो उसे कहे, बापू! अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर में है। यह तुझे खबर नहीं।

आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे इच्छा है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की ओर ढलने के लिये यह हमारा उपदेश है, कहते हैं। आहाहा! दुनिया के भाव से ऐसा लगे यह तो मानो यह क्या होगी ऐसी जाति पूरी? यह वह जैन का धर्म होगा? जैनधर्म में छह काय की दया पालना, छह काय के पियर.... नहीं लिखाते? ऐई! भोगीभाई! संवत्सरी पूरी हो तब नहीं लिखते? पत्र में एक-दूसरे को लिखते हैं। छह काय के पियर, छह काय के ग्वाल, छह काय के रक्षक। सब खोटी बातें। आहाहा! परजीव की रक्षा कौन करे? पर की दया कौन पाले? आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

तेरी दया तू पाल सकता है, तेरी हिंसा—तू नहीं—ऐसा तू कर सकता है। मैं एक नहीं, ऐसी (हिंसा) कर सकता है ज्ञान में, और मैं एक पूर्ण आनन्द का नाथ पूर्ण हूँ, ऐसे तू तेरी रक्षा कर सकता है। ऐसी जीवित ज्योति भगवान विराजे, उसका तू नकार करके, मैं रागवाला और पुण्यवाला हूँ, वह जीवति ज्योति का तूने नकार करके हिंसा की है। तेरी तूने हिंसा की है। आहाहा! ऐसे चैतन्य ज्योति को जानने के लिये यदि तुझे प्रयत्न हो तो वह बात मैं तुझे कहूँगा। कहो, भोगीभाई! ऐसी यह बात है।

अतीन्द्रियसुख की ही.... वापस ऐसा है न? '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' ऐसा है न? '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' मात्र आत्मा के आनन्द की। आहाहा! यह संसार के जो सुख हैं, वे तो दुःख हैं, जहर हैं। आहाहा! इस जहर की पिपासा जिसे छूटी है और आत्मा के अमृतरस को प्रगट करने की जिसे भावना है। आहाहा! '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' कैवल्यपद विषयक अथवा निर्मल अतीन्द्रिय सुख की भावनावाले। ऐसा। अर्थात् कैवल्यपद कहो या मोक्षपद कहो। आत्मा की पूर्ण मोक्षदशा। लोग्गस में आता है न? 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।' हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपद चाहिए है, दिखलाओ। यह तो एक प्रार्थना है। दे कौन? 'सिद्धि सिद्धिं मम दिसंतु।' मुझे दिखलाओ। इसका अर्थ केवलज्ञान हो, तब देखे उसे-स्वयं को। आहाहा! पूर्ण। समझ में आया? आहाहा! ऐसे सुख की जिसे इच्छा है। अतीन्द्रिय सुख की। आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की जिसे स्पृहा है।

इन्द्रिय विषयसुख की जिसे अभिलाषा नहीं है,.... स्पृहा अर्थात् इच्छा, जिज्ञासा, अभिलाषा, भावना यह सब अर्थ में स्पृहा कहा जाता है। **वैसे (जिज्ञासु) भव्यजीवों**

को ही.... आहाहा! देखो न! **वैसे (जिज्ञासु) भव्यजीवों को ही आचार्य, विविक्त आत्मा का....** भिन्न—राग और परपदार्थ से भिन्न भगवान आत्मा का **(शुद्धात्मा का) स्वरूप कहना चाहते हैं।** आहाहा! मिलाया है भारी, हों! छोटाभाई ने बहुत अच्छा लिखा है। छोटालाल गुलाबचन्द दिगम्बर अहमदाबाद। कुछ पढ़े हुए थे, नहीं? कुछ बड़ी पदवी थी। ग्रेज्युएट थे कुछ। अन्दर होगा कुछ। है? यहाँ आते थे न? अन्तिम बीमारी में मैं वहाँ गया था अहमदाबाद। वहाँ रहते थे, वहाँ गये थे। बोर्डिंग में। वह डेलो था। गुजर गये। बहुत अच्छा लिखा है। यह समाधितन्त्र यहाँ पढ़ा था जब, तब उसने सुना था। वह फिर भाई ने डाला, नहीं? शीतलप्रसाद का। तब यह कहाँ थे, नहीं? शीतलप्रसाद का पढ़ा था। तब लिखा था। तब मैं उपस्थित था। हमने पढ़ा है, इसलिए हमें समझ में आया, वह सब मैंने लिखा है।

इस प्रकार श्री पूज्यपाद आचार्य.... पूज्यपाद मुनि दिगम्बर सन्त आनन्द में केली करनेवाले थे। सन्त उन्हें कहते हैं। यह पंच महाव्रत पाले और अमुक करे, वह साधु नहीं, बापू! यह तुझे खबर नहीं। जो आत्मा के आनन्द के स्वरूप का साधन करे, वह साधु। आहाहा! वह यह मुनि आनन्द के साधन में थे, ऐसे पूज्यपाद आचार्य ने.... आहाहा! ऐसे सन्त कहाँ हैं? सन्त किसे कहना, इसकी भी खबर कहाँ है जगत को? आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना के द्रव्यलिंगी सब बाहर के, वे सब भटकने के मार्ग हैं। समझ में आया?

आगम, युक्ति, और अनुभव से आत्मा के शुद्धस्वरूप को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं। लो!

श्लोक - ४

कतिभेदः पुनरात्मा भवति ? येन विविक्तमात्मानमिति विशेष उच्यते। तत्र कुतः कस्योपादानं कस्य वा त्यागः कर्तव्य इत्याशंक्याह :-

[१] बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्॥ ४॥

बहिर्बहिरात्मा, अन्तः अन्तरात्मा, परश्च परमात्मा इति त्रिधा आत्मा त्रिप्रकार आत्मा। क्व ? सर्वदेहिषु सकलप्राणिषु। ननु अभव्येषु बहिरात्मन एव सम्भवात् कथं सर्वदेहिषु त्रिधात्मा स्यात् ? इत्यप्यनुपपन्नं तत्रापि द्रव्यरूपतया त्रिधात्मसद्भावोप-पत्तेः कथं पुनस्तत्र पंचज्ञानावरणान्युपपद्यन्ते ? केवलज्ञानाद्याविर्भावसामग्री हि तत्र कदापि न भविष्यतीत्यभव्यत्वं, न पुनः तद्योगद्रव्यस्याभावादिति। भव्यराश्यपेक्षया वा सर्वदेहिग्रहणं। आसन्नदूरदूरतरभव्येषु अभव्यसमानभव्येषु च सर्वेषु त्रिधाऽऽत्मा विद्यत इति। तर्हि सर्वज्ञे परमात्मन एव सद्भावाद् बहिरन्त-रात्मनोरभावात्त्रिधात्मनो विरोध इत्यप्ययुक्तम्। भूतपूर्वप्रज्ञापन नयापेक्षया तत्र तद्विरोधासिद्धेः घृतघटवत्। यो हि सर्वज्ञावस्थायां परमात्मा-सम्पन्नः स पूर्वं बहिरात्मा अन्तरात्मा चासीदिति। घृतघटवदन्तरात्मनोऽपि बहिरात्मत्वं परमात्मत्वं च भूतभाविप्रज्ञापननयापेक्षया द्रष्टव्यम्। तत्र कुतः कस्योपादानं कस्य वा त्यागः कर्तव्य इत्याह उपेयादिति। तत्र तेषु त्रिधात्मसु मध्ये उपेयात् स्वीकुर्यात् परमं परमात्मानं। कस्मात् ? मध्योपायात् मध्योऽन्तरात्मा स एवोपायस्तस्मात् तथा बहिः बहिरात्मानं मध्योपायादेव त्यजेत्॥४॥

ऐसी आशङ्का करके कहते हैं —

त्रिविधिरूप सब आतमा, बहिरात्मा पद छेद।
अन्तरात्मा होयकर, परमातम पद वेद॥ ४॥

अन्वयार्थ - (सर्वदेहिषु) सर्व प्राणियों में (बहिः) बहिरात्मा, (अन्तः)

---

१. तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतीवाएण चयहि बहिरप्पा॥

अर्थात्, वह आत्मा प्राणियों के तीन प्रकार का है; अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा। अन्तरात्मा के उपाय द्वारा बहिरात्मपन को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

(- श्री मोक्षप्राभृत, कुन्दकुन्दः)

अन्तरात्मा (च परः) और परमात्मा, (इति) इस तरह (त्रिधा) तीन प्रकार का (आत्मा) आत्मा (अस्ति) है। (तंत्र) आत्मा के उन तीन भेदों में से (मध्योपायात्) अन्तरात्मा के उपाय द्वारा, (परमं) परमात्मा को (उपेयात्) अङ्गीकार करना चाहिए और (बहिः) बहिरात्मा को (त्यजेत्) छोड़ना चाहिए।

टीका - बहिः, अर्थात् बहिरात्मा; अंतः, अर्थात् अन्तरात्मा; और परः, अर्थात् परमात्मा—इस प्रकार त्रिधा, अर्थात् तीन प्रकार का आत्मा है। ये (प्रकार-भेद) किसमें हैं? सर्व देहियों में-समस्त प्राणियों में।

(शङ्का -) अभव्यों में बहिरात्मपना ही सम्भव होने से, सर्व देहियों (प्राणियों) में तीन प्रकार का आत्मा है—ऐसा किस प्रकार हो सकता है?

(समाधान -) ऐसा कहना भी योग्य नहीं, क्योंकि वहाँ भी (अभव्य में भी) द्रव्यरूपपने से, तीनों प्रकार के आत्मा का सद्भाव घटित होता है।

(आशङ्का -) वहाँ पाँच ज्ञानावरण (कर्मों) की उपपत्ति किस प्रकार घट सकती है?

(समाधान -) केवलज्ञानादि के प्रगट होनेरूप सामग्री ही उसके होनी नहीं है, इस कारण उसमें अभव्यपना है; न कि तद्योग्य द्रव्य के अभाव से (अभव्यपना है) अथवा भव्यराशि की अपेक्षा से सर्व देहियों का ग्रहण समझना। आसन्न भव्य, दूर भव्य, दूरतर भव्य तथा अभव्य जैसे भव्यों में-सर्व में तीन प्रकार का आत्मा है।

(शङ्का -) तो सर्वज्ञ में परमात्मा का ही सद्भाव होने से और (उनमें) बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा का असद्भाव होने से, उसमें (सिद्ध में) तीन प्रकार के आत्मा का विरोध आयेगा?

(समाधान -) ऐसा कहना भी योग्य नहीं है क्योंकि भूतपूर्व* प्रज्ञापननय की अपेक्षा से, उनमें घृतघटवत् उस विरोध की असिद्धि है (उसमें विरोध नहीं आता)। जो सर्वज्ञ अवस्था में परमात्मा हुए, वे भी पूर्व में बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा थे।

---

* नोट - भूत-भावी प्रज्ञापननय, जो भूतकाल की पर्याय को वर्तमानवत् कहे, उस ज्ञान (अथवा वचन) को भूतनैगमनय अथवा भूतपूर्व प्रज्ञापननय कहते हैं। जो भविष्यकाल की पर्याय को वर्तमानवत् कहे, उस ज्ञान (अथवा वचन) को भावीनैगमनय अथवा भावीप्रज्ञापन नय कहते हैं। (-श्री तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय १, सूत्र ३३)

घृतघट की तरह भूत-भावी प्रज्ञापननय की अपेक्षा से अन्तरात्मा को भी बहिरात्मपना और परमात्मपना समझना।

इन तीनों में से किसका, किस द्वारा ग्रहण करना या किसका त्याग करना ? वह कहते हैं। ग्रहण करना, अर्थात् उसमें उन तीन प्रकार के आत्माओं में से, परमात्मपने का स्वीकार (ग्रहण) करना। किस प्रकार ? मध्य उपाय से मध्य, अर्थात् अन्तरात्मा, वही उपाय है; उस द्वारा (परमात्मा का ग्रहण करना) तथा मध्य (अन्तरात्मारूप) उपाय से ही, बहिरात्मपने का त्याग करना।

भावार्थ :- सर्व जीवों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा — ऐसी तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। उनमें बहिरात्म अवस्था छोड़नेयोग्य है; अन्तरात्म अवस्था, परमात्मपद की प्राप्ति का साधन है; अतः वह प्रगट करने योग्य है और परमात्म अवस्था जो आत्मा की स्वाभाविक वीतरागी अवस्था है, वह साध्य है; अतः वह परम उपादेय (प्रगट करने योग्य) है।

प्रश्न - सर्व प्राणियों में आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं — ऐसा श्लोक में कहा है, किन्तु अभव्य को तो एक बहिरात्म अवस्था ही सम्भव है, तो सर्व प्राणियों के आत्मा की तीन अवस्थाएँ कैसे सम्भव हैं ?

उत्तर - जो जीव, अज्ञानी बहिरात्मा है, उसमें भी अन्तरात्मा और परमात्मा होने की शक्ति है। भव्य और अभव्यजीवों में भी केवलज्ञानादिरूप परमात्मशक्ति है। यदि उनमें वह शक्ति न हो तो उसके प्रगट न होने में निमित्तरूप केवलज्ञानावरणादि कर्म भी नहीं होना चाहिए, किन्तु बहिरात्मा को (अभव्य को भी) केवलज्ञानावरणादि कर्म तो है; इससे स्पष्ट है कि बहिरात्मा में (भव्य या अभव्य में) केवलज्ञानादि शक्तिपने हैं। अभव्य के उस शक्ति को प्रगट करने जितनी योग्यता नहीं है।

अनादि से सभी जीवों में केवलज्ञानादिरूप परमस्वभाव शक्तिरूप से है। उस स्वभाव का श्रद्धा-ज्ञान करके, उसमें लीन हो तो वह केवलज्ञानादि शक्तियाँ प्रगट हो जाएँ और केवलज्ञानावरणादि कर्म स्वयं छूट जाएँ।

श्रीमद्‌राजचन्द्रजी ने कहा है :—

'सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे सो होय'

समस्त जीव, शक्तिरूप से परिपूर्ण सिद्धभगवान जैसे हैं, किन्तु जो अपनी

त्रिकाली शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वभावशक्ति को सम्यक् प्रकार से समझे, उसकी प्रतीति करे और उसमें स्थिरता करे, वे परमात्मदशा प्रगट कर सकते हैं।

वर्तमान में जो धर्मी जीव, अन्तरात्मा है, उसे पूर्व अज्ञानदशा में बहिरात्मपना था और अब अल्पकाल में परमात्मपना प्रगट होगा।

परमात्मपद को प्राप्त हुए श्री अरहन्त और सिद्धभगवान को भी पूर्व में बहिरात्मदशा थी, उन्होंने जिस समय अपनी स्वाभाविकशक्ति की प्रतीति की और स्वभावसन्मुख हुए, उसी समय उनके बहिरात्मपने का अभाव हो गया और अन्तरात्मदशा प्रगट हुई, तत्पश्चात् उग्रपुरुषार्थ करके स्वभाव में लीन होकर परमात्मा हुए।

इस प्रकार अपेक्षा से प्रत्येक जीव में तीन प्रकार घटित होते हैं—ऐसा समझना।

विशेष स्पष्टीकरण -

बहिरात्मा - जो बाह्य शरीरादि, विभावभाव तथा अपूर्ण दशाओं में आत्मबुद्धि करता है, अर्थात् इनके साथ एकत्वबुद्धि करता है, वह बहिरात्मा है। वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को भूलकर, बाहर में काया और कषायों में निजपना मानता है। उसको भावकर्म और द्रव्यकर्म के साथ एकत्वबुद्धि है; उन्हीं से अपने को लाभ-हानि मानता है। वह मिथ्यादृष्टि जीव, अनादि काल से संसार परिभ्रमण के दुःखों से दुःखी होता है।

अन्तरात्मा - जिसको शरीरादि से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है, वह अन्तरात्मा है। उसे स्व-पर का भेदविज्ञान है। उसे ऐसा विवेक वर्तता है कि—'मैं ज्ञान-दर्शनरूप हूँ, एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है; अन्य सब संयोग लक्षणरूप, अर्थात् व्यवहाररूप जो भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं, मुझसे बाह्य हैं।'—ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा, मोक्षमार्ग में स्थित है।

परमात्मा - जिनने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का पूर्णरूपेण विकास करके, सर्वज्ञपद प्राप्त किया है, वे परमात्मा हैं॥४॥

श्लोक - ४ पर प्रवचन

आत्मा के पुनः कितने भेद हैं। अब आत्मा बतलाना है न? तो आत्मा के भेद कितने? किस प्रकार के? **जिससे 'विविक्त आत्मा'—ऐसा विशेष कहा गया है?** क्या कहा? विविक्त, ऐसा कहा न? राग से, शरीर से और कर्म से भिन्न ऐसे आत्मा को मैं कहूँगा। तब उस आत्मा के प्रकार कितने हैं कि तुम विविक्त आत्मा कहते हो? समझ में आया? **आत्मा के और कितने भेद हैं, जिससे 'विविक्त आत्मा' — ऐसा विशेष कहा गया है?** मैं एक आत्मा को कहूँगा। कैसे आत्मा को? विविक्त। अर्थात्? कि पुण्य-पाप की क्रिया के राग से भिन्न और देह और शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न। शरीर—नोकर्म और कर्म से भिन्न। नोकर्म, कर्म और भावकर्म। यह राग-द्वेष अर्थात् भावकर्म। तीनों से भिन्न है, उस आत्मा को मैं कहूँगा। समझ में आया? तब कहते हैं, उसके भेद कितने हैं कि तुमने ऐसा कहा है?

और आत्मा के उन भेदों में किसके द्वारा किसका ग्रहण और किसका त्याग करना योग्य है? आहाहा! **ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—** है न पाठ? '**तत्र कुतः कस्योपादान**' किसका ग्रहण करना? और किसका त्याग करना? '**इत्याशंक्याह**' ऐसी जानने की इच्छा है। आशंका अर्थात् तुम्हारा कहा हुआ मिथ्या है, ऐसा नहीं, परन्तु मुझे समझने के लिये आशंका है कि तुम विविक्त आत्मा किसे कहते हो? अन्तरात्मा के कितने प्रकार हैं कि उसमें विविक्त आत्मा को आप बतलाना चाहते हो?

चौथी गाथा। मोक्षपाहुड़ में भी नीचे है।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्॥ ४॥

लो! तीनों आ गये संक्षेप में। इसका अन्वयार्थ करो पहले। अन्वयार्थ लो न।

अन्वयार्थ - सर्व प्राणियों में.... जगत के जो अनन्त जीव हैं; निगोद के अनन्त जीव आलू, शकरकन्द, कन्दमूल। आहाहा! एक कणी में असंख्य शरीर और यह असंख्य शरीर में एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त आत्मा। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं। समझ में आया? कन्दमूल का एक टुकड़ा, आलू, शकरकन्द

का राई जितना टुकड़ा (लो) तो उस टुकड़े में असंख्य तो औदारिक शरीर हैं, और एक शरीर में, अभी तक जो सिद्ध हुए अनन्त, उनसे अनन्तगुणे एक शरीर में जीव हैं। आहाहा! ऐसी वस्तु अस्ति स्वरूप है, हों! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने देखा और यह वस्तुस्थिति है।

ऐसे **सर्व प्राणियों में.... 'सर्वदेहिषु'** शब्द है न? **बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा, इस तरह तीन प्रकार का आत्मा है।** सब आत्मा में तीन प्रकार से है। आहाहा! बहिरात्मा भी तीन प्रकार से है, अन्तरात्मा भी तीन प्रकार से है और परमात्मा भी तीन प्रकार से है। आहाहा! जितने जीव की राशि है, वे सब अनन्त बहिरात्मा हैं, असंख्य अन्तरात्मा हैं। अनन्त परमात्मा हैं। और प्रत्येक जीव को यह तीनों लागू पड़ते हैं, कहते हैं। बहिरात्मपना, अन्तरात्मापना और परमात्मापना। ओहोहो! आचार्य की शैली! ग्रन्थ रचते हैं.... भिन्न-भिन्न हों, वैसे स्पष्ट किया है।

सर्व प्राणियों में.... सर्व प्राणियों में कोई प्राणी बाकी रहा? निगोद के जीव, प्रत्येक वनस्पति, त्रस, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। आता है या नहीं? .... नहीं आता? एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया.... यह तो पहाड़ा बोल जाये। परन्तु क्या है? ऐई! भोगीभाई! तस्स मिच्छामि दुक्कडम। जीविया वहरविया तस्स मिच्छामी.... क्या परन्तु जीव और किसे जीव (कहना)? आहाहा! समझ में आया? वह तत्सुतरी बोल जाये.... अप्पाणं वोसरे। आत्मा को वोसराना। परन्तु कौन सा आत्मा? किसे वोसराना? किसे रखना? किसे प्रगट करना?

मुमुक्षु : यह विषय चलता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चलता नहीं। यह बात सच्ची है। आहाहा! यह विषय तत्त्व का विषय, वास्तविक स्वरूप, जिसमें से सत्य प्राप्त हो, वह बात ही सब उल्टे रास्ते चढ़ गयी है। आहाहा!

आचार्य महाराज कहते हैं कि सर्व आत्माओ में **बहिरात्मा,...** मिथ्यादृष्टिपना **अन्तरात्मा...** साधकपना, **परमात्मा....** पूर्ण दशा प्राप्त जीव। प्रत्येक आत्मा में तीनों लागू पड़ते हैं, कहते हैं। **इस तरह तीन प्रकार का आत्मा है। उन... 'मध्योपायात्'** मध्य कहा

न ? '**बहिः**' '**अन्त**' अन्त, मध्य। **अन्तरात्मा के उपाय द्वारा,....** आहाहा! पूर्णानन्द स्वरूप के सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता द्वारा **परमात्मा को अङ्गीकार करना चाहिए....** आहाहा! पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु चैतन्य का अस्तित्व है, उसका आश्रय करके, उस उपाय द्वारा **परमात्मा को अङ्गीकार करना चाहिए....** पूर्ण परमात्मदशा प्रगट करना चाहिए। **और बहिरात्मा को छोड़ना चाहिए।** आहाहा! देखो भाषा!

अन्तरात्मा द्वारा.... अन्तरात्मा अर्थात् कि राग और शरीर से भिन्न प्रभु, ऐसी जो अन्तर वस्तु है, ऐसे अन्तरात्मा के अनुभव द्वारा। आहाहा! समझ में आया ? अन्तरात्मा। जो अन्दर में स्वभावरूप वस्तु है। उसके उपाय द्वारा। ऐसा कहा न ? आहाहा! देखो न! भिन्न-भिन्न में वस्तु भिन्न-भिन्न.... आहाहा! अन्तर। मध्य अर्थात् अन्तर। बहिरात्मा, परमात्मा और मध्य में अन्तरात्मा। जो अन्तर वस्तु है, शुद्ध चैतन्य आनन्दघन, राग, विकल्प, शरीर और कर्म बिना की चीज़, उसे पकड़ने से, उसके उपाय द्वारा परमात्मा को प्रगट करना और बहिरात्मा को छोड़ना। वह किस प्रकार है, यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल ६, गुरुवार, दिनांक १९-१२-१९७४, श्लोक-४, प्रवचन-९

यह समाधितन्त्र, चौथी गाथा। इसकी **टीका - बहिः, अर्थात् बहिरात्मा;....** पहला शब्दार्थ करते हैं। **अंतः, अर्थात् अन्तरात्मा; और परः, अर्थात् परमात्मा—** तीन शब्द संक्षिप्त थे। बहि, अन्तः और पर। बस। **इस प्रकार त्रिधा, अर्थात् तीन प्रकार का आत्मा है। ये (प्रकार-भेद) किसमें हैं? सर्व देहियों में-समस्त प्राणियों में।** सब जीवों में तीन प्रकार के आत्मा हैं।

मुमुक्षु : तीनों काल में?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल में। किस प्रकार, अब यह बात करेंगे।

अभव्यों में बहिरात्मपना ही सम्भव होने से,.... समझ में आया? **अभव्यों में बहिरात्मपना ही सम्भव होने से,....** शिष्य का प्रश्न है। तुमने तो सबमें तीन आत्मा कहे। अभव्य में भी तीन, परमात्मा में भी तीन, अन्तरात्मा में भी तीन। आहाहा! **सर्व देहियों (प्राणियों) में तीन प्रकार का आत्मा है—ऐसा किस प्रकार हो सकता है?** यह शिष्य का प्रश्न है।

ऐसा कहना भी योग्य नहीं,.... तेरी यह बात उचित नहीं है। **क्योंकि वहाँ भी (अभव्य में भी) द्रव्यरूपपने से, तीनों प्रकार के आत्मा का सद्भाव घटित होता है।** द्रव्यरूपपने से। उसका जो द्रव्य है न अभव्य का, वह तो मात्र केवलज्ञानमय परमात्मस्वरूप है। समझ में आया? **द्रव्यरूपपने से, तीनों प्रकार के आत्मा का सद्भाव घटित होता है।** देखो! यह न्याय दिया। यह प्रश्न (संवत्) १९८५ में बड़ा हुआ था। कहा न वहाँ, वढवाण। मोहनलालजी थे न? लींबड़ी संघाणा के। मोहनलाल। वे कहे कि अभव्य को तीन ही आवरण होते हैं—मति आवरण, श्रुत आवरण और अवधि आवरण। बस। मनःपर्यय और केवलज्ञान (आवरण) नहीं होता। क्योंकि वह प्रगट नहीं होते, इसलिए नहीं होता। यह प्रश्न ८५ में हुआ था।

कहा, बात खोटी है। अभव्य को भी पाँच आवरण हैं। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण है। केवलज्ञानावरण है, केवलज्ञान

है तो केवलज्ञानावरण है। अन्दर केवलज्ञान शक्ति है। अभव्य को भी शक्ति है। समझ में आया? यह बात इन्होंने ली है। यहाँ सुनी थी न सब इसने। यह समाधितन्त्र यहाँ सुन गये हैं, यह छोटाभाई। उसमें से लिखा है।

वहाँ पाँच ज्ञानावरण (कर्मों) की उपपत्ति किस प्रकार घट सकती है? केवलज्ञानादि के प्रगट होनेरूप सामग्री ही उसके होती नहीं है,... अभव्य को। समझ में आया? **वहाँ पाँच ज्ञानावरण (कर्मों) की उपपत्ति किस प्रकार घट सकती है? केवलज्ञानादि के प्रगट होनेरूप सामग्री ही उसके होती नहीं है, इस कारण उसमें अभव्यपना है; न कि तद्योग्य द्रव्य के अभाव से (अभव्यपना है)....** क्या कहा यह, समझ में आया? पाँच आवरण की वस्तु है। नहीं तो पाँच आवरण सिद्ध नहीं हो सकेंगे। अन्दर शक्ति केवलज्ञान की, मनःपर्यय की सब है। आहाहा!

केवलज्ञानादि के प्रगट होनेरूप सामग्री ही उसके होती नहीं है, इस कारण उसमें अभव्यपना है; न कि तद्योग्य द्रव्य के अभाव से (अभव्यपना है) अथवा भव्यराशि की अपेक्षा से सर्व देहियों का ग्रहण समझना। तद्योग्य द्रव्य का अभाव अर्थात् अभव्यपना है—उसका-द्रव्य का अभाव होकर अभव्यपना है, ऐसा नहीं है। द्रव्यपना तो बराबर है। समझ में आया? **अथवा भव्यराशि की अपेक्षा से सर्व देहियों का ग्रहण समझना। आसन्न भव्य, दूर भव्य, दूरतर भव्य तथा अभव्य जैसे भव्यों में-सर्व में तीन प्रकार का आत्मा है।** यहाँ तो कहते हैं, तीनों प्रकार का सबमें आत्मा है। आहाहा! स्वयं दृष्टान्त दिया है। तब कहा था। 'सर्व जीव है सिद्धसम।' आता है न दृष्टान्त? सब जीव सिद्ध जैसे हैं। अभव्य भी सिद्ध जैसे हैं। यह तो प्रगट करने की पर्याय में योग्यता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

द्रव्यस्वभाव का सत्त्वपना तो केवलज्ञानमय है। आहाहा! उसे केवलज्ञानावरणीय का निमित्त आवरण कहने में आता है। केवलज्ञानावरणीय न हो, तब तो केवलज्ञान नहीं होगा। केवलज्ञानावरणीय है तो उसका अर्थ क्या हुआ? कि शक्ति स्वभाव केवल एक का ज्ञान पूर्ण होने के योग्य है, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? **सर्व में तीन प्रकार का आत्मा है।**

अब कहते हैं, **तो सर्वज्ञ में परमात्मा का ही सद्भाव होने से और (उनमें) बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा का असद्भाव होने से, उसमें (सिद्ध में) तीन प्रकार के आत्मा का विरोध आयेगा ?** इनने निकाला वहाँ वापस। अभव्य में तो बताया, वह तो तीन प्रकार का है। उसमें केवलज्ञानावरणीय भी है, इसलिए केवलज्ञान है। आहाहा! आत्मा अर्थात् 'ज्ञ' स्वभाव और 'ज्ञ' स्वभाव अर्थात् ही पूर्ण स्वभाव। समझ में आया? आत्मा अर्थात् 'ज्ञ' स्वभाव; 'ज्ञ' स्वभाव अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव; सर्वज्ञ स्वभाव अर्थात् पूर्ण स्वभाव। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। उसे अन्दर केवलज्ञान का आवरण है तो अन्दर केवलज्ञान है। परिपूर्ण सर्वज्ञ शक्ति पूरी है। अभव्य में भी सर्वज्ञ शक्ति है। लोगों को बात बैठना कठिन। वस्तु है न। पर्याय में प्रगट होने की योग्यता भले न हो परन्तु यह आत्मा है न! अभव्य का भी आत्मा है न! आहाहा! वह केवलज्ञानमय ही है, पूर्ण ज्ञानमय ही है। इसलिए उसे भी परमात्मपना घटित होता है। परमात्मा होनेयोग्य पर्याय में भले न हो, परन्तु परमात्मस्वरूप तो है। समझ में आया? ऐसे आत्मा का उसे विश्वास आना.... ! अभव्य को उसका विश्वास आता नहीं। वस्तु है। समझ में आया? भव्य, दूर भव्य को उसका विश्वास आता है। इसलिए अन्तरात्मा होकर परमात्मा हो सकता है। ऐसा कहा है न? देखो!

'उपेयात्तत्र' अन्तरात्मा वह उपाय है। बहिरात्मा को तजकर परमात्मा को प्रगट करना। है न? **'मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्'** आहाहा! **'उपेयात्तत्र परमं'** आहाहा! परन्तु अन्दर परम परमात्मा होने की शक्ति है तो पर्याय में परमात्मा होता है। आहाहा! यह परमात्मस्वरूप से अन्तरात्मा है। उसकी अन्तर्दृष्टि अनुभव करने से वह अन्तरात्मा होता है और वह अन्तरात्मा द्वारा, अन्तरात्मा मध्य है, उस द्वारा परमात्मा को प्रगट करना और बहिरात्मा को छोड़ना। यह बात तीनों में कही है। समझ में आया?

सर्वज्ञ में कहाँ यह लागू पड़े? कहते हैं। सर्वज्ञ में कहाँ है बहिरात्मा और अन्तरात्मा? तुमने अभव्य में तो सिद्ध किया। समझ में आया? **अन्तरात्मा का असद्भाव होने से, उसमें (सिद्ध में) तीन प्रकार के आत्मा का विरोध आयेगा? ऐसा कहना भी योग्य नहीं है क्योंकि भूतपूर्व प्रज्ञापननय की अपेक्षा से,... जो भूतकाल की पर्याय को**

वर्तमानवत् कहे, उस ज्ञान (अथवा वचन) को भूतनैगमनय कहते हैं... भूतकाल की अपेक्षा से परमात्मा को भी, भूतनैगम की अपेक्षा से परमात्मा को भी वर्तमान में बहिरात्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसका क्या काम है? उन्हें ऐसा कहा जाता है और इसे ऐसा कहने में आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका काम है। वस्तु का स्वभाव पूर्ण होने पर भी उसे अटकी हुई.... बहिर् को अपना मानता है, उसे अन्तर का अपना पूर्ण स्वरूप मानकर पूर्ण प्रगट करने की उसकी योग्यता है तो प्रगट करता है, इसलिए ऐसा कहा है। समझ में आया? पाठ ही यह है न, देखो न गाथा ४।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्॥ ४॥

इसका उपाय करके मध्य उपाय द्वारा परम प्रगट करना। एक को छोड़ना और एक को ग्रहण करना। अन्तरात्मा द्वारा। आहाहा! अलौकिक बात है। दिगम्बर सन्तों की बातें। आहाहा! समझ में आया? उसे पूर्ण पूर्णस्वरूप है, ऐसी प्रतीति कराते हैं। और पूर्णस्वरूप प्रगट न करे तो भी वह पूर्णस्वरूप से है, परमात्मास्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया?

उसे प्रगट करने के लिये उपाय भी यह। अन्तरात्मा-मध्य अन्तरात्मा वह उपाय है। कोई व्यवहार की क्रिया उपाय है, ऐसा वहाँ नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार सब आत्मा को ऐसा कहते हैं। भगवान! तू भले वर्तमान बहिरात्मा हो, परन्तु तेरा स्वभाव तो परमात्मा है और उस परमात्मा को प्रसिद्ध करके अनुभव करना, वह अन्तरात्मा है। अर्थात् कि अन्तर जो स्वभाव था, उसे पूर्ण अनुभव किया। आहाहा! और उस अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा भी प्रगट होता है। यह इसका सिद्धान्त है।

अभव्य को भी परमात्मशक्ति है तो उसे तीनों आत्मा कहे। भले वर्तमान में बहिरात्मा है, पर्याय से। वस्तु से परमात्मा है। अन्तरात्मा भी स्वयं है। आहाहा! वह पर्याय में प्रगट करने की योग्यता नहीं रखता, इससे कहीं वस्तु का स्वरूप चला जाये?

ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चन्दुभाई! यह बड़ी चर्चा हुई थी, ८५ में। मोहनलालजी ने... क्या कहलाता है? मोहनमाला। मोहनमाला नाम का ग्रन्थ रचा है। ग्रन्थ है। यहाँ हमको भेजा था। ८० के वर्ष में भेजा था वहाँ। राजकोट चातुर्मास था, तब बनाया था। हमें वहाँ भेजा था ८० में, राजकोट। उसमें यह लिखा हुआ है कि अभव्य को तीन आवरण होते हैं। मति, श्रुत और अवधि। इसलिए वह पढ़ा तो वहाँ मिले ८५ में वढवाण में। सुन्दर वोरा का उपाश्रय। मणिलालजी और सब थे।

मैंने कहा, यह तुम्हारी बात मिथ्या है। कहे, साहेब! अभव्य को हो ऐसा? सुनो! मणिलालजी थे न मणिलालजी, वे जरा ऐसे थे। कानजीस्वामी कहते हैं, वह सुनो। सामने मत बोलो। इन्होंने लिखा, इसलिए सिद्ध करो, ऐसा नहीं। यह कहे, वह सुनो। मणिलालजी थे न? मणिलालजी को ऐसा हो गया था। तुम कानजीमुनि का सुनो। ऐसा न मानो कि यह छोटे हैं और यह ५० वर्ष की तुम्हारी दीक्षा है। ये क्या कहते हैं? घडियाली! बोलते थे, नहीं? मोहनलालजी न, नहीं? सुन्दर वोरा के उपाश्रय में। मणिलालजी और मोहनलालजी थे। कहा, नहीं। आत्मा अभव्य को भी केवलज्ञान है। इसलिए उसे पाँच आवरण है। वह आवरण टाल नहीं सकता, इससे केवलज्ञान स्वभाव है—अकेला 'ज्ञ' स्वभाव है, अकेला ज्ञानस्वभाव, उसका कैसे निषेध किया जाये? समझ में आया? उनकी पुस्तक में प्रकाशित कर दिया था। मोहनलालजी ने। फिर ऐसी बात हुई मणिलालजी कहे, बात सत्य लगती है। बात तो सच्ची है। सब भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी है।

सर्वज्ञ शक्ति, शक्ति का तत्त्व ही यह है। उसकी अस्ति ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण, वही उसकी अस्ति है। पर्याय में प्रगट हो, न हो, उसका प्रश्न यहाँ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह यहाँ इसे विश्वास कराते हैं। किसे? वर्तमान में असर्वज्ञता होने पर भी और तू राग और अल्पज्ञपने को ही मानता होने पर भी, अल्पज्ञपना और राग, वह मैं, इतना मानना, वह तो बहिरात्मा है। क्योंकि वह ज्ञान की अवस्था बहिर् प्रगटी हुई है अंश, उसे मानना कि मैं हूँ पूरा, यह बहिरात्मा है। आहाहा! और अन्तर में सर्वज्ञ शक्ति पूरी पड़ी है। अकेला ज्ञानस्वभाव है, वह परिपूर्ण ही है। विपरीत नहीं, अपूर्ण

नहीं। ऐसा ही उसका स्वभाव अनन्त आत्माओं का है। भले अभव्य अनन्त काल में कभी मोक्ष नहीं जायेगा परन्तु उसका अपना स्वरूप तो सर्वज्ञ परमात्मा ही है। आहाहा! समझ में आया?

तब कहते हैं कि सर्वज्ञ को किस प्रकार कहोगे अब? तुमने यहाँ तो सिद्ध किया। **ऐसा कहना भी योग्य नहीं है क्योंकि भूतपूर्व....** मैं उनका बहिरात्मपना वर्तता था। उसे भूतनैगम अर्थात् भूतकाल की अपेक्षा से वर्तमान में कहने में आता है। इस प्रकार की शक्ति वर्तमान प्रगटी हुई है और प्रगट नहीं थी, तब ऐसी दशा थी, उसका अस्तित्व सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त हुए, उस काल में बहिरात्मपना भले नहीं। परन्तु पूर्व में था, वह सब पर्याय का पूरा पिण्ड होकर आत्मा है। समझ में आया? इसलिए उसकी सर्वज्ञशक्ति भले अभव्य को प्रगटी न हो और इन्हें प्रगट हुई है, तथापि इन्हें पूर्व का बहिरात्मपना भूतकाल के नय की अपेक्षा से लागू पड़ता है। यह दृष्टान्त दिया है न, देखो न!

घृतघटवत् उस विरोध की असिद्धि है.... घी का घड़ा। अभी भले घी न हो परन्तु घी का घड़ा ऐसा कहने में आवे न भूतकाल की अपेक्षा से? **(उसमें विरोध नहीं आता)। जो सर्वज्ञ अवस्था में परमात्मा हुए,....** आहाहा! सर्वज्ञ अवस्था में परमात्मा हुए, ऐसा कहा न? अवस्था में-दशा में परमात्मा हुए। **वे भी पूर्व में बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा थे।** समझ में आया? आहाहा! वे भी पूर्व में शक्तिरूप से परमात्मा थे परन्तु पर्याय में बहिरात्मा थे। आहाहा! वर्तमान में परमात्मदशा अवस्था से है। और पूर्व में बहिरात्मदशा अवस्था थी। वह भूतनैगमनय की अपेक्षा से वर्तमान में बहिरात्मा कहने में आता है। आहाहा! उसकी दृष्टि लम्बाकर तीन काल का तत्त्व इकट्ठा करते हैं। आहाहा! समझ में आया? और अन्तरात्मा भी थे पूर्व में। आहाहा! साधक अवस्था में अन्तरात्मा थे। तो वह पर्याय भूतकाल की अवस्था को वर्तमानवत् कहा जाता है।

राजा का कुँवर राज भ्रष्ट किया हो परन्तु भूतकाल की अपेक्षा से उसे राजा का कुँवर वर्तमान में कहा जाता है। राजकुमार है, राजकुँवर है, ऐसा कहा जाता है न? उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्व में बहिरात्मा था, उसे छोड़कर अन्तरात्मा को प्रगट कर

(वर्तमान में परमात्मा हुआ)। पूर्ण स्वरूप हूँ। ऐसी बात को अन्दर में उसे उतारे तो.... आहाहा! केवलज्ञान का उपाय हाथ आ जाये। आहाहा! आचार्यों-दिगम्बर सन्तों की गजब बातें, बापू! परम्परा अनादि का सनातन सर्वज्ञ जिनेश्वर का मार्ग, इस मार्ग में थे वे। समझ में आया? आहाहा! पोपटभाई! यह मार्ग वह बाहर से आया है हाथ। अब अन्तर उतारना, यह बात है। वापस बात ऐसी कही न? कि बहिरात्मपने के काल में उसका अन्तरात्मपना, परमात्मपना भी अन्दर है। आहाहा! अन्तरात्मा के काल में पूर्व के बहिरात्मा की अवस्था को पूर्व नय से वर्तमान में भी कहने में आता है। और परमात्म अवस्था अभी नहीं परन्तु शक्ति में है, इसलिए भविष्यनय से वह प्रगट होगी। यहाँ तो यह लेना है न? आहाहा!

मुमुक्षु : भावि प्रज्ञापन की अपेक्षा से?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भाविनय की अपेक्षा से। वह भूत (नय) था। अरे! उसे विश्वास कैसे आवे? समझ में आया?

मैं स्वयं परमात्मा होने के योग्य हूँ, ऐसा नहीं। मैं परमात्मा वर्तमान में भाविनय की अपेक्षा से हूँ। आहाहा! श्रीमद् ने कहा है न कि केवलज्ञान श्रद्धारूप से प्रगट हुआ है। इच्छानय से वर्तमान वर्तता है। आहाहा! अमुक नय की अपेक्षा से, ऐसा कहा है निश्चयनय से-वर्तमान में मुख्यनय से है। आहाहा! बापू! उसके चैतन्य की सत्ता का सत्त्व, क्षेत्र शरीरप्रमाण होने पर भी, छोटी पीपर का कद छोटा होने पर भी और बाहर में रंग में काली होने पर भी उसकी शक्ति है, वह तो रुपया-रुपया (पूर्ण) वह तो अनन्त रजकण के स्कन्ध हैं। स्कन्ध हैं। उनकी भी शक्ति उसे अन्दर में चौसठ पहरी भरी हुई है। आहाहा! चौसठ पहरी अर्थात्? रुपया-पूर्ण। भरी हुई है, तो वह वर्तमान में काली और अल्प चरपराहट होने पर भी भावीनय की अपेक्षा से वर्तमान में चौसठ पहरी है, ऐसा भी कहा जाता है। और चौसठ पहरी जिसे प्रगट हो गयी है छोटी पीपर में से, उसे वर्तमान में भी अल्प पहरी है, वह भी भूतनय की अपेक्षा से कहने में आता है। आहाहा! यहाँ तो इसे भरोसे में चढ़ाते हैं। आहाहा! यह मूल चीज़ है।

सर्वज्ञ अवस्था में परमात्मा हुए, वे भी पूर्व में बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा थे।

आहाहा! कौन विचार करे? **घृतघट की तरह भूत-भावी प्रज्ञापननय की अपेक्षा से....** देखो! नीचे है न? **भूतकाल की पर्याय को वर्तमानवत् कहे,....** आज भगवान मोक्ष पधारे, ऐसा कहते हैं या नहीं? दिवाली के दिन। यह २५०० वर्ष हुए भगवान को। दिवाली के दिन। कितना हिन्दुस्तान में... ओहोहो! महोत्सव.... महोत्सव.... महोत्सव। इस जाति का शुभभाव होता है। बाकी की क्रिया तो बाहर की होनेवाली हो तो होती है। परन्तु भगवान अभी जानते हैं, ऐसा लक्ष्य में रखकर यह सब होना चाहिए। समझ में आया? भगवान, देखो न! पद्मनन्दि आचार्य स्तुति करते हैं, वहाँ समवसरण में भगवान विराजते हैं, मोक्ष पधारे हैं भगवान महावीर, परन्तु इस समवसरण में यह बैठे-विराजे, उनकी स्तुति करते हैं। आहाहा! भूतकाल के नय को वर्तमान में लगा देते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह भगवान। समवसरण में भगवान विराजते हैं। इन भगवान को चौसठ इन्द्र ऐसा करते हैं... ऐसा करते हैं। यह तो समवसरण था तब था। अभी सिद्ध में कहाँ है वह? चौबीस तीर्थंकर सिद्ध हो गये हैं। परन्तु भूतकाल के नय वर्तमान में लेकर यह भगवान समवसरण में विराजते हैं, इसकी उन्होंने प्रत्यक्षवत् स्तुति की। सिद्ध हो, तब परोक्ष स्तुति होती है। पण्डितजी! सिद्ध की परोक्ष स्तुति है और समवसरण में साक्षात् विराजते हों, तब उनकी प्रत्यक्ष स्तुति है। तो यहाँ महावीर अभी नहीं तो भी प्रत्यक्ष स्तुति है, ऐसा वे कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो—भगवान तो ज्ञान का भण्डार है। इसे ज्ञान के सब पहलुओं से उसको जान लेना चाहिए। एक ही बात है। आहाहा! समझ में आया?

घृतघट की तरह भूत-भावी.... ऐसा लिया न, देखो न! उसमें था न भूत और पूर्व। पहले में आया था।

मुमुक्षु : भूतपूर्व प्रज्ञापन नय।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। भूत अर्थात् गत (काल)—पूर्व।

प्रज्ञापननय की अपेक्षा से.... घृतघट की भाँति। ऐसा यहाँ **घृतघट की तरह भूत-भावी प्रज्ञापननय की अपेक्षा से अन्तरात्मा को भी....** आहाहा! जो घी का घड़ा हुआ नहीं परन्तु होनेवाला है, उसे भी घी का घड़ा कहा जाता है। और घी निकल गया और

घी बिना का घड़ा रहा, उसे भी घी का घड़ा कहा जाता है। समझ में आया? राजा का कुँवर गद्दी पर बैठा नहीं तो भी राजकुमार कहा जाता है और वह कुँवर वहाँ से भ्रष्ट हो जाये तो भी उसे राजकुमार कहा जाता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई, उस काल में भी पूर्व नय की अपेक्षा से उसे बहिरात्मा और अन्तरात्मा कहा जा सकता है। आहाहा! **घृतघट की तरह भूत-भावी प्रज्ञापननय की अपेक्षा से....** उन परमात्मा को कहा था। यह **अन्तरात्मा को भी बहिरात्मपना और परमात्मपना समझना।** लो! घृतघट की भाँति अन्तरात्मा को भी बहिरात्मपना उसे भूतकाल में था, भविष्य में उसे होगा। भूत-भविष्य में घट की भाँति। वर्तमान में स्वयं अन्तरात्मा होने पर भी। समझ में आया? (पहली) परमात्मा की बात की। यह अन्तरात्मा की। पूर्व का बहिरात्मपना अभी कहा जा सकता है, भविष्य में परमात्मा होगा, यह भी कहा जा सकता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे आत्मा की अन्दर वस्तु की स्थिति की प्रतीति बिना सब जो क्रियाकाण्ड करे, उसे सम्यग्दर्शन बिना व्यर्थ है। आहाहा! ऐसा भरोसे में जिसने भगवान को चढ़ाया नहीं। भले कहते हैं कि वर्तमान में अन्तरात्मपना हो.... आहाहा! तथापि भूतकाल में बहिरात्मपने का वर्तमान में आरोप करके.... आहाहा! उसका अस्तित्व था, ऐसा वर्तमान में अस्तित्व सिद्ध करते हैं। बहिरात्मा का अस्तित्व पर्याय में था, उसे वर्तमान में भूतनय से अस्तित्व सिद्ध करते हैं। आहाहा! अन्तरात्मा अल्प काल में परमात्मा होनेवाले ही हैं। उसे भाविनय से वर्तमान में अन्तरात्मा को भी परमात्मा कहा जाता है। आहाहा! क्या बात.....

मुमुक्षु : धर्म में इसका क्या काम है? ऐसा कहा जाये और ऐसा कहा जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म करना हो तो उसे ऐसा काम होता है। धर्म एक निर्मल दशा है। तो वह निर्मल दशा प्रगट हुई नहीं, उससे पहले वह निर्मलपना अन्दर था या नहीं? समझ में आया? धर्म एक निर्मल दशा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा, वह धर्म है। अब वह धर्म करनेवाले को वह दशा प्रगट हुई, तब उसके ख्याल में आया कि यह धर्मदशा की शक्ति मुझमें थी, वह प्रगट हुई है। समझ में आया? और यह

धर्मदशा प्रगटी है, वह अपूर्ण है। पर्याय में अपूर्ण है। और पूर्ण होनेवाली ही है। उसे वर्तमान में कह दे कि यह परमात्मा है। समझ में आया? उसे भरोसे आ गयी बात कि अन्तरात्मा हुआ, वह अल्प काल में मैं परमात्मा होनेवाला हूँ, वर्तमान में परमात्मा हूँ, ऐसा भावीनय की अपेक्षा से कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो भाई! ज्ञान के... हैं सब। उसे समझ में सब लेने पड़ेंगे। यह बाहर की प्रवृत्ति क्रियाकाण्ड के कारण पूरा चैतन्यतत्त्व जो राग की क्रिया बिना का एक ओर पड़ा रहा और सब बात बाहर की लगायी धमाल की। समझ में आया?

इन तीनों में से किसका, किस लिये ग्रहण करना या किसका त्याग करना? पाठ में है न वह लेते हैं। **ग्रहण करना, अर्थात् उसमें उन तीन प्रकार के आत्माओं में से, परमात्मपने का स्वीकार (ग्रहण) करना।** पाठ है न मूल में, उसका (कहते हैं)। **'उपेयात्तत्र परमं'** उपाय परम का अन्तर (आत्मा), मध्य उपाय आत्मा, परम को प्रगट करने का मध्य उपाय आत्मा और तजने का बहिरात्मा। आहाहा! **ग्रहण करना, अर्थात् उसमें उन तीन प्रकार के आत्माओं में से, परमात्मपने का स्वीकार (ग्रहण) करना। किस प्रकार? मध्य उपाय से....** वापस ऐसा। परमात्मा प्रगट हुआ नहीं अभी, परन्तु परमात्मा का स्वीकार (करना कि) परम स्वरूप शुद्ध ज्ञानघन, ज्ञायकभाव परिपूर्ण स्वरूप, उसे मध्य उपाय से **अन्तरात्मा, वही उपाय है; उस द्वारा....** आहाहा! अन्तर में वस्तु जो है, अन्तर स्वरूप जो है, वह तो परमात्मस्वरूप है। उसे दृष्टि द्वारा स्वीकार करना, वह अन्तरात्मा है। आहाहा! समयसार की शैली से यह दूसरी शैली लगे, इसलिए मानो कि नयी है, ऐसा नहीं है। यह वस्तु की स्थिति है। समझ में आया?

अन्तरात्मा, वही उपाय है;.... भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप ही हूँ—ऐसा दृष्टि से और ज्ञान से स्वीकार किया, तब वह अन्तरात्मा हुआ। और उस अन्तरात्मा द्वारा.... आहाहा! **(परमात्मा का ग्रहण करना)....** अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा होना। समझ में आया? **(परमात्मा का ग्रहण करना)....** ओहोहो! पूर्ण स्वरूप को अनुभव में लेकर उस उपाय द्वारा, मैं पूर्ण स्वरूप हूँ, उसके उपाय द्वारा प्रगट करने की शक्ति का कारण

अन्तरात्मा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपना, वह अन्तरात्मा। पर्याय में। इस पर्याय द्वारा केवलज्ञान पाया जाता है। आहाहा!

कहा था न पहला? परम कैवल्य, ऐसा शब्द है न? कैवल्य अर्थात् केवलज्ञान अथवा अतीन्द्रिय सुख, उसका जो अभिलाषी है, उसके लिये यह कहा जाता है। ऐसा कहा। पहली गाथा में था न? कैवल्य। आहाहा! आत्मा की पूर्ण दशा कैवल्य। और उसका अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव, वह जिसे प्रगट करने की स्पृहा है, वह अतीन्द्रिय आनन्द और केवलज्ञान प्रगट करने की जिसकी स्पृहा है। आहाहा! वह श्रोता ऐसा होता है। उसे मैं यह बात कहूँगा। आहाहा! समझ में आया?

पाँच इन्द्रिय के विषय, बाहर प्रसिद्धि की अभिलाषा, यह पाँचों ही—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, विषय.... आहाहा! इनकी जिसे अभिलाषा छूट गयी है और अतीन्द्रिय आनन्द की कैवल्य की जिसे अभिलाषा है। उसके लिये मेरा यह समाधितन्त्र है, (ऐसा) कहते हैं। समझ में आया? भले वह मिथ्यादृष्टि हो, श्रद्धा में अभी.... परन्तु उसकी जिज्ञासा में अतीन्द्रिय आनन्द की वृत्ति का भाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग! उसकी अपेक्षा पृथ्वीकाय की दया पालना.... ऐई! भोगीभाई! यह मिला है या नहीं तुमको वहाँ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं यह। परजीव की दया और उसमें वापस कहते हैं कि परजीव की दया में स्वजीव की दया रही है। और ऐसा कहते हैं। यह तो व्यवहार की अपेक्षा से बात है। परजीव की दया का विकल्प है, वह तो हिंसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो अपनी.... दूसरा तो जीता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी जीता नहीं। वह तो उसका आयुष्य हो तो जीवित रहता है। इसने जिलाने का भाव किया, इसलिए वहाँ जीता है, ऐसा नहीं है। उसके आयुष्य की स्थिति ही, उसके कारण से शरीर और आत्मा को रहने का था, वे रहे हैं। पर की दया पालने का भाव किया; इसलिए वहाँ जीये हैं, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! परन्तु यह पूर्ण जीवन जो चैतन्य का है, परमात्मस्वरूप का जिसका टिकना जीव का

जीवन है, उसे जिसने माना नहीं और अल्पज्ञ और राग को ही अपना स्वभाव मानता है, उसने आत्मा का पूरा जीवन है, उसका उसने निषेध किया है। इसका नाम हिंसा है। आहाहा! जीव का अभाव किया न? पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हिंसा भी इस कारण से। ऐसा। अपना महा स्वरूप है। परन्तु चैतन्य सर्वज्ञ शक्तिवाला तत्त्व है। सर्वज्ञ 'ज्ञ' स्वभावी अकेला 'ज्ञ' स्वभाव ही। तो 'ज्ञ' स्वभाव का अर्थ कि वह पूर्ण 'ज्ञ' स्वभाव है। ऐसा तत्त्व है। ऐसे तत्त्व का अनादर करके और अल्पज्ञ और राग को अपना स्वीकार करके आदर किया, उसने ही वास्तविक तत्त्व है पूरा जैसा, उसका उसमें जीवन का नाश किया है कि यह मैं नहीं, यह नहीं। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है। आहाहा! और जिसे भगवान पूर्णानन्द का नाथ, जिसकी पर्याय में स्वीकार, सत्कार, आदर, उपादेयपना आया, उसने जीव को जैसा है, वैसा रखा।

मुमुक्षु : जीवित रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवित रखा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है। लोगों को भारी कठिन पड़े, हों! व्यवहार के रसिया हो न। उन्हें (ऐसा लगता है) परन्तु यह क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....परमात्मा स्वयं ही व्यवहार है। पर्याय अर्थात् व्यवहार है, द्रव्य अर्थात् निश्चय है। आहाहा!

(परमात्मा का ग्रहण करना) तथा मध्य (अन्तरात्मारूप) उपाय से ही,.... अर्थात् कि अन्तरात्मा, वही उपाय है। आहाहा! पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, वह अन्तरात्मपना। वस्तु तो परमात्मा अन्दर है परन्तु उसका स्वीकार हुआ, तब वह अन्तरात्मा हुआ, पर्याय में। वस्तु में परमात्मा है। और उसके द्वारा उसने परमात्मपद को प्राप्त किया। आहाहा! यह बीच में व्यवहार से होता है और अमुक होता है, यह सब यहाँ उड़ा दिया।

मुमुक्षु : यह तो सोनगढ़ से प्रकाशित होगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ से प्रकाशित यह द्रव्यसंग्रह—इन सबमें नहीं ? समयसार में। प्रकाशित चाहे जिसका हो। शब्द किसके हैं ? आहाहा !

मध्य उपाय से ही,... अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा को साधना। आहाहा! और **बहिरात्मपने का त्याग करना।** यह राग और व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प और अल्पज्ञ, वह मैं—ऐसी जो मान्यता थी, वह छूट गयी। आहाहा! और सर्वज्ञ और परिपूर्ण विकाररहित और पूर्ण स्वभाववाला, उसके स्वीकार की अनुभवदृष्टि द्वारा उसने अन्तरात्मा अर्थात् मध्य आत्मा उस द्वारा परमात्मा का साधन करना। परमात्मा को प्रगट करना। यह बात है। समझ में आया ? ऐसा उपदेश! सोनगढ़ को पादर यहाँ भैंसे बैठते थे, वहाँ यह बात आयी। इस जमीन में ..... यहाँ खेत था न, यह खेत था। कहाँ इस चीज़ को जिस क्षेत्र में और जिस काल में.... आहाहा!

भावार्थ :- सर्व जीवों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—ऐसी तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। तीन अवस्था की बात है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी अवस्था के तीन प्रकार हैं।

उनमें बहिरात्म अवस्था छोड़नेयोग्य है;.... राग और अल्पज्ञपना उतना मैं, वह दृष्टि छोड़नेयोग्य है। आहाहा! पर्यायबुद्धि छोड़नेयोग्य है, इसका अर्थ यह है। एक अंशरूप से जो प्रगट क्षयोपशम का अंश है, वहाँ इसकी जो रुचि जमी है, वह बहिरात्मा है। उस प्रगट अंश जितना मैं, (ऐसा माना) तो पूरा अन्तर स्वभाव है, उसे इसने छोड़ दिया। यह वस्तु! आहाहा! **उनमें बहिरात्म अवस्था छोड़नेयोग्य है; अन्तरात्म अवस्था, परमात्मपद की प्राप्ति का साधन है;....** सादी भाषा में वापस कहा। पूर्ण सिद्धपद और केवलज्ञान की पदवी-दशा, उसे प्राप्ति का साधन—पूर्णानन्दस्वरूप हूँ, पर्याय में पूर्ण भले प्रगट नहीं हुआ, परन्तु पर्याय ने स्वीकार पूर्णता का किया। आहाहा! अल्पज्ञ पर्याय ने पूर्णता का स्वीकार किया, अर्थात् पर्याय इस ओर ढली। आहाहा! नहीं तो वह पर्याय भी व्यवहार है। परन्तु वह व्यवहार ढला द्रव्य की ओर। आहाहा! समझ में आया ?

अन्तरात्म अवस्था, परमात्मपद की प्राप्ति का साधन है; अतः वह प्रगट करने योग्य है.... ऐसा। परमात्मपद। **और परमात्म अवस्था जो आत्मा की स्वाभाविक परम वीतरागी अवस्था है, वह साध्य है; अतः वह परम उपादेय (प्रगट करने योग्य) है।** स्वीकार करनेयोग्य है, ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : सात तत्त्व तो समयसार.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उससे यह सब है। समयसार से बारम्बार पढ़ा हुआ इसलिए उसे.... वस्तु की स्थिति यह है। यह तो संक्षिप्त कही है। यह भी समयसार है। और वह भी भगवान के पास गये थे। हाँ, पूज्यपादस्वामी परमात्मा के पास गये थे। वहाँ से आकर लिखा है। आहाहा!

मुमुक्षु : उमास्वामी भी गये थे ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह भी आता है। ये तो गये थे, खास आता है। आहाहा!

अतः वह परम उपादेय (प्रगट करने योग्य) है। ऐसा कि इसकी अपेक्षा समयसार सरल है, ऐसा नहीं। समयसार की पद्धति में यह है। समझ में आया? परसमय और स्वसमय कहा, लो। दूसरी ही गाथा में। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप विराजमान, वह स्वयं अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आया। ऐसा वहाँ कहा। यह आत्मा ऐसा स्थिर हुआ, ऐसा कहा। पर्याय वहाँ स्थिर हुई, ऐसा नहीं। वह अवस्था से बताया है। भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्दस्वरूप वह स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्वसमय है, उसमें है। देखो! यह क्या कहा? परमात्मस्वरूप को स्वीकार कर जो दशा प्रगट हुई, वह अन्तरात्मा है। और '**पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं**' लो, वहाँ बहिरात्मा हुआ। स्वसमय में अन्तरात्मा, उसके साध्य में-ध्येय में परमात्मा और छोड़नेयोग्य की चीज़ में बहिरात्मा। आ गया।

मुमुक्षु : ऐसा आपने किसी समय अर्थ किया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा न भी किया हो। अभी करते हैं। उसके साथ मिलाना है न! इसका अर्थ ही यह हुआ है। आहाहा!

जो कोई राग के विकल्प में स्थिर होगा, रहेगा, वह पुद्गलकर्म में रहा है, वह

जीव में नहीं आया। आहाहा! उसे बहिरात्मा कहा। और जो कोई प्रभु आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आयेगा, स्थिर होगा। पर्याय स्थिर होगी ऐसा नहीं, यह तो सब एक का एक ही है। पर्याय यहाँ झुकी अर्थात् ही आत्मा अब उसमें आया। आहाहा! समझ में आया? यह दूसरी गाथा से शुरुआत हुई। आहाहा!

अरे! धर्म वस्तु कैसी कि जो अनादि काल के दुःख का अन्त (लावे) और आनन्द की शुरुआत (हो)। कहाँ तक? अनन्त काल आनन्द.... आहाहा! समझ में आया? चैतन्यस्वरूप आनन्द। कहा था न तीन? तीन भाई हों न ये? बड़ा चेतन है, वह स्वरूप है और तीसरा आनेवाला है, आनन्द। शशीभाई खारा के तीन (लड़के) हैं। आहाहा! छोटा लड़का है न.... खारा का पुत्र था। चाहे जहाँ जन्मना, पूर्वभव का कुछ है अवश्य। ऐसे दिशा को गये थे तब लकड़ी थी बड़ी, खड... खड। ऐसा किया। नहीं? तू था या नहीं? भाई भी साथ में थे, नहीं? कहा, इसके कुछ पूर्व के संस्कार हैं कोई.... कि चाहे जिसके। ....ऐसे किया। बड़ा खड था न.... क्या कहलाता है वह? यह नहीं था? उसे नाम देते हैं। लम्बे पतले। पानी-पानी? पानी कहते हैं? वह.... पड़ा था बड़ा। लेकर ऐसे (किया)। क्या यह? इतनी उम्र में? ऐसा बहुत बार किया था, नहीं? यह कुछ पूर्व का है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि टाँक पर्याय को द्रव्य पर। मार। आहाहा! जिससे बहिरात्मपना नाश हो और अन्तरात्मपना प्रगट हो। उस अन्तरात्मा द्वारा केवलज्ञान का साधन हो। आहाहा! यह बात है। शब्दकोश में भाई जरा आया है। रात्रि में कल पढ़ता था। ऐसा नहीं डालना चाहिए। ऐसा कि यह सब वर्तमान जो कहते हैं, यह बात इन्द्रिय प्रत्यक्ष हो गयी है। इसलिए इसका विश्वास कैसे छोड़ना? शास्त्र में लिखा है न, ऐसा लिखा है। ऐसा उसे नहीं लिखना चाहिए। शास्त्र में जो यह द्वीप और समुद्र सब कहे हैं और अमुक कहा है। वह पृथ्वी के कहे हैं, परन्तु इस आकाश का कोई आकार लगता है। यह लोग.... बातें करते हैं। अरे! यह साधारण लोग करते हैं और भगवान मुनि कहते हैं, उसे मिलाना न आवे, इससे.... ऐसा भाई सब लिखा है। बहुत कठोर। हुकमचन्द ने गुणगान कैसे किये? आहाहा! सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, पूज्यपादस्वामी.... साक्षात् भगवान विराजते हैं। महाविदेह कहाँ है अभी भूगोल की अपेक्षा से? लो!

मुमुक्षु : उसे जानने के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने के लिये है तो महाविदेह में कुन्दकुन्दाचार्य गये थे।

मुमुक्षु : यहाँ जब सूर्य अस्त हो, तब वहाँ उगता है। अभी अमेरिका में....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब गप्प। आहाहा! समझ में आया?

परमात्म अवस्था जो आत्मा की स्वाभाविक परम वीतरागी अवस्था है, वह साध्य है; अतः वह परम उपादेय (प्रगट करने योग्य) है। ग्रहण करनेयोग्य कहा न?

प्रश्न – सर्व प्राणियों में आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं—ऐसा श्लोक में कहा है, किन्तु अभव्य को तो एक बहिरात्म अवस्था ही सम्भव है, तो सर्व प्राणियों के आत्मा की तीन अवस्थाएँ कैसे सम्भव हैं?

उत्तर – जो जीव, अज्ञानी बहिरात्मा है, उसमें भी अन्तरात्मा और परमात्मा होने की शक्ति है। आहाहा! उसे अन्तर में पूर्णानन्द का नाथ है, उसका विश्वास कराते हैं। आहाहा! भाई! तू ऐसा न मान। बहिरात्म अवस्थावाले को इतनी अवस्थावाला ही है, ऐसा न मान। आहाहा! सर्व जीव है ज्ञानमय.... नहीं आता उसमें? योगसार में। 'जाने समता धार।' योगसार में आता है। यह ज्ञानमय है। यह वर्तमान बहिरात्मा होने पर भी उसकी शक्ति अन्तरात्मा और परमात्मा की है। आहाहा! होने की (शक्ति) है।

भव्य और अभव्यजीवों में भी केवलज्ञानादिरूप परमात्मशक्ति है। लो! पहले वह आवरण कहा था। अब शक्ति कही। **अभव्यजीवों में भी केवलज्ञानादिरूप परमात्मशक्ति है। यदि उनमें वह शक्ति न हो तो उसके प्रगट न होने में निमित्तरूप केवलज्ञानावरणादि कर्म भी नहीं होना चाहिए,...** बहुत दलील दी है। समझ में आया? यही दलील की बात तब हुई थी। (संवत्) १९८५। बहुत हुई थी। मानी थे थोड़ा। कान वह थे जरा। यह बुचा जैसा। सुनो। कानजीमुनि क्या कहते हैं? वे कहते हैं कि उसे ज्ञानावरणीय है। केवलज्ञानावरणीय अभव्य को है, इसलिए केवलज्ञान होवे तो निमित्तरूप से केवलज्ञानावरणीय हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह है न? तब बात हुई होगी। आया होगा। उसने लिखा है, तुम्हारे पास मैंने सुना था। शीतलप्रसाद का सुना होगा। तब कहाँ था यह? प्रभाचन्द्र का आया है। ....जुगलकिशोर

ने किया था न? दूसरा है न। हिन्दी दो है। एक शीतलप्रसाद का और एक यह प्रभाचन्द्र की टीका का। जुगलकिशोर का है न? मुखत्यार। दिल्लीवाले?

यहाँ कहते हैं, यदि केवलज्ञान की शक्ति मानने में न आवे तो निमित्तरूप केवलज्ञानावरणी कर्म नहीं होना चाहिए। न्याय समझ में आता है कुछ इसमें? है यह? क्या नाम लिखा है? शीतलप्रसाद का है? यह प्रभाचन्द्र की टीका का अर्थ है। शीतलप्रसाद ने स्वयं ऊपर से लिया है। उसमें बहुत फेरफार है।

किन्तु बहिरात्मा को (अभव्य को भी) केवलज्ञानावरणादि कर्म तो है;... वाह! **इससे स्पष्ट है कि बहिरात्मा में (भव्य या अभव्य में) केवलज्ञानादि शक्तिपने हैं। अभव्य के उस शक्ति को प्रगट करने जितनी योग्यता नहीं है।** योग्यता नहीं अर्थात् क्या (शक्ति) चली गयी? समझ में आया? इसलिए अभव्य को भी बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा तीन लागू पड़ते हैं। विशेष कहेंगे......

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल ७, शुक्रवार, दिनांक २०-१२-१९७४, श्लोक-४-५, प्रवचन-१०

समाधितन्त्र, पृष्ठ १२ है। अन्तिम दो लाईनें हैं। **अनादि से सभी जीवों में केवलज्ञानादिरूप परमस्वभाव शक्तिरूप से है।** यह आत्मा वस्तु है। उसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसी अनन्त शक्तियाँ अनादि की हैं। उसका स्वभाव ही उस जाति का है। स्वभाववान आत्मा, परन्तु उसका स्वभाव कहो, शक्ति कहो, गुण कहो या सत् का सत्त्व कहो, उस सत्त्व में अनन्त शक्तियाँ हैं। एक-एक शक्ति भी परिपूर्ण अनन्त सामर्थ्य से भरपूर है।

यह **केवलज्ञानादिरूप....** अर्थात् अनन्त लेना। **परमस्वभाव शक्तिरूप से है।** आहाहा! जहाँ उसे नजर करनी है, वहाँ सब पड़ा है, कहते हैं। समझ में आया? नजर अर्थात् दृष्टि जहाँ करनी है, उसमें वे अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसी अनन्त शक्तियों को **उस स्वभाव का श्रद्धा-ज्ञान करके, उसमें लीन हो...** ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं, उनका श्रद्धान। श्रद्धा अर्थात्? उसके सन्मुख की निर्विकल्प अनुभव में प्रतीति। अनन्त शक्ति है, उसके सन्मुख होकर, सन्मुख हुआ अर्थात् सत् है, उसके (सन्मुख) मुख वहाँ किया। आहाहा! इससे उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शनरूपी निर्विकल्प पर्यायरूप परिणमे। आहाहा! और उसका ज्ञान। अनन्त शक्ति सम्पन्न प्रभु, उसका ज्ञान। स्वसंवेदनज्ञान। लो, यह मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

वस्तु भगवान आत्मा, वह तो वस्तु है, सत् है। उसका सत्त्व-भावरूप सत्त्व जो है, उसका कस है.... आहाहा! वह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि। अनन्त-अनन्त की संख्या के समुदायवाला वह समुदायी है। उसके सन्मुख होकर जो ज्ञान की-श्रद्धा की पर्याय राग के सन्मुख है.... अथवा जो ज्ञानलक्षण है, वह लक्षण द्रव्य का-स्वभाव का है, वह लक्षण वहाँ न जाकर लक्षण को राग में जोड़ दिया, वह अनादि का मिथ्यात्व का भ्रम है। समझ में आया? वह इसने वहाँ की दशा छोड़कर अपने स्वभाव सन्मुख की दिशा की ओर दशा ढली, तब उसमें दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीन प्रगट होते हैं। ऐसी सूक्ष्म बातें। अरे! उसके भान बिना भटक मरा चौरासी के अवतार में। समझ में आया? ऐसा शक्तिसम्पन्न प्रभु, उसका स्वीकार नहीं और बाहर में

मान मिले, इज्जत मिले, दया-दान-व्रत के परिणाम (हों).... आहाहा! उसका आदर और उसकी महत्ता (करे)। मूढ़ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पूरी दुनिया करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया मूढ़ है। आहाहा! पूरी दुनिया दुःखी है।

भगवान आनन्द का नाथ, आनन्द शक्ति अन्दर पड़ी है। बेहद अपरिमित जिसका अतीन्द्रिय रस है। उसका स्वीकार अर्थात् 'है' उसकी अस्ति का स्वीकार न करे और उसमें पुण्य और पाप, दया, दान, काम, क्रोध, भाव नहीं, उसका स्वीकार करे। समझ में आया? आहाहा! यह सब पैसेवाले करोड़पति और अरबोंपति वे बेचारे दुःखी हैं।

मुमुक्षु : उन्हें बेचारा कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : बेचारा नहीं कहा जाये, उसे भिखारी कहा जाये। भीख माँगता है। जहाँ नहीं, उससे भीख माँगता है। समझ में आया? आहाहा!

एक बहुरूपिया गरीब का वेश लेकर आया। दुकान थी वहाँ आया। माँ-बाप! कुछ दो न रोटियाँ, कुछ चावल। देखता है कि सामने दीवार है। तीन हाथ की मात्र दुकान वहाँ गलीचा पड़ा हुआ, सेठ बैठा हुआ। तुझे खबर नहीं कि यहाँ.... यहाँ कहाँ था? वह बहुरूपिया ने माँगा। वे कहे परन्तु यहाँ कहाँ? भान बिना यहाँ कहाँ आया? यह दो तकिया पड़े हैं और दो बैठे हैं। ....पास में दीवार है। हमारे नहीं चूल्हा, नहीं अनाज। यहाँ कहाँ माँगता है? फिर उसे-सेठिया को ख्याल आया कि यह तो कल आया था हाथ में लकड़ी लेकर। सब गहने तुमने माँगाये हैं, उसकी रसीद आ गयी तुम्हारे? दूसरे दिन बोला। आज यह होकर आया। यह तो वह कल था वह। उसे खबर नहीं कि यहाँ नहीं। ....भिखारी यह नहीं माँगे? जहाँ कहीं रोटियाँ हों, धुँआ निकलता हो, पकता हो तो रोटियाँ माँगे। वहाँ तो माँगे। कुत्ता भी वहाँ बैठे, गन्ध आती हो वहाँ। दुकान सामने देखकर बैठा हो कुत्ता? आहाहा! फिर उसको पहिचान गये। अरे! तू तो कल बहुरूपी....

उसी प्रकार भगवान आत्मा पर में भीख माँगता है, कहाँ वहाँ था? खाली दुकान देखकर बैठा है। वहाँ रोटियाँ कहाँ से मिलती थी? समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा

के अतिरिक्त राग और पुण्य और बाहर के संयोग में वहाँ कहाँ था सुख? खबर नहीं, इसे भान नहीं। वहाँ से माँगता है। यह देना.... देना.... वह बहुरूपिया रूप धारण करके आया, इसने मिथ्यारूप धारण किया। आहाहा! पोपटभाई! जिसमें अन्तर आनन्द शक्ति पड़ी है, वह सुखधाम है। आहाहा! 'स्वयं ज्योति सुखधाम' नहीं आया? श्रीमद् में।

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम।

बापू! यह सत्य है। ऐसे आत्मा की शक्ति को जिसने श्रद्धा में लिया, उस श्रद्धा का अर्थ ऐसा पूरा महातत्त्व है, उसकी प्रतीति का जोर कितना? समझ में आया? अनन्त आनन्द है, अनन्त ज्ञान है, अनन्त शान्ति है। शान्ति अर्थात् चारित्र—वीतरागता। अनन्त वीर्य है। ऐसी अनन्त शक्तियों को जिसने श्रद्धा में लिया, उस श्रद्धा का जोर कितना हुआ! यह.... है वह? समझ में आया?

उस शक्ति के स्वभाव में इसका श्रद्धा-ज्ञान करके.... आहाहा! वह त्रिकाल भगवान परमानन्द का नाथ है, अनन्त ज्ञान और शान्ति से भरपूर है। जो वीतराग हुए, वह वीतरागी दशा कहाँ से आयी? कहीं बाहर से आती है? वीतराग की शक्ति से, अकषाय स्वभाव से अर्थात् चारित्र शक्ति से भरपूर पदार्थ है। आहाहा! उसे श्रद्धा में, अर्थात् कि उसके सन्मुख हुआ, तब उसका आदर किया अर्थात् 'है' उसका आदर किया। समझ में आया? राग और उसके सन्मुख था तो इन शक्तियों का इसने अनादर किया था। आहाहा! ऐसा विद्यमान शक्तिवान परमात्मा स्वयं, उसका अनादर करके.... आहाहा! अल्पज्ञ और रागादि का स्वीकार करके उसमें उत्साह करके उसमें हर्षित हो गया। पोपटभाई! आहाहा!

कहते हैं कि उसने गुलाँट खायी। ओहोहो! जो मुझे चाहिए है शान्ति, आनन्द अतीन्द्रिय.... वह तो अपने आ गया न इसमें? कि ऐसे श्रोता के लिये मैं कहूँगा। आहाहा! कैवल्य अतीन्द्रिय आनन्द और कैवल्य अर्थात् अतीन्द्रिय केवलज्ञान, उसकी स्पृहावाला, उस ओर की सन्मुख जिज्ञासावाला, उसे मैं यह समाधितन्त्र कहूँगा। पूज्यपादस्वामी ऐसा कहते हैं। पोपटभाई! यों ही बेगाररूप से सुनने आया हो, चलो भाई सुनने, सब

जाते हैं तो हमें भी जाना पड़े, नहीं तो अपना व्यवहार खोटा पड़े, ऐसों के लिये यह नहीं है। आहाहा!

जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की पिपासा हुई है। जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर की पिपासा छूट गयी है। आहाहा! यह तो वही आया न अपने ३१ गाथा में? भाई! नहीं आया? '**जो इंदिये जिणित्ता**' यह दूसरे प्रकार से बात की है। आहाहा! जिसने... भगवान और भगवान की वाणी, यह भी इन्द्रिय का विषय है, इसलिए उसे भी इन्द्रिय कहा है। उस इन्द्रिय को जिसने जीता है, अर्थात् कि उसकी सन्मुखता के भाव का नाश किया है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसकी नजर में चढ़ने से जिसे आनन्द का नशा चढ़े.... आहाहा! ऐसे भगवान की—प्रभु की अनन्त शक्तियाँ। यह प्रभु—स्वयं की बात चलती है, हों! भगवान, भगवान हो जाये, उनके घर में रहे। वे कहीं देते-बेते नहीं। आहाहा! यह आत्मा के सन्मुख होकर.... यह कहीं बात है! दिशा पलटाना, तब दशा पलटती है। दिशा पलटाने से दशा पलटती है। जो परसन्मुख की दिशा थी, उसे भगवान पूर्णानन्द के स्वभाव का पर्याय में व्यक्तपना नहीं था, इसलिए उसे वस्तु को अव्यक्त कही थी। परन्तु वस्तुरूप से कहो तो वह व्यक्त-प्रगट ही है। आहाहा! उसकी श्रद्धा-ज्ञान हो तो वे केवलज्ञानादि शक्तियाँ प्रगट हों। शक्ति तो शक्ति है। केवलज्ञान (आदि) शक्तियाँ प्रगट हों। इसका अर्थ केवलज्ञानादि पर्याय प्रगट हों। शक्ति कहीं प्रगट नहीं होती। शक्ति तो त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा! ओहो! ऐसा वस्तु का स्वरूप इसने जाना नहीं। बाकी सब चाहे जितना जानपना हो, उस जानपने में माल स्व नहीं आया, वहाँ वह जानपना सब शून्य है। आहाहा!

कहते हैं कि **शक्तियाँ प्रगट हो जाएँ....** अर्थात् जो अनन्त शक्ति के स्वभाव का सामर्थ्य है, उसकी प्रतीति और ज्ञान और लीनता, उसमें अनन्त शक्तियों का वर्तमान दशा में उसका पर्यायरूप परिणमन हो जाये, वह शक्तियाँ प्रगट हुई—ऐसा कहा जाता है। **और केवलज्ञानावरणादि कर्म स्वयं छूट जाएँ।** अर्थात् कि उसे केवलज्ञानावरणीय छोड़ना नहीं (पड़ता)। यहाँ जहाँ भगवान अनन्त शक्ति का सागर प्रभु (विराजता है), उस ओर में जहाँ उग्रता स्थिर हुई अर्थात् कि केवलज्ञान (होने पर) उस समय कर्म की

अवस्था स्वयं छूट जाती है। ऐसा लिखा है न? इसे छोड़ना नहीं पड़ती। रजकणों की पर्याय अकर्मरूप होने के योग्य ही थी। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद्राजचन्द्रजी ने कहा है :— दृष्टान्त देने के लिये (आधार देते हैं)। '**सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे सो होय**' उसमें अभव्य आये हैं या नहीं सब? उसने यह निर्णय किया था न? भव्य राशि की अपेक्षा सर्वदेही का ग्रहण समझना। उसमें यह था न उसे? परन्तु इस बात में ऐसा कहाँ है? काल आया था न भाई वह उस ओर? 'भव्य राशि की अपेक्षा से सर्वदेही' ऐसी भाषा नहीं चाहिए। 'भव्य राशि की अपेक्षा सर्वदेही', (ऐसा) नहीं। सब जीव की अपेक्षा से (यह) सर्वदेही की व्याख्या है। समझ में आया? ऐसा शब्द लिया है, लो! सर्व देह में सर्व भव्य लेना—भवि। ऐसी यहाँ बात ही नहीं। सब आत्मायें जितने अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... पड़े हैं.... आहाहा! सबमें तीन प्रकार की अवस्थायें लागू पड़ती हैं। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में भी यह बात आती है।

समस्त जीव, शक्तिरूप से परिपूर्ण सिद्धभगवान जैसे हैं,... अरे! इसकी स्वीकृति वह कैसे हो, भाई! सभी जीव आनन्द के नाथ हैं। वस्तु स्वभाव से परिपूर्ण सन्तोष और शान्ति से भरे हैं। आहाहा! उन्हें तुम भिखारी और अल्पज्ञ न देखो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ अनन्त शक्ति से भरपूर आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने इस प्रकार से जाना है और इस प्रकार से कहा है और इस प्रकार से प्रगट किया है। आहाहा!

कहते हैं, **समस्त जीव, शक्ति...** अर्थात् सामर्थ्यरूप से, स्वभाव के जोररूप से परिपूर्ण पड़े हैं। आहाहा! सिद्ध भगवान जैसे हैं। **किन्तु जो अपनी त्रिकाली शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वभावशक्ति को सम्यक् प्रकार से समझे,....** त्रिकाल शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानन्द स्वभाववाला, तत्त्व अस्तिरूप-हयातीरूप है। ऐसे स्वभाव शक्ति को सम्यक् प्रकार से समझे। सम्यक् प्रकार का अर्थ उस ओर जाकर उसका वेदन करे। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! यह कहे कि व्रत पाले और अपवास करे, यह करे और वह करे। वह तो राग की क्रिया है। समझ में आया? उसे सम्यक् प्रकार से समझे। ऐसी अनन्त

शक्ति का सागर परमात्मा है। छोटा क्षेत्र, इसलिए छोटा नहीं मानना। सर्प छोटा इतना, इसलिए छोटा नहीं मानना। वह तो जहरीला सर्प है। इतना भी सिर फोड़ डाले। राजा का कुँवर छोटा, इसलिए छोटा नहीं मानना। यह शास्त्र में दृष्टान्त आते हैं। सर्प का, राजा का। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा को शरीर प्रमाण देखा तूने तो इतना नहीं मानना। आहाहा! कहते हैं कि, वह तो महाप्रभु पूर्ण आनन्द और शक्ति का सागर है। सम्यक् प्रकार से उसे समझे, ज्ञान करे। वह ज्ञान तब किया कहलाये, अन्दर जाकर वेदन करे तो।

उसकी प्रतीति करे.... यह ज्ञान हुआ, उसमें भास हुआ कि वस्तु यह पूर्ण है, उसकी प्रतीति करे **और उसमें स्थिरता करे, वे परमात्मदशा प्रगट कर सकते हैं।** वह सिद्धदशा को—मोक्षदशा को वह प्राप्त कर सकता है। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन लगता है न। यह वस्तु है, उसका ज्ञान करके और उसकी प्रतीति करके उसमें रमणता करे। वह तो सब वीतरागी दशायें हुईं। समझ में आया? वह वीतरागी सम्यक्, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी लीनता, उसके द्वारा परमात्मदशा प्राप्त कर सकता है। आहाहा! समझ में आया? इसके कुछ व्यवहार करे और कुछ उससे मिले। यह दया, दान, व्रत, भक्ति यह व्यवहार तो, प्रभु! राग है। यह राग की क्रिया है, भाई! तुझे खबर नहीं। ज्ञानानन्दस्वभाव में यह उत्थान वृत्ति हो कि यह करूँ.... यह करूँ.... वह तो राग है। आहाहा! उससे भगवान भिन्न है। चैतन्यप्रभु (में) स्थिरता करे तो परमात्मदशा प्रगट कर सके। समझे न? परमात्मस्वरूप तो शक्ति से है, परन्तु परमात्मदशा प्रगट कर सके।

वर्तमान में जो धर्मी अन्तरात्मा है,... आहाहा! अब अन्तरात्मा में उतारते हैं। **वर्तमान में जो....** सम्यग्दृष्टि जीव है—अन्तरात्मा। अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूप को अनुभव करनेवाला, प्रतीति करनेवाला, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह अन्तरात्मा **उसे पूर्व अज्ञानदशा में बहिरात्मपना था...** कहो, था या नहीं? तो इस नय से अन्तरात्मा को भी बहिरात्मा कहने में आता है। पूर्व में हो गया, इस अपेक्षा से। आहाहा! **और अब अल्पकाल में परमात्मपना प्रगट होगा।** एक-दो-चार भव में केवलज्ञान होनेवाला है, इसलिए उसे तीनों अवस्थायें यहाँ.... जानने में (आती है)। अन्तरात्मा तो

प्रगट है, बहिरात्मा गया, परमात्मा होगा। समझ में आया? आहाहा! इसकी क्रीड़ा तो देखो! आहाहा! क्रीड़ावान चढ़ गया राग की क्रीड़ा में। राग की क्रिया की क्रीड़ा में चढ़कर संसार में भटका। आहाहा! परन्तु उसमें पूर्ण स्वभाव का आश्रय करके.... आहाहा! अल्प काल में परमात्मा होगा। इस अन्तरात्मा को तीनों लागू पड़ते हैं।

परमात्मपद को प्राप्त हुए श्री अरहन्त और सिद्धभगवान को भी.... अब अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर महाविदेह में सीमन्धर.... सीमन्धर—अपने स्वरूप की मर्यादा के धारक। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। तीर्थंकररूप से अरिहन्तरूप से (विराजते है) और सिद्ध-अशरीरी। चौबीस तीर्थंकर हुए, वे अशरीरी हुए। अभी सिद्ध हैं। और यह भगवान अभी विराजते हैं, वे अरिहन्त हैं। वे **अरहन्त और सिद्धभगवान को भी पूर्व में बहिरात्मदशा थी,...** पूर्व में थे या नहीं अज्ञानी? वे राग को धर्म मानते थे, पुण्य को धर्म मानते थे, उस दशा में थे।

उन्होंने अपनी स्वाभाविकशक्ति की प्रतीति करके.... वे अपनी स्वाभाविक शक्तियाँ जो त्रिकाल, उसके अनुभव की प्रतीति करके **जिस समय स्वभावसन्मुख हुए, उसी समय उनके बहिरात्मपने का अभाव हो गया और अन्तरात्मदशा प्रगट हुई, तत्पश्चात् उग्रपुरुषार्थ करके स्वभाव में लीन होकर परमात्मा हुए।** तीनों दशा उन्हें लागू पड़ती है। पूर्व में बहिरात्मा थे, इस नय से अभी भी उन्हें ऐसा कहा जाता है। फिर अन्तरात्मा हुए सम्यग्दर्शन अनुभव, धर्म की दशा, जिसने आत्मा के स्वभाव की प्रगट की, वह अन्तरात्मा अपने अन्तरात्मा के स्वभाव द्वारा परमात्मा हुए, उन्हें तीनों लागू पड़ते हैं। **इस प्रकार अपेक्षा से प्रत्येक जीव में तीन प्रकार घटित होते हैं—ऐसा समझना।** आहाहा! दीर्घ दृष्टि कितनी चाहिए इसे!

अब, बहिरात्मा किसे कहना? **बाह्य शरीरादि,....** शरीर और कर्म और पैसा और स्त्री, पुत्र, बँगला और धूल-धमाका। आहाहा! यह मेरे, ऐसी आत्मबुद्धि करनेवाला बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। बहिर्—जो इसमें नहीं। बाहर की जो चीज़ें, उनमें आत्मबुद्धि (की है कि) यह हमारे। यह पुत्र हमारे, यह स्त्री हमारी, यह पैसा हमारा, मकान हमारा, गोदाम हमारे। क्या कहलाते हैं वे? गोदाम। गोदाम-गोदाम। तुम्हारे

मुम्बई में बड़े-बड़े गोदाम हैं। ५०-५० बोरी ऐसे मजदूर करते हैं न। बड़े गोदाम। पहले एक, दो, पश्चात् तीन, फिर चार। सीढ़ियाँ वहाँ कहाँ बनाने जाये। पहले से देखो है, माल लेने जाते थे न मुम्बई। आहाहा! चार मण ऐसे उठाया हो, पहली एक बोरी रखे, फिर दो, फिर तीन, ५०-५० तक। ठेठ डाला हो। फिर ४९ हो, वहाँ उसकी पचास करे, यहाँ पचास करे, यहाँ पचास करे। आहाहा! क्रम से चढ़े।

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, शरीरादि जो है, उसे जिसने अपना माना। जो नहीं, उसमें इसने माना। आहाहा! **विभावभाव...** यह पुण्य और पाप का भाव-विभाव, वह इसके नहीं हैं। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, तप का विकल्प राग, वह सब राग विभाव है। वह मेरा है, ऐसा जिसने माना है, उसमें आत्मबुद्धि की है। अथवा उस शुभराग से मुझे लाभ होगा, इसका अर्थ कि इसने शुभराग को अपना माना है। आहाहा!

तीसरा, **अपूर्ण दशा....** बात ठीक ली है। तब इन्होंने सुना था। एक तो शरीरादि परद्रव्य को अपना मानना तथा पुण्य और पाप विभाव को अपना मानना, दो। तीन, अल्प दशा को आत्मा पूर्ण है, ऐसा मानना। आहाहा! **अपूर्ण दशाओं में आत्मबुद्धि करता है,....** समझ में आया इसमें? आहाहा! **अर्थात् इनके साथ एकत्वबुद्धि करता है,...** अर्थात्? यह शरीर, वाणी, मन, देश, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति के साथ यह मेरे हैं, यह मैं हूँ, अहं, मम। यह मैं हूँ—अहं। ये मेरे हैं—मम। आहाहा! इसने मम किया। लड़के मम खाते हैं न? इसने यह मिथ्यात्व का मम खाया।

इनके साथ एकत्वबुद्धि करता है,... आहाहा! शरीर, कर्म आदि दया-दान के विकल्प और हिंसा के आदि के विकल्प और अल्पज्ञ दशा आदि में, 'यह मैं हूँ'.... आहाहा! एक समय की जो दशा है, वह मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह भी मिथ्यादृष्टि है—पर्यायबुद्धि है। आहाहा! भगवान पूरा पड़ा रहा। **वह बहिरात्मा है।** बहिर् समझ में आया? वस्तु के स्वभाव में अल्पज्ञपना नहीं है, वस्तु के स्वभाव में विभावपना नहीं है और वस्तु के स्वभाव में शरीर, वाणी, कर्म नहीं है। वह तो परचीज़ है। आहाहा! हमारा देश, हमारा देश। क्या कुछ कहते हैं न तुम्हारे मुम्बई में? अमची। क्या? आमची मुम्बई? क्या कहलाता है वह सब? महाराष्ट्रवाले। आमची मुम्बई। किसके बाप की

मुम्बई ? सुन न अब। हमारा गाँव, हम काठियावाड़ी। अरे! भगवान यह तू कहाँ से आया ? कहो, समझ में आया ? आहाहा! जो चीज़ इसमें नहीं, उसे स्वयं अपनी माने। आहाहा! यह दया-दान और व्रत-तप के विकल्प हैं, अपवास करना और यह सब राग है। आहाहा! उसे अपना मानना और उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा माननेवाले उन्हें अपनेरूप से ही मानते हैं। आहाहा! समझ में आया ? ठीक डाला है। **वह बहिरात्मा है।**

वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को भूलकर,.... भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकस्वभाव के स्वरूप को भूलकर **बाहर में काया और कषायों में निजपना मानता है।** यहाँ दो आ गये। अल्पज्ञपना पहले सामान्य लिया। शरीर और कषायों में मेरापन मानता है, **उसको भावकर्म और द्रव्यकर्म के साथ एकत्वबुद्धि है; उन्हीं से अपने को लाभ-हानि मानता है।** आहाहा! ६० वर्ष में लड़का हो तो कहे, हमारे लाभ हुआ। वंश रखेगा। आहाहा! मूढ़ है, कहते हैं। वह चीज़ कहाँ तेरी थी ? वह आत्मा पर है, उसका शरीर पर है। तेरा आत्मा उससे भिन्नरूप से वर्तता है। और उसका आत्मा तथा उसका शरीर तुझसे भिन्नरूप से वर्तता है। आया कहाँ से तेरा ? आहाहा!

मुमुक्षु : लोक में गिनती हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक में गिनती हो। छह लड़के हैं न इन्हें। गाँव में गिनती हो। यह मैंने पूछा था एक बार, हों! चिमनभाई के कितने लड़के हैं ? छह हैं। इन्हें भी छह हैं। पोपटभाई को। होशियार है, लो! आहाहा! भाई! (होशियार) किसे कहना ? बापू! आहाहा! हाथ में रही हुई तलवार गले पर जाये, वह उस तलवार चलाने में होशियार कैसा कहलाये ? इसी प्रकार जो बुद्धि संसार में भटकने के भाव को अपना माने.... आहाहा! अरे! यहाँ तो नौ पूर्व की लब्धि का ज्ञान है, वह मिथ्यादृष्टि को होता है। आहाहा! वह मेरा ज्ञान है, ऐसा माने वह भी मिथ्यादृष्टि है। परलक्ष्यीज्ञान, वह इसका कैसा ? आहाहा! समझ में आया ? महाप्रभु द्रव्यस्वभाव को भूलकर इसकी एकताबुद्धि (करके) इससे मुझे लाभ होगा। अरे! लड़का मर गया, हाय... हाय... मेरा सब गया। आया था। मूलचन्दभाई का लड़का मर गया है न! मूलचन्द केशवजी। सूरत-सूरत। मूलचन्द कापडिया। एक लड़का था, मर गया। यह तो दूसरा लड़का.... गोद। वहाँ

मरने पर अरे! मेरा सब गया। यह अभी तक कमाये-कमाये, उसे सौंपना चाहिए, उसके बदले वह तो चला गया, मर गया। आहाहा! कौन गया बापू तेरा? तेरा आत्मा अन्दर गया ऐसा माना उसमें। आहाहा! है न?

अपने को लाभ-हानि मानता है। हानि मानता है। लड़का ऐसा गया, मर गया तो हानि हुई। और अच्छा पका और कर्मी पका तो लाभ हुआ। पाँच-पाँच हजार का वेतन, आठ-आठ हजार का। इन सुमनभाई को। लड़के अच्छे हों तो होता है न? अपना माने। होता है या नहीं? तुम्हारा लड़का नहीं बड़ा वेतनदार? अधिकारी है। और यहाँ रोटिया घड़ते हैं इनके हाथ से। आहाहा! कौन किसका था? नजदीक हो तो भी उसका कहाँ है? दूर गया तो उसका कहाँ है? मर गया तो कहीं अन्यत्र गया तो उसका कहाँ है? दूर जाय या मर जाये। आहाहा! वह अपने को लाभ-हानि पर से माने। वह पुण्य के परिणाम से लाभ माने, पाप के भाव से नुकसान माने। परन्तु नुकसान तो पाप परिणाम है, उसे मेरा माना, उसमें नुकसान है। समझ में आया? आहाहा!

वह मिथ्यादृष्टि जीव, अनादि काल से संसार परिभ्रमण के दुःखों से दुःखी होता है। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन की क्रियायें हों, वे मेरी हैं, यह दया, दान के परिणाम व्रतादि के हों, वे मेरे हैं और अल्पज्ञपना वह मैं हूँ—ऐसा मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व में पीड़ित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भले फिर जैन का दिगम्बर साधु हुआ हो, नग्न हुआ हो। उसे यह क्रिया नग्न हुआ, वह मैंने की और इसलिए मैं साधु। यह नग्न की क्रिया को अपनी मानी। वह तो जड़ की क्रिया है। अन्दर पंच महाव्रत के विकल्प आवें, वह राग है। आहाहा! उस राग को करते-करते हमें कल्याण होगा। वह भी मिथ्यादृष्टि है। दुःखी प्राणी है। समझ में आया? **संसार परिभ्रमण के दुःखों से दुःखी होता है।**

अन्तरात्मा.... (पहली) बहिरात्मा की व्याख्या की। धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि जैसा अन्तर स्वरूप है अन्तर, उसे माननेवाला। आहाहा! अन्तरात्मा। अन्तर में जो चीज़ है जैसी जितनी.... आहाहा! उसे अन्तर में भान से माननेवाला **शरीरादि से भिन्न....** शरीर से मैं भिन्न हूँ। यह राग की क्रिया दया-दान की, उससे भी मैं भिन्न हूँ और अल्पज्ञ जो

पर्याय है, उतना भी मैं नहीं; उससे भी मेरा द्रव्य भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वह अन्तरात्मा है।

शरीरादि से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है,.... आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा, ऐसा कहते हैं। ज्ञान और आनन्दस्वरूप। मुख्य दो चीज़ ली है। **ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है, वह अन्तरात्मा है। उसे स्व-पर का भेदविज्ञान है।** सम्यग्दृष्टि भेदज्ञानी धर्मात्मा को स्व-पर की भिन्नता का भान है। भले वह छह खण्ड के चक्रवर्ती के राज में दिखायी दे। समझ में आया? वह छह खण्ड को साधने निकला हो तो वह छह खण्ड को नहीं साधता। समयग्दृष्टि..... भाई ने कहा है न? निहालभाई ने (कहा है कि) वह छह खण्ड को नहीं साधता, अखण्ड को साधता है। उसमें है। समझ में आया? धर्मी समकिती छह खण्ड के राज में दिखायी दे, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखायी दे परन्तु वह उससे भिन्न है, ऐसा अपने को जानता है। वे मेरे नहीं, उनमें मैं नहीं, उसके आचरण जो वह करे, वह मुझसे नहीं। आहाहा!

उसे स्व-पर का भेदविज्ञान है। उसे ऐसा विवेक वर्तता है कि —'मैं ज्ञान-दर्शनरूप हूँ,.... आहाहा! ज्ञान-दर्शन लक्षण। **एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है;....** शाश्वत् ध्रुव लिया यहाँ तो। माननेवाली पर्याय, परन्तु मानती है, शाश्वत् वह मैं त्रिकाल हूँ। आहाहा! देखो! यह धर्मी का लक्षण! यह धर्मी प्रौषध करे और सामायिक करे और प्रतिक्रमण करे, इसलिए धर्मी है—ऐसा नहीं। आहाहा! अभी उसे सामायिक और प्रौषध किसे कहना, इसकी खबर नहीं। मैं तो एक ज्ञान-दर्शनरूप; ज्ञान-दर्शनवाला नहीं, ज्ञान-दर्शनरूप जाननस्वरूप, उपयोगस्वरूप त्रिकाल वह मैं हूँ।

एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है;.... सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को पूर्ण शाश्वत् आत्मा ही मेरा है, ऐसी अनुभव दृष्टि होती है। समझ में आया? आहाहा! **अन्य सब संयोग लक्षणरूप,...** संयोगलक्षण (अर्थात्) पुण्य और पाप के भाव, शरीर, वाणी, मन वह सब संयोगलक्षण **अर्थात् व्यवहाररूप जो भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं,....** आहाहा! **मुझसे बाह्य हैं।'—ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा, मोक्षमार्ग में स्थित है।** समझ में आया? भले वह छियानवें हजार स्त्रियों के विषय में-वासना में हो (ऐसा) दिखायी दे, परन्तु उस

विषय की वासना का प्रेम नहीं है। उसमें सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! अज्ञानी को ऐसा संयोग न भी हो, परन्तु उसे पर में सुखबुद्धि, वह बुद्धि पड़ी है। और ज्ञानी को ऐसी संयोग स्थिति में संयोगभाव हो.... समझ में आया? परन्तु पर में ठीक है, हित है, इसका नाम पर में सुख है, यह बुद्धि ज्ञानी को उड़ गयी है। आहाहा! अज्ञानी बाह्य त्याग करके नग्न साधु हुआ हो तो भी उसे राग की क्रिया महाव्रत की है, वह मुझे लाभ करती है, उससे मुझे परमार्थ प्रगट होगा। समझ में आया? वह व्यवहार के भाव को अपना मानता है। गजब बातें, भाई! **वे सब मुझसे भिन्न हैं, मुझसे बाह्य हैं।' — ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा, मोक्षमार्ग में स्थित है।** लो! उसे अन्तरात्मा कहा जाता है।

परमात्मा.... जिनने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का पूर्णरूपेण विकास करके, सर्वज्ञपद प्राप्त किया है, वे परमात्मा हैं। कोई जगत का कर्ता परमात्मा और ईश्वर कर्ता, वह कोई नहीं। ऐसा है नहीं। जिसने अन्दर में से सर्वज्ञपद प्राप्त किया, वह सर्वज्ञपदस्वरूप ही है आत्मा। उसमें से जिसने सर्वज्ञपर्याय प्रगट की। आहाहा! ऐसी चैतन्य ज्ञानादि-दर्शनादि चैतन्यशक्तियों को पूर्णरूप से विकास करके, पर्याय की बात है, शक्तियाँ तो शक्ति है, परन्तु उसमें इन शक्तियों का पूर्णरूप से विकास करके सर्वज्ञपद प्राप्त किया, वे परमात्मा हैं। लो, यह बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। मोक्षपाहुड़ में भी कुन्दकुन्दाचार्य ने बात ली है। इसमें आ गया है। इस ओर है।

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतीवाएण चयहि बहिरप्पा॥

— मोक्षप्राभृते, कुन्दकुन्दः

११ पृष्ठ पर है नीचे नोट में। यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। समझ में आया?

अब इस पाँचवें श्लोक में आचार्य स्वयं उसका लक्षण करेंगे। तीन का लक्षण स्वयं करते हैं अब।

श्लोक - ५

तत्र बहिरन्तः परमात्मनां प्रत्येकं लक्षणमाह -

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥ ५॥

शरीरादौ शरीरे आदिशब्दाद्वाङ्मनसोरेव ग्रहणं तत्र जाता आत्मेतिभ्रान्तिर्यस्य स बहिरात्मा भवति। आन्तरः अन्तर्भवः। तत्र भव इत्यणष्टेर्भमात्रे टिलोपमित्यस्या- ऽनित्यत्वं येषां च विरोधः शाश्वतिक इति निर्देशात्, ''अन्तरे वा भव आन्तरोऽन्तरात्मा। स कथं भूतो भवति ? चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः चित्तं च विकल्पो दोषाश्च रागादयः, आत्मा च शुद्धं चेतनाद्रव्यं तेषु विगता विनष्टा भ्रान्तिर्यस्य। चित्तं चित्तत्वेन बुध्यते दोषाश्च दोषत्वेन आत्मा आत्मत्वेनेत्यर्थः। चित्तदोषेषु वा विगता आत्मेति भ्रान्तिर्यस्य। परमात्मा भवति, किं विशिष्टः ? अतिनिर्मलः प्रक्षीणाशेषकर्म मलः॥ ५॥''

वहाँ बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - प्रत्येक का स्वरूप कहते हैं —

बहिरातम भ्रम वश गिने, आत्मा तन इक रूप।
अन्तरात्म मल शोधता, परमात्मा मल मुक्त॥ ५॥

अन्वयार्थ - (शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिः बहिरात्मा) शरीरादि में आत्मभ्रान्ति को धरनेवाला, उन्हें भ्रम से आत्मा समझनेवाला, बहिरात्मा है।(चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः आन्तरः) चित्त के, राग-द्वेषादिक दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रान्त रहनेवाला- उनका ठीक विवेक रखनेवाला, अर्थात् चित्त को चित्तरूप से, दोषों को दोषरूप से और आत्मा को आत्मारूप से अनुभव करनेवाला, अन्तरात्मा कहलाता है।(अतिनिर्मलः परमात्माः) सर्व कर्ममल से रहित जो अत्यन्त निर्मल है, वह परमात्मा है।

टीका - शरीर आदि में—शरीर में और 'आदि' शब्द से वाणी तथा मन का ही ग्रहण समझना; उनमें जिसे, 'आत्मा'—ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है, वह बहिरात्मा है।

अन्तर्भव अथवा अंतरे भव, वह आन्तर, अर्थात् अन्तरात्मा। वह (अन्तरात्मा) कैसा है ? वह चित्त, दोष और आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है। चित्त, अर्थात् विकल्प; दोष, अर्थात् रागादि और आत्मा, अर्थात् शुद्धचेतना द्रव्य, उनमें जिसकी भ्रान्ति नाश को प्राप्त हुई है, अर्थात् जो चित्त को चित्तरूप से; दोष का दोषरूप से; और आत्मा

को आत्मारूप से जानता है, वह अन्तरात्मा है अथवा चित्त और दोषों में 'आत्मा' माननेरूप भ्रान्ति, जिसके जाती रही है, वह (अन्तरात्मा) है।

परमात्मा कैसे होते हैं? (परमात्मा) अति निर्मल हैं, अर्थात् जिनके अशेष (समस्त) कर्ममल नष्ट हो गया है, वे (परमात्मा) हैं।

भावार्थ - जो शरीरादि बाह्यपदार्थों में आत्मा की भ्रान्ति करता है, अर्थात् उन्हें ही आत्मा मानता है, वह 'बहिरात्मा' है। विकल्प, रागादि दोष और चैतन्यस्वरूप आत्मा के विषय में जिसको भ्रान्ति नहीं है, अर्थात् जो विकार को विकाररूप से; और आत्मा को आत्मारूप से—एक-दूसरे से भिन्न समझता है, वह 'अन्तरात्मा' है।

जो रागादि दोषों से सर्वथा रहित हैं, अत्यन्त निर्मल हैं और सर्वज्ञ हैं, वे 'परमात्मा' हैं।

विशेष स्पष्टीकरण -

बहिरात्मा - जो शरीरादि (शरीर, वाणी, मन इत्यादि) अजीव हैं, उनमें जीव की कल्पना करता है तथा जीव में अजीव की कल्पना करता है; दुःखदायी राग-द्वेषादि विभावभावों को सुखदायी समझता है; ज्ञान-वैराग्यादि, जो आत्मा को हितकारी है, उन्हें अहितकारी जानकर, अरुचि या द्वेष करता है; शुभकर्मफल को भला और अशुभकर्मफल को बुरा मानकर, उनके प्रति राग-द्वेष करता है; शरीर के जन्म से, अपना जन्म और नाश से, अपना नाश मानता है, वह मिथ्यादृष्टि 'बहिरात्मा' है।

ये शरीरादि जड़पदार्थ, प्रगटरूप से आत्मा से भिन्न हैं; ये कोई पदार्थ, आत्मा के नहीं हैं; आत्मा से पर (भिन्न) ही हैं, तथापि उन्हें अपना मानना और शरीर की बोलने-चलने आदि क्रियाओं को मैं करता हूँ, इनसे मुझे लाभ-अलाभ होता है; यह शरीर मेरा है, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं राजा, मैं रंक, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं सफेद, मैं काला—इस प्रकार बाह्यपदार्थों से अपने आत्मा को भिन्न नहीं जानता, वह परपदार्थों को ही आत्मा मानता है और मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत जीव-अजीवतत्त्वों के स्वरूप में भ्रान्ति से प्रवर्तता है, वह जीव 'बहिरात्मा' है।

परपदार्थों में आत्मभ्रान्ति के कारण यह अज्ञानी जीव, रात-दिन विषयों की चाहरूप दावानल में जल रहा है, आत्मशान्ति खो बैठा है, अतीन्द्रिय चैतन्य आत्मा

को भूलकर, बाह्य इन्द्रिय विषयों में मूर्छित हो रहा है और आकुलतारहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता।

अन्तरात्मा - चैतन्य लक्षणवाला जीव है और उससे विपरीत लक्षणवाला अजीव है। आत्मा का स्वभाव, ज्ञाता-दृष्टा है, अमूर्तिक है और शरीरादि परद्रव्य हैं, वे पुद्गल पिण्डरूप जड़ हैं, विनाशीक हैं; वे मेरे नहीं और मैं उनका नहीं—ऐसा भेदविज्ञान करनेवाला सम्यग्दृष्टि, 'अन्तरात्मा' है।

वह जानता है कि 'मैं देह से भिन्न हूँ; देहादि मेरे नहीं हैं; मेरा तो एक ज्ञान-दर्शन लक्षणरूप शाश्वत आत्मा ही है; अन्य सर्व संयोग लक्षणवाले (व्यावहारिकभाव) जो कोई भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं। आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको हितरूप है तथा बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो रागादिभाव होते हैं, वे आस्रव-बन्धरूप हैं और संसार के कारण हैं तथा मुझे अहितकर हैं; इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे जानकर, उनकी सच्ची प्रतीति करके, जो अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा में ही अन्तर्मुख होकर वर्तता है, वह 'अन्तरात्मा' है।

अन्तरात्मा के तीन भेद हैं—१. उत्तम अन्तरात्मा, २. मध्यम अन्तरात्मा, और ३. जघन्य अन्तरात्मा।

अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहों से रहित, शुद्धोपयोगी आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि, 'उत्तम अन्तरात्मा' हैं। ये महात्मा, सोलह कषायों[1] के अभाव द्वारा क्षीणमोह पदवी (बारहवाँ गुणस्थान) प्राप्त कर स्थित हैं।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती, व्रतरहित सम्यग्दृष्टि, 'जघन्य अन्तरात्मा' है।

इन दोनों (उत्तम और जघन्य) के मध्य स्थित सर्व 'मध्यम अन्तरात्मा' हैं, अर्थात् पञ्चम से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव, 'मध्यम अन्तरात्मा' हैं।

परमात्मा - जिन्होंने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का पूर्णरूपेण विकास करके सर्वज्ञपद प्राप्त किया है, वे 'परमात्मा' हैं।

---

१. अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन तथा प्रत्येक के क्रोध, मान, माया, लोभरूप भेद।

परमात्मा के दो प्रकार हैं — सकलपरमात्मा और निकलपरमात्मा।

अरहन्तपरमात्मा, सकलपरमात्मा हैं और सिद्धपरमात्मा, निकलपरमात्मा हैं, वे केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से सहित हैं।

अरहन्त परमात्मा के चार अघातियाकर्म शेष हैं, उनका प्रतिक्षण क्षय होता जाता है। उनके बाहर में समवसरणादि दिव्यवैभव होता है; उनके बिना इच्छा के ही भव्यजीवों के कल्याणरूप दिव्यध्वनि छूटती है; वे परम हितोपदेशक हैं; परमौदारिकशरीर के संयोगसहित होने से, वे सकल (कल अर्थात् शरीरसहित) परमात्मा कहलाते हैं।

जो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित हैं, शुद्धज्ञानमय हैं, औदारिकशरीर (कल) रहित हैं, वे निर्दोष और परमपूज्य सिद्धपरमेष्ठी 'निकलपरमात्मा' कहलाते हैं, वे अनन्त काल तक अनन्त सुख को भोगते हैं।

'आत्मा में परमानन्द की शक्ति भरी पड़ी है; बाह्य इन्द्रिय विषयों में वास्तविक सुख नहीं है—ऐसी अन्तर्प्रतीति करके, धर्मी जीव, अन्तर्मुख होकर आत्मा के अतीन्द्रियसुख का स्वाद लेता है। जैसे - छोटी पीपल के दाने-दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट की सामर्थ्य भरी है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरा हुआ है किन्तु उसका विश्वास करके अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्र हो तो उस ज्ञान-आनन्द का स्वाद अनुभव में आये।'

आत्मा से भिन्न बाह्यविषयों में कहीं आत्मा का आनन्द नहीं है। धर्मात्मा, निज आत्मा के अतिरिक्त बाहर में कहीं-स्वप्न में भी आनन्द नहीं मानता। ऐसा अन्तरात्मा, अपने अन्तरस्वरूप में एकाग्र होकर, परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द प्रगट करके, स्वयं ही परमात्मा होता है ॥५॥

श्लोक - ५ पर प्रवचन

वहाँ बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - प्रत्येक का स्वरूप कहते हैं— प्रत्येक की उसकी स्वरूप की दृष्टि कैसी है और उसका स्वरूप क्या है, यह बताते हैं।

यह भी मोक्षप्राभृत में है। देखो! पाँचवीं गाथा। उसमें गाथा लिखी है? गाथा नहीं लिखी, हों! उसमें। मोक्षप्राभृत, इतना लिखा है। इसमें गाथा लिखी है। लिखा है? गाथा नहीं लिखी।

मुमुक्षु : ११ पृष्ठ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ। ११ पृष्ठ, यह नहीं और यहाँ है। यह १४ पृष्ठ पर गाथा का नम्बर है, ऐसा कहा।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥ ५॥

आहाहा! इसका श्लोक (हरिगीत) नहीं हुए, नहीं? गुजराती नहीं हुए? उसमें हुए हैं या नहीं? वे इसमें डाले हैं? पीछे भी नहीं।

टीका - **शरीर आदि में—शरीर में और 'आदि' शब्द से वाणी तथा मन का ही ग्रहण समझना; उनमें जिसे, 'आत्मा'—ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है,....** यह मैं हूँ, ऐसी जिसे भ्रमणा हुई है, वह बहिरात्मा है। आचार्य का कथन है। शरीर—यह मिट्टी, धूल, जड़, जगत का अजीव तत्त्व। वाणी जगत का तत्त्व अजीव, यह वाणी और मन जड़। वे मेरे.... आहाहा! समीप में कायम रहे, तथापि वह कहे मेरे नहीं। समीप में तो सब रहते हैं। आहाहा! इस शरीर को, वाणी को और मन को अपना माने.... आहाहा! आत्मभ्रान्ति। वह मैं हूँ, वे मेरे हैं, वह बहिरात्मा।

अन्तर्भव अथवा अंतरे भव, वह आन्तर, अर्थात् अन्तरात्मा। अन्तरे भव अन्तरात्मा। **वह (अन्तरात्मा) कैसा है? वह चित्त, दोष और आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है।** चित्त और दोष। वह समकिती धर्मी जीव, **चित्त, दोष और आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है। चित्त, अर्थात् विकल्प;....** आहाहा! विकल्प चाहे तो चाहे जिस प्रकार का उठे अन्दर। उस विकल्परहित है अन्तरात्मा। आहाहा!

दोष, अर्थात् रागादि और आत्मा, अर्थात् शुद्धचेतना द्रव्य, उनमें जिसकी भ्रान्ति नाश को प्राप्त हुई है,... चित्त के विकल्प मेरे, उसकी भ्रान्ति नाश हुई है, रागादि भाव मेरे, उसकी भ्रान्ति नाश हुई है और शुद्ध चेतनाद्रव्य मैं हूँ अशुद्ध और पर्याय में

अल्प हूँ.... यह भ्रान्ति जिसकी नाश हुई है। आहाहा! समझ में आया? उसे धर्मी कहते हैं। ऐसे तपस्या करे और ऐसे व्रत पाले तो धर्मी, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? यह विकल्प जो उठता है, यह व्रत करूँ और यह करूँ। उससे मैं भिन्न हूँ और दोष जो है, उससे अर्थात् कि रागादि दोष, भिन्न करके समझाया। परन्तु वह विकल्प और सब एक ही प्रकार है। **रागादि और आत्मा,....** सम्बन्धी भ्रान्ति। राग में मैं हूँ, दोष में मैं हूँ, चित्त के विकल्प में मैं हूँ और आत्मा सम्बन्धी जो अल्पज्ञता और राग में मैं हूँ, वह सब भ्रान्ति जिसे नाश हो गयी। आहाहा! यह तो भाषा सादी है। समाधितन्त्र थोड़े प्रकाशित हुए हैं। सबके पास नहीं होंगे।

आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है—चित्त, अर्थात् विकल्प; दोष, अर्थात् रागादि और आत्मा, अर्थात् शुद्धचेतना द्रव्य, उनमें जिसकी भ्रान्ति नाश को प्राप्त हुई है, अर्थात् जो चित्त को चित्तरूप से; दोष को दोषरूप से; और आत्मा को आत्मारूप से जानता है,.... आहाहा! दया-दान का विकल्प उठे तो उसे विकल्परूप से जानता है; उसे आत्मारूप से जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश कभी देखा है? यह तो कुछ करना, यह कहते हैं कि वह तो राग है। ऐसा राग है, राग से आत्मा भिन्न है। परन्तु वह तो ज्ञानस्वरूप है। आहाहा!

वह **चित्त को चित्तरूप से; दोष को दोषरूप से; और आत्मा को आत्मारूप से जानता है, वह अन्तरात्मा है....** उसे सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। आहाहा! वैसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' यह महाव्रत के परिणाम, साधु के अट्ठाईस (मूल)गुण का विकल्प वह सब दु:खरूप है। कहा न? ऐसा तो अनन्त बार किया और नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु लेश सुख नहीं पाया। तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि मुनिव्रत धारण किया, वह दु:खरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप ऐसा अर्थ करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें देखो न क्या है? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार....' यह सब बैठे हैं या नहीं सामने? ऐई! प्रतापगढ़! तुम तो पुराने दिगम्बर हो। इसका अर्थ

करना पड़ेगा न ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार....' यह तो छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ ? कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : यह तो अभव्य के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! मिथ्यादृष्टि की बात है। यह कहते हैं, ऐसा कहते हैं। वे लोग ऐसा कहते हैं।

अरे ! भाई ! तुझे खबर नहीं। यह तो सामान्य बात है। अनन्त बार मुनिव्रत धारण किये। यह व्रत का विकल्प है, वह तो राग है और इसलिए तो उसे कहा कि 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो व्रत के परिणाम जो किये, वह तो दु:ख था, आकुलता थी, राग था, विकार था, विभाव था। आहाहा! यह तो छहढाला में आता है। परन्तु यह कहते हैं, भाई ! लोग ऐसा कहते हैं। ऐसा कि यह तो अभव्य के लिये है। अरे ! भगवान ! यह तो बन्ध अधिकार में आता है न अपने अभव्य का दृष्टान्त ? ऐसा कि यह अभव्य के लिये है। अरे! भगवान! दृष्टान्त.... भाई! अभव्य जीव भी ऐसे महाव्रत के परिणाम करके नौवें ग्रैवेयक भोग भोगे-दु:ख के। ऐसा कहकर व्रत के विकल्पों को दु:खरूप सिद्ध किया है। आहाहा !

उपदेश में भी जो विकल्प उठता है, भाई! वह राग है। सुनने में जो विकल्प उठता है, वह राग है। आहाहा ! वह दु:ख है। राग है, वह दु:ख है; राग है, वह आकुलता है। आहाहा ! आगे आयेगा इसमें—समाधिशतक में। यह ऐसा कि दूसरे को मैं समझाता हूँ, ऐसा विकल्प है, वह पागल है। इतना धर्मी को भी विकल्प, वह पागलपन है। आहाहा! राग है न, भाई ! आहाहा! चाहे तो उपदेश का हो या चाहे तो श्रवण का हो।

इसीलिए तो कहा है ७४ गाथा में, कि शुभभाव, वह वर्तमान दु:खरूप है। ७४ में। और भविष्य में दु:खरूप है। अर्थात् ? इस शुभभाव से उसे पुण्यबन्ध होगा और पुण्यबन्ध से उसे कदाचित् वीतराग की वाणी और समवसरण मिलेगा। परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो उसे राग ही होगा। आहाहा ! परद्रव्य की ओर का झुकाव, वह राग है, वह दु:ख है। वह अज्ञानी को खबर नहीं पड़ती। आहाहा ! देखो न ! कैसी बात ली

है! शुभराग दया, दान, व्रत भक्ति का वर्तमान दु:खरूप है। यहाँ तो दु:खरूप सिद्ध किया। समकिती को राग उठे, वह दु:खरूप है। आहाहा!

वे कहते हैं न भगवान की भक्ति (करे), वहाँ कहाँ राग आया—दु:ख आया? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! तेरे स्वभाव का आश्रय छोड़कर जितना पर के आश्रय में जाये, वह सब आकुलता है। समझ में आया? आहाहा! श्रीमद् ने कहा है, एकाध को भी धर्म प्राप्त कराना, वह तीर्थंकरगोत्र का कारण है। ऐसा कहा है। परन्तु ऐसा कहक कहा है कि वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञायकस्वरूप परमात्मा में विकल्प का उत्थान हो, वह तो दु:खरूप है। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो इसका अर्थ हो नहीं गया?

मुमुक्षु : दु:ख ही रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख रहा। आहाहा! मिथ्यादृष्टिरूप से ऐसे पंच महाव्रत पालन किये, नग्नपना लिया परन्तु उसे सुख नहीं मिला। इस आत्मदृष्टि के अनुभव बिना सुख नहीं होता। यह तो सब क्रियाकाण्ड का राग है। आहाहा! बहुत कठिन बातें। इसलिए लोगों को ऐसा लगता है न, सोनगढ़ एकान्तवाद। ऐसा नाम पड़ा। भगवान! यह नाम रहने दे, भाई!

मुमुक्षु : यह... धीरे-धीरे....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....एक बार कहा था। वे नानाभाई छोटाभाई है। एकान्त है परन्तु अब अपने संगठित एक रखना और धीरे-धीरे सुधर जायेंगे। अरे! भगवान! आहाहा!

कहते हैं.... है न? अन्तरात्मा **अथवा चित्त और दोषों में 'आत्मा' माननेरूप भ्रान्ति, जिसके जाती रही है, वह (अन्तरात्मा) है।** आहाहा! चित्ता का विकल्प, वह मन का विकल्प है न? मन के सम्बन्ध से होता है न? विकल्प उठे, वह मन के सम्बन्ध से है। वह कहीं आत्मा के सम्बन्ध से नहीं होता। आहाहा! इसलिए चित्त का विकल्प सिद्ध किया है। आहाहा! यह सब **चित्त और दोषों में 'आत्मा' माननेरूप भ्रान्ति, जिसके जाती रही है, वह (अन्तरात्मा) है।** अब परमात्मा कैसे होते हैं, यह कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल ८, शनिवार, दिनांक २१-१२-१९७४, श्लोक-५, प्रवचन-११

टीका का अर्थ चलता है। **परमात्मा कैसे होते हैं?** पाठ है न इतना? '**परमात्माऽतिनिर्मलः**' मूल पाठ, पाँचवीं गाथा। परमात्मा **अति निर्मल हैं,....** निर्मल है अर्थात् जरा फिर नास्ति का (कहते हैं)। **जिनके अशेष (समस्त) कर्ममल नष्ट हो गया है,....** मल कहना है न इसलिए। कर्ममल नाश पाता है। कर्म नाश नहीं पाते। यह तो कर्ममल।

मुमुक्षु : भाव को भी कहा जाता है और द्रव्य को भी कहा जाता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। मूल तो भाव को कहते हैं, द्रव्य तो.... उसे क्या कहे? आहाहा!

भावार्थ - जो शरीरादि बाह्यपदार्थों में.... शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार, धन्धा यह सब पर चीज़ है। उसे मैं करता हूँ, ऐसा माननेवाला उस पर को ही अपना मानता है। समझ में आया? वह **उन्हें ही आत्मा मानता है,... बाह्यपदार्थों में आत्मा की भ्रान्ति करता है,....** भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। वास्तव में तो उसकी (अपनी) पर्याय होती है, उसका वह आत्मद्रव्य कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसके बदले मेरी उपस्थिति में यह सब व्यवस्था होती है.... पोपटभाई! टाईल्स की और सब। आहाहा! यह जगत के पदार्थ हैं। उसका उसकी अवस्था का काल है, इसलिए उस पदार्थ में उस काल में वह कार्य होता है। ....भाई! यह ...प्रसन्न हो गये। भावपाहुड़ है। भावपाहुड़। ऐसा कि वैराग्य का.... भावपाहुड़।

मुमुक्षु : किस प्रकार का दुःख भोगे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने दुःख का वर्णन। आहाहा! यह छहढाला में है पहली (ढाल) में। यह तो आचार्य के कथन हैं न? आहाहा! भाई! तूने ऐसे दुःख भोगे हैं। तेरी माता तू मर गया उसमें जो रोई, ऐसी माताओं के रोने के पानी (आँसू) इकट्ठे करे, (उसके) अनन्त समुद्र भर जायें। भाई! तूने ऐसे दुःख भोगे हैं। चैतन्य आनन्दस्वरूप है, उसका आश्रय लिया नहीं। आहाहा! बाहर तो अभी धमाल चलती है। लेखों में आता

है.... ओहोहो! अरे! मार्ग अलग है, प्रभु! इसने आत्मा को.... यहाँ तक आया है न? कि तू द्रव्यलिंगी साधु इतनी बार हुआ कि कोई स्थल तेरे द्रव्यलिंगी में जन्मे और मरे बिना रहा नहीं। आहाहा! द्रव्यलिंगी।

मुमुक्षु : ऐसा तो अनन्त बार हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार। बापू!

मुमुक्षु : कोई क्षेत्र बाकी नहीं रखा जहाँ द्रव्यलिंगीरूप से न हुआ हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....ऐसा कि कहीं बाहर का छोड़ा.... तेरी पुण्यप्रकृति की... है। ...आहाहा!

हे मुनिवर! हे मित्र! ऐसा कहकर कहते हैं। आहाहा! पोपटभाई! आया था न सवेरे? सुमनभाई तो बहुत प्रसन्न हुए। आज तो ओहोहो! गाथा-गाथा में वैराग्य। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप पर से भिन्न है, इसलिए पर से तो जीव उदास ही हो। समझ में आया? अरे! स्वयं कौन है और कैसा है, उसकी इसने प्रयोजन सिद्धि नहीं की। बाकी सब दुनिया में यह चले और यह चले। दुनिया में कुछ गिनवाने के लिये, कुछ लेख उसमें लेख ले हमारा। आहाहा! भाई! तुझे प्रसिद्धि में पड़कर कहाँ जाना है? आहाहा! प्रभु तो चैतन्यमूर्ति है न, नाथ! आहाहा! यह वह राग का कर्ता हो, यह तो कहीं रह गया। वह तो समय की पर्याय का भी कर्ता नहीं। क्योंकि ध्रुवपना तो एकरूप सदा है और उसकी पर्याय तो विविध प्रकार की एकविधता छोड़कर होती है। वह ध्रुव से होती हो, तब तो एकधारा सरीखी होनी चाहिए। न्याय समझ में आया? आहाहा! सुमनभाई!

फिर से। यह तो बहुत बार कहा गया है। यह आत्मा, उसकी जो दशा हो निर्मल, हों! वह भी यदि गुण से होती हो तो गुण तो त्रिकाल एकरूप है। उसकी दशा एकरूप सरीखी होना चाहिए। आहाहा! यह केवलज्ञान के समय भी है, उसमें भी अन्तर है। उसे उदय का अन्तर है। यह आता है न परमार्थ वचनिका में? परमार्थ वचनिका में आता है। केवली को भी एक प्रकार का.... आता है परमार्थ वचनिका में। आहाहा! क्योंकि उदय की जाति उस क्षण उसी प्रकार की होने के काल में वह होती है। उसका

कर्ता तो आत्मा है नहीं। क्योंकि उसका अस्तित्व है, वह तो विकारी है। भगवान आत्मा का अस्तित्व तो निर्दोष-निर्मल है। आहाहा!

निर्मल भगवान आत्मा। भले अन्तरात्मा हो। यह तो परमात्मा की बात की, वह तो निर्मल है। आहाहा! भगवान ही है, भाई! ऐसी चीज़ में से पर्याय की विविधता एक प्रकार की नहीं, तो गुण और द्रव्य एक जातिरूप कायम है। उनसे यदि दशा हो परमार्थ से.... आहाहा! तो एक सरीखी होनी चाहिए। गुण और द्रव्य तो समान त्रिकाल हैं। आहाहा! महेन्द्रभाई! आहाहा! इससे उसकी पर्याय का भी स्वतन्त्रपना है। आहाहा! द्रव्य के आश्रय से होने पर भी, निर्मल (पर्याय को) आश्रय द्रव्य का है, तथापि मोक्षमार्ग की पर्याय थोड़ी शुद्धि, उससे विशेष शुद्धि.... उससे विशेष शुद्धि.... द्रव्य और गुण यदि वास्तव में कारण हो, तब तो समान.... समझ में आया? अहो! यह आयेगा न? प्रवचनसार में। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। (गाथा) १०७। अब आयेगा। तीन सत् है। मूल पाठ है।

मुमुक्षु : सत् का विस्तार।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सत् का विस्तार है। आहाहा! १०७वीं गाथा है। १०७। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। आहाहा! सत् पर्याय है, उसे सत् दूसरा करे कैसे? है, उसे दूसरा करे, यह किस प्रकार? आहाहा! उस चीज़ को ही.... यह शास्त्र बनाना, शास्त्र बने, मुझसे किये गये। आहाहा! भाई! कहीं भी शास्त्र की परमाणु की उत्पत्ति की पर्याय में तेरी सत्ता प्रवेश की थी वहाँ? आहाहा! अरे! वाणी के रजकण वाणी के काल में होते हैं, भाई! तेरे आत्मा से वे भाषा के परमाणु आवें? उस भाषा की पर्याय का अस्तित्व तो उस समय में उस प्रकार के रजकण में उत्पन्न होने का उसका काल है तो होता है। आहाहा! कठिन बातें बहुत, भाई! क्या करे? नियत हो जाये। बापू! नियत ही है। वस्तु है, वह नियत ही है। द्रव्य निश्चय तो गुण निश्चय और पर्याय निश्चय। आहाहा!

चिद्विलास में डाला है। उस समय उसका विकार हो, उसका आत्मा कर्ता किस प्रकार होगा? क्योंकि सत् है, उसे हेतु क्या पर का? आहाहा! ऐसा इसे अन्तर में

भाव बैठना चाहिए। भगवान आत्मा ध्रुव आनन्दरूप सदृश्य और पर्याय में विसदृश्यता है। एक उपजे और एक जाये, एक हो और एक जाये। और यह तो है, वह है अन्दर। आहाहा! समझ में आया? यह तो परम सर्वज्ञ की बातें हैं, बापू! साधारण यह सब दीक्षा लेकर बैठे बेचारे। हैरान है। किसे दीक्षा कहना, भाई!

चैतन्य की जाति को, द्रव्य-गुण के तत्त्व को भी कितना है? उसे जिसने अभी दृष्टि में लिया नहीं, तो वहाँ स्थिर होना है, ऐसा चारित्र तो कहाँ से होगा? आहाहा! भाई! तेरा तिरस्कार करने के लिये यह ऐसा नहीं है, भाई! वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? जो भगवान आत्मा एकरूप.... आता है न सदृश्य-विसदृश्य। उसमें आता है। समयसार, नहीं? विरुद्ध और अविरुद्ध। विरुद्ध-अविरुद्ध कार्य से जगत टिक रहा है। इसका अर्थ फिर धवल में किया है। धवल में। कि पर्याय, वह विसदृश है, गुण वे सदृश हैं। आहाहा! ऐसा पाठ है। ओहोहो! विसदृश धारा, व्यय-उत्पाद... व्यय-उत्पाद.... व्यय-उत्पाद उसे सदृश क्या करे? कहते हैं। समझ में आया? अत्यन्त ज्ञाता-दृष्टा ऐसा भगवान, उसकी पर्याय को भी करे, ऐसा यदि कहने जावे तो मिलान नहीं खाये। आहाहा! वह पर्याय भी उस काल में धर्म की, चारित्र की, सम्यग्दर्शन की.... आहाहा! स्वतन्त्र है। उस काल में वह स्वतन्त्र (होती) है। उसका कर्ता यदि मानोगे तो उसका एकरूप है, उसकी एकरूप दशा होनी चाहिए। यह तो निचली दशा में एक पर्याय का स्वतन्त्रपना सिद्ध करने के लिये बात है। पश्चात् भी केवलज्ञान में भी ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **जो शरीरादि बाह्यपदार्थों में आत्मा की भ्रान्ति करता है,....** आहाहा! अभी तो पर्याय का भी कर्ता नहीं, उसके बदले यह राग का कर्ता और राग मेरा (माने).... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह भाव मेरा, यह वस्तु में नहीं, और बहिर् में है, उसे आत्मा मानना, वह बहिरात्मा है। आहाहा! सीधी बात है, भाई!

सवेरे आया था कि भाई! तेरे मरण के समय तेरी माँ ने.... एक जन्म की नहीं। अन्य-अन्य जन्म की.... आया था न? सुमनभाई! उसमें आया था। अन्य-अन्य माता। आहाहा! भाई! तेरे मरण काल में वह तेरी माँ रोई है, उसके आँसु का कोई.... इकट्ठा

करे तो अनन्त समुद्र भर जायें। अरेरे! ऐसा भव! आहाहा! समझ में आया? इस भव का नाश करने का उपाय यदि नहीं जाना तो यह तो भव.... वस्तु क्या? वह तो अनादि की है। समझ में आया? साधारण मनुष्य के साथ मिलान नहीं खाता, भाई! मेल नहीं खाये, इसलिए कहीं वस्तु दूसरी हो जायेगी?

कहते हैं कि यह बाह्य पदार्थ.... आहाहा! मैंने शरीर को हिलाया, मैं वाणी बोला। आहाहा! उस बाह्य पदार्थ में मुझसे कुछ हुआ, यह तुझे भ्रान्ति है। होशियार, सब होशियारी है सभी। सुमनभाई! यह होशियार व्यक्ति है। आठ हजार वेतन। नहीं? छह हजार वेतन था। वहाँ बेल्जियम गये थे। अपने को कहाँ खबर है? लोग बातें करे, किसी के पास इतना है और किसी के पास इतना है। ऐई! आहाहा! .....मेरे माँ-बापूजी यहाँ रहे, मेरे गुरु देश में रहे, मुझे वहाँ जाना पड़े ऐसा है। ऐसा सुना है, हों! आहाहा!

भाई! तू कहाँ है? तू राग में है? तू शरीर में है? तू राजकोट में है? तू मुम्बई में है? आहाहा! भाई! तू तो आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु तू ऐसा, वहाँ तू है। समझ में आया? ऐसा न मानकर मैं यहाँ हूँ, इसमें हूँ और इसमें हूँ—ऐसी बाह्य चीज़ों में अपनापना मानना, वह भ्रान्ति है। आहाहा! यह बहुत संक्षिप्त में भाषा बेचारे ने की है। यहाँ सुन गये थे न! छोटालालभाई गुलाबचन्द। लिखा है, समाधितन्त्र महाराज के पास सुना, उसके संस्कार हैं। ....वहाँ है, सामने आगे हैं।

बाह्य पदार्थ.... प्रभु चैतन्य में तो आनन्द और ज्ञानस्वभाव है, इसके अतिरिक्त बाह्य पदार्थों में भ्रान्ति, उसे आत्मा माने, वह बहिरात्मा है। वह अब विस्तार करेंगे। **विकल्प,....** चित्त को कहा था न चित्त वहाँ? यह विकल्प उठे वह मैं। आहाहा! अब यहाँ तो बड़े पैसेवाले, स्त्रियोंवाले, इज्जतवाले। ऐई! नौतमभाई! क्या करना यह?

मुमुक्षु : क्या करना। आप उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तेरी चीज़ नहीं। तेरी हो, वह भिन्न कैसे रहे? और तेरी हो वह पृथक् कैसे हो? आहाहा!

ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा को छोड़कर ऐसी बाह्य चीज़ों में कहीं भी, अरे! बाहर प्रसिद्ध होऊँ, बाहर गिनती में आऊँ, ऐसी जो बुद्धि, वह भी बाह्य को अपना

मानता है। आहाहा! मैं ऐसा होऊँ। दुनिया मुझे कुछ गिनती में ले। अरे! प्रभु! क्या है तुझे?

मुमुक्षु : कुछ नया करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया करना कुछ। आहाहा! यह नया नहीं? जो अनादि से नहीं हुआ, ऐसा मैं चैतन्यमूर्ति हूँ। मेरा स्वरूप स्व के आश्रय से प्रगट होता है। है तो है। परन्तु वह प्रगट होता है पर्याय में-अवस्था में, वह मेरे आश्रय से प्रगट होता है। आहाहा! और एक ओर आश्रय से प्रगटे तथा एक ओर कहे, पर्याय का द्रव्य कर्ता नहीं। यह तो कोई गजब बात है न! यह बात तो अनेकान्तमार्ग वीतराग का (ऐसा है)। आहाहा!

यह चित्त के **विकल्प, रागादि दोष....** लो, यह पुण्य-पाप के भाव, वे दोष हैं, कहते हैं। आहाहा! **और चैतन्यस्वरूप आत्मा के विषय में जिसको भ्रान्ति नहीं है,....** समझ में आया? यह लेना है न यहाँ तो। वह जिसे नहीं **अर्थात् जो विकार को विकाररूप से; और आत्मा को आत्मारूप से—** आहाहा! यह शुभभाव है, यह भी परवस्तु है, यह पुद्गल के परिणाम हैं, ऐसा कहा है। उसमें निर्मल पर्याय है, उसे परद्रव्य कहा है। आहाहा! नियमसार, ५० (गाथा)। क्योंकि जो नयी पर्याय प्रगट होती है, वह जैसे परद्रव्य से प्रगट नहीं होती, वैसे ही निर्मल पर्याय में से नयी प्रगट नहीं होती, इस हिसाब से (निर्मल पर्याय) परद्रव्य है। आहाहा! दृष्टि द्रव्य में कराने के लिये। यह प्रयोजन है, भाई! समझ में आया? आहाहा! जिसे यह भ्रान्ति नहीं। विकार होता है परन्तु विकार को विकाररूप **और आत्मा को आत्मारूप से—एक-दूसरे से भिन्न समझता है,....** समझ में आया? यह **'अन्तरात्मा' है।** वह बहिरात्मा का था, यह अन्तरात्मा। आहाहा!

ऐसा आत्मा है, ऐसा वह दृष्टि में और ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप न हो, तब तक उसने आत्मा माना नहीं। है तो है। परन्तु है का स्वीकार हो तो वह है तुझे। आहाहा! यह छठवीं (गाथा) में कहा न? छठवीं गाथा। उस पर दृष्टि पड़ने पर.... वहाँ तो इतना लिया है कि पर से लक्ष्य छोड़ने पर। राग से छोड़ने पर, ऐसा नहीं लिया। क्योंकि राग

तो है। वह पर का लक्ष्य छोड़ने से वह दृष्टि द्रव्य पर जाती है। उस द्रव्य की जिसने सेवा की, उसके लिये अस्ति जो शुद्ध की अस्ति है, उसके लिये अस्ति है। अस्ति का अस्तिभाव दृष्टि में न आवे, उसे कहाँ अस्ति है ? जो वस्तु है, जिस प्रकार से अस्ति है, उस प्रकार से दृष्टि में आये बिना यह है, ऐसा आया कहाँ से ? आहाहा! मान लेना है ? धार लेना है ? समझ में आया ? ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा!

अन्तरात्मा है;.... वह अन्तरात्मा है। विकार को विकाररूप से, ज्ञान विकार में गये बिना, ज्ञान में राग का ज्ञान आवे, वह राग में प्रविष्ट हुए बिना.... आहाहा! उस राग का ज्ञान यहाँ होता है, वह ज्ञान द्वारा ज्ञान हुआ है। राग द्वारा राग का ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? भाई! यह तो अनन्त जन्म, जरा, मरण के अन्त लाने की बात है, भाई! प्रसन्न होना और थोड़ा पुण्य किया, कुछ व्रत पालन किये, भाई! वह तो सब मिथ्या भ्रान्ति में भ्रम में पड़कर परिभ्रमण करने के वे तो लक्षण हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, उस विकार को विकाररूप से जाने अर्थात् क्या ? उस विकार को विकाररूप से जाने और आत्मा को आत्मारूप से जाने। आहाहा! इसका अर्थ कि आत्मा को आत्मारूप से ज्ञान में आया ज्ञेय, तब राग को रागरूप का अस्तित्व अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, उससे विकार को विकाररूप से जानता है, यह भी व्यवहार है। विकार सम्बन्धी का अपना जो स्व-परप्रकाशक ज्ञान है, उसे वह जानता है। ऐसा सूक्ष्म बहुत, भाई! मार्ग ऐसा है। निर्विकल्प समाधि का मार्ग है। समाधितन्त्र है न ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह भी समाधि है, शान्ति है, निर्विकल्पदशा है, वीतरागी धारा है। आहाहा! समझ में आया ? दो बात हुई। बहिरात्मा और अन्तरात्मा।

जो रागादि दोषों से सर्वथा रहित हैं,.... उसमें तो ऐसा कहा न, विकार है, विकार को जानता है। अब इन्हें विकार नहीं। परमात्मा है न ऊपर ? **रागादि दोषों से सर्वथा रहित हैं,...** आहाहा! **अत्यन्त निर्मल हैं...** पाठ है यह तो। **और सर्वज्ञ हैं, वे 'परमात्मा' हैं।** आहाहा! इन तीन की अवस्था का वास्तविक स्वरूप यह है। आहाहा!

विशेष :- बहिरात्मा - जो शरीरादि (शरीर, वाणी, मन इत्यादि) अजीव हैं,

उनमें जीव की कल्पना करता है तथा जीव में अजीव की कल्पना करता है;.... मेरे जीव में यह राग हुआ, इसलिए मैं रागी हूँ। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! महाव्रत के परिणाम जो हैं, वह मुझसे हुए हैं। व्यवहारनय के शास्त्र में तो ऐसा ही आता है। व्यवहारनय के ग्रन्थ में चरणानुयोग में (ऐसा आता है कि) महाव्रत पालना, अतिचार टालना, दोष लगे तो प्रायश्चित लेना। ऐसा विकल्प / वृत्ति होती है। वह मेरी भूमिका के योग्य यह (वस्तु) नहीं है। वह भूमिका भले रही हो। छठवें गुणस्थान में, पाँचवें में... उस भूमिका में ऐसे विकल्पों की जाति नहीं होती। विकल्प अपने नहीं मानता, परन्तु इस दशा में ऐसी जो दशा से विरुद्ध के विकल्प न हों, ऐसा जानकर उनसे विमुख होता है। समझ में आया? आहाहा!

तथा जीव में अजीव की कल्पना करता है; दुःखदायी राग-द्वेषादि विभावभावों को सुखदायी समझता है;.... आहाहा! पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव वे दुःख के दातार हैं। दायी है न? दायी / दातार। आहाहा! उसे सुखदाता मानता है। एक व्यक्ति यहाँ नहीं आया था? वह कहे, कषाय मन्द है, उतनी शान्ति तो है न? सुना न हो न! एक व्यक्ति नहीं था? भीखू.... वह कहे, कषाय—शुभभाव है, उस समय शान्ति तो है। शुभभाव है, बापू! वह तो आकुलता है।

मुमुक्षु : उस मन्द आकुलता को ही शान्ति मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे शान्ति मानता है। आहाहा!

शान्ति तो कषाय के भाव से रहित, जो आत्मा का अकषाय स्वरूप ही है। अर्थात् कि शान्त स्वभाव ही है, अर्थात् कि वीतरागमूर्ति ही प्रभु है। आहाहा! उसमें से वीतरागता का अंश जो आवे, उसका नाम शान्ति कहा जाता है। राग का अंश शान्ति कहाँ कहलाये?

पुण्य और पाप आदि विभाव। रागादि शब्द है न? **विभावभावों को सुखदायी समझता है;....** आहाहा! इन शुभभाव को सुख का दाता मानता है। हम भक्ति करते हैं भगवान की, व्रत पालते हैं तो उसमें से सुख मिलेगा। बाह्य का ऐसा पालते हैं तो अन्दर में जाया जायेगा। उसके (बाहर के) झुकाववाली दशा हमें अन्तर में ढलने में मदद

करे, ऐसे दुःखदायी को सुखदायी मानता है। आहाहा! दुःखदायी को सुखदायी समझता है। आहाहा! यह मिथ्यात्व है। समझ में आया? **ज्ञान-वैराग्यादि, जो आत्मा को हितकारी है, उन्हें अहितकारी जानकर,...** छहढाला में आता है। छहढाला में आता है। क्या?

मुमुक्षु : आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखे आपकूँ कष्टदान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। वह है यह। आहाहा! कण्ठस्थ तो बहुत इस पण्डित ने किया था। परन्तु सब घोटालेवाला। आहाहा! मुखाग्र करे, कण्ठस्थ करे वह वस्तु कहाँ है? आहाहा! परलक्षी ग्यारह अंग का ज्ञान भी अहितकर है। क्योंकि वह ग्यारह अंग का (पढ़ा), तथापि सुख तो नहीं आया। अर्थात् मिथ्यात्व रहा और दुःख रहा। आहाहा! समझ में आया? लोगों को ऐसा लगे, एकान्त.... एकान्त.... एकान्त है। सम्यक् एकान्त ही है। अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त है। तब अनेकान्त का सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञान-वैराग्यादि....** अन्तर का ज्ञान करना, उसे अहितकारी मानता है। **वैराग्यादि....** अर्थात् रागरहित दशा के.... **जो आत्मा को हितकारी है, उन्हें अहितकारी जानकर,....** है। अर्थात् कि उसे प्रगट करने की भावना नहीं है। इसलिए अहितकारी जानता है। आहाहा! समझ में आया? **उन्हें अहितकारी जानकर, अरुचि या द्वेष करता है;....** मनुष्य नहीं कहते? कि भाई! चारित्र तो दूध के दाँत से लोहे के चना चबाना है, बापू! चारित्र ऐसा है। वह तो चारित्र को दुःखदायी माना। समझ में आया? दूध के दाँत से लोहे के चने चबाने जैसा चारित्र। अरे! बापू! वह चारित्र नहीं, भाई! तूने चारित्र को गाली दी है। चारित्र तो स्वरूप में आनन्द दे। स्वरूप में रमणता और अतीन्द्रिय आनन्द दे, वह चारित्र है। आहाहा! कहते हैं, उसके प्रति अरुचि और द्वेष करे, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

शुभकर्मफल को भला.... एक पृष्ठ तो बड़ा भरा है, नहीं? २०० गाथा का समयसार। बड़ा पृष्ठ बड़ा भरा है। २०० गाथा। **शुभकर्मफल को भला....** शुभ कर्मफल। पैसे का ढ़ेर हो, मकान सस्ते मिले, पाँच लाख का मकान पचास हजार में मिले। ऐई! उसे पैसा चाहिए हो और इतना सब कोई देनेवाला न हो। फिर सेठिया को बुलाकर कहे, बापू! इसमें से इतना दो। कितना अपने को लाभ हुआ। देखो! पाँच लाख का कहा

और पचास हमार में देता है। उसमें क्या हुआ? तुझे लाभ क्या हुआ? नुकसान हुआ, तुझे भ्रमणा हुई। आहाहा!

और अशुभकर्मफल को बुरा मानकर,.... अशुभ कर्मफल। निन्दा कोई करता हो, शरीर में रोग हो, विधुरपना हो, निसन्तानपना हो। अरे! यह तो.... आहाहा! है? वह **अशुभकर्मफल को बुरा मानकर, उनके प्रति राग-द्वेष करता है; शरीर के जन्म से, अपना जन्म....** माने। आहाहा! जन्म जयन्ती मनाओ। किसका जन्म? भाई! समझ में आया? बात तो यह है। जन्म-जयन्ती मनावे तो प्रसन्न हो, आहा! मेरा जन्मदिन। तू जन्मा हों? ऐई! आहाहा! **शरीर के जन्म से, अपना जन्म....** मानकर प्रसन्न होता है। यह जयन्ती मनावे तो प्रसन्न होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जयन्ती मनावे तो नाराज हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे क्या है, वह तो जगत के भाव हैं, जैसा करना हो, वैसा करे। जन्म कहाँ था तेरा? आत्मा कब जन्मे? शरीर के जन्म को तू अपना जन्म मानकर उसकी प्रशंसा करनेवाले को, तू उनसे प्रसन्न होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! कुछ आया और जगत को कुछ ख्याल में आया, तो कहे, मनाओ जन्म जयन्ती। किसकी जन्म जयन्ती? आहाहा! जन्म तो जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सृष्टि खड़ी की.... आहाहा! उस जन्म को स्वयं प्रशंसा करता है। दूसरा जाने, न जाने, उसके साथ क्या? समझ में आया? उसे छोटे-छोटे ऐसे भाव में शल्य रह गयी है। समझ में आया?

और नाश से, अपना नाश मानता है,... अब मैं यहाँ रहनेवाला नहीं, हों! अब मेरी स्थिति पूरी हो गयी। वह तो शरीर की स्थिति पूरी हुई। तेरी कहाँ से हुई? देह की स्थिति पूरी हुई। देह की स्थिति पूरी (हुई), उसमें अब मैं पूरा हो गया। आहाहा! यह सब भ्रान्ति है। **वह मिथ्यादृष्टि 'बहिरात्मा' है।**

ये शरीरादि जड़पदार्थ, प्रगटरूप से आत्मा से भिन्न हैं; ये कोई पदार्थ, आत्मा के नहीं हैं; आत्मा से पर (भिन्न) ही हैं,.... सादी भाषा में बहुत सादा.... **तथापि उन्हें अपना मानना और शरीर की बोलने-चलने आदि क्रिया....** लो, ठीक! मैं बोलूँ, मैं

चलूँ, मेरी गति हाथी जैसी है, अमुक की गति गधे जैसी है। अरे! वह तो जड़ की क्रिया गति तो बाहर की। आहाहा! वह मैं करता हूँ। लो, शास्त्र में ऐसा आता है कि साधु को ईर्यासमिति में सामने जीव दिखायी दे तो पैर को ऊँचा कर लेना। ईर्यासमिति की बात बहुत आती है। यहाँ कहते हैं कि मैं ऊँचा करता हूँ, ऐसा माने वह मिथ्यात्व है। आहाहा! भाई! मार्ग वीतराग का सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग आडोलित गया अभी बहुत। वाड़ा में तो कुछ गन्ध भी नहीं रही तत्त्व की। गन्ध रही नहीं, इसकी दिक्कत नहीं परन्तु उल्टी दशायें। कुछ भान नहीं आत्मा कौन, देव कौन, गुरु कौन। यह दीक्षा लेकर हो गये साधु।

कहते हैं, **आत्मा से पर (भिन्न) ही हैं, तथापि उन्हें अपना मानना और शरीर की बोलने-चलने आदि क्रियाओं को मैं करता हूँ, इनसे मुझे लाभ-अलाभ होता है;....** शरीर बराबर चले तो मुझे लाभ हो, शरीर बराबर ठीक न हो तो मुझे नुकसान हो। आहाहा! समय-समय की पर्याय में इसकी भूल कहाँ है, यह कहते हैं। समय-समय में भिन्न चीज़ को अपने से मानना... आहाहा! वह तो मिथ्यात्वभाव है। बहिरात्मा है। यहाँ तो आत्मा से पर है, तथापि उसे अपना मानना, शरीर की बोलने की (क्रिया मेरी), **यह शरीर मेरा है, मैं पुरुष,...** लो! मैं आदमी हूँ। मिथ्यात्वभाव है। **मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं राजा, मैं रंक,....** हूँ। भाई! हम तो गरीब लोग कहलाते हैं। हम तो किसी की मजदूरी करके रोटिया खाते हैं। बापू! रंकपना वह तू है? आहाहा! **मैं रागी,....** यह शुभभाववाला मैं और वह मेरा। अहं और मम। शुभराग वह मेरा और मैं उसका। आहाहा! तो फिर यह पिता-पुत्र का कहाँ रहा? ऐई!

मुमुक्षु : जगत के स्वतन्त्र पदार्थ में पिता-पुत्र, माता-पिता कहाँ रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य-गुरु भी कहाँ हैं? जीव को और यह शिष्य और यह गुरु, ऐसा है उसमें? आहाहा! व्यवहार की इस जंजाल में कहीं-कहीं उलझ जाये। आहाहा! काँटा के गणीया में सर्प घुसे न, काँटा को गणीया समझतें हो? दस-बीस मण का हो न.... उसमें सर्प कहीं आकर यदि उसमें घुसा... आहाहा! चारों ओर काँटे लगे, खून निकले। बाहर जाये तो हजारों चींटिया चिपके। उसी प्रकार इस जगत में से

परवस्तु को अपनी माने, वह मिथ्यात्व में गया और उसे आकुलता का वेदन है। आहाहा! गजब बातें, भाई! किसकी नौकरी करे कौन?

मैं रंक, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं सफेद,.... मेरा शरीर गोरा है, यह गोरा वह मैं। आहाहा! गोरा और काला, वह तो जड़ की दशा है। मैं कोमल हूँ, मेरी काठी निर्बल है पहले से। यह काठी अर्थात् शरीर। आहाहा! भाई! तूने कहाँ माना तुझे? इसमें डाला है न? इसका शरीर जीर्ण है न? शब्दकोश इतना संक्षिप्त किया है कि ओहोहा! भगवान के शरीर में जैसे उपशम रस के परमाणु थे, ऐसे सब शान्त रस के परमाणु यहाँ इकट्ठे हुए। कहाँ का कहाँ लगावे? आहाहा! भक्तामर में नहीं आता? जितने शान्त परमाणु थे, वे सब भगवान के शरीर में आये। उन परमाणु को और आत्मा को क्या सम्बन्ध?

मैं काला—इस प्रकार बाह्यपदार्थों से अपने आत्मा को भिन्न नहीं जानता, वह परपदार्थों को ही आत्मा मानता है.... आहाहा! **और मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत जीव -अजीवतत्त्वों के स्वरूप में भ्रान्ति से प्रवर्तता है,....** आहाहा! शरीर का सद्उपयोग करना, भाई! जवानी है, उसके शरीर में से माल निकालना अपवास करके। कस-कस निकालना। क्या कस निकालना? वहाँ कस है? कस तो आत्मा में है।

मुमुक्षु : शरीर का कस आत्मा में आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं लोग। शरीर मजबूत हो तो अपवास करके गलाना। शरीर पतला पड़े तो आत्मा को धर्म का निर्जरा का लाभ हो अपवास से। यहाँ कहते हैं कि वह सब मूर्खाई है तेरी मान्यता। आहाहा!

इस प्रकार बाह्यपदार्थों से अपने आत्मा को भिन्न नहीं जानता, वह परपदार्थों को ही आत्मा मानता है और मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत जीव-अजीवतत्त्वों के स्वरूप में भ्रान्ति से प्रवर्तता है, वह जीव 'बहिरात्मा' है। परपदार्थों में आत्मभ्रान्ति के कारण यह अज्ञानी जीव, रात-दिन विषयों की चाहरूप दावानल में जल रहा है,.... आहाहा! विषय की मिठास है जिसे—मूढ़ को। आहाहा! समझ में आया? सुन्दर गोरी स्त्री और मधुर भाषा करे, वहाँ इस विषय में कितना मजा है? मूढ़ है, बापू! वह पर में सुख की कल्पना तूने की है, भगवान आनन्द का नाथ, उसकी तूने हिंसा की है। समझ में आया?

उसकी तो खबर नहीं और फिर कहे, हम हैं समकिती। ठीक भाई! कौन इनकार करता है।

अज्ञानी जीव, विषयों की चाहरूप.... देखो! चाह है न, उसे चाहना? इज्जत की चाहना, अपने शरीर की सुन्दरता बतलाने की चाहना, दूसरे की सुन्दरता देखने की चाहना... आहाहा! यह **दावानल में रात-दिन जल रहा है,....** आहाहा! छह खण्ड का राजा हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु उसकी-परपदार्थ की चाह है मिथ्यादृष्टि को। आहाहा! वे सब सुख के साधन हैं—(ऐसा मानता है), वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। चाहे तो जैन का साधु हुआ हो तो भी वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया?

आत्मशान्ति खो बैठा है,.... पर में सुख की चाहना से आत्मा की शान्ति का नाश होता है। समझ में आया? **अतीन्द्रिय चैतन्य आत्मा को भूलकर, बाह्य इन्द्रिय विषयों में मूर्छित हो रहा है और आकुलतारहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता।** आहाहा! कहो, पोपटभाई! आहाहा! क्या कहलाता है यह? वड़ोदरा की नहीं? भूल-भूलैया। मेंहदी भूल-भूलैया। वडोदरा। मेंहदी में प्रवेश करे, परन्तु फिर निकलना (कहाँ) कुछ खबर नहीं पड़ती। फिर उसका व्यक्ति हो और पैसा देना पड़े कि चार आना, आठ आना। बापू! इसमें निकलना कहाँ से हमारे? (संवत्) १९६३ की बात है। अफीम का केस चलता था न। झूठा.... एकदम झूठा। सवा महीने चला, वहाँ देखने जाते थे। उसने कहा, रुपया दो। हमने कहा, आठ आना (देंगे)। .....अफीमवाले के साथ हमें क्या काम? इसमें विवाद उठा और सात सौ का खर्च। और छह महीने उलझे रहे। वहाँ एक बार देखने गये। मेंहदी की भूल-भूलैया है न। घुसे अवश्य, निकलना कहाँ से? ...ऐसे.... ऐसे.... ऐसे.... उस व्यक्ति को कहा बापू! यह रास्ता कहाँ से है? वह यहाँ से ऐसे निकलो वहाँ निकलेगा। आहाहा! ऐसे भूल-भूलैया के रास्ते चढ़ गया है अनादि से। समझ में आया? यह परमात्मा निकलने का बताते हैं। इस रास्ते से निकल, बापू! यह .... आड़े-टेढ़े.... आड़े-टेढ़े.... मेंहदी में। इतने.... इतने.... वापस कूदकर निकला नहीं जाये, इतने ऊँचे हों। आहाहा! वह एक भूल-भूलैया है, कहते हैं।

बाह्य इन्द्रिय के विषयों में, शब्द में, रूप में, रस में, गन्ध में.... आहाहा! शब्द

से मुझे ज्ञान होता है, पर से मुझे लाभ होता है, यह सब पर के विषय में मूर्च्छित हो गया है। **और आकुलतारहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता।**

अन्तरात्मा - चैतन्य लक्षणवाला जीव है.... यह तो जाननेवाला.... जाननेवाला.... जाननेवाला.... ऐसे लक्षण से लक्ष्य हो सकता है। ऐसी यह चीज़ है। किसी भी गुरु से, देव से या विकल्प से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञात हो ऐसा, प्रत्यक्ष ज्ञाता है। उसे दूसरे प्रकार से माने, वह भ्रमणा है। आहाहा! समझ में आया? **उससे विपरीत लक्षणवाला अजीव है। आत्मा का स्वभाव, ज्ञाता-दृष्टा है, अमूर्तिक है....** उसमें कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। आहाहा! **और शरीरादि परद्रव्य हैं, वे पुद्गल पिण्डरूप जड़ हैं, विनाशीक हैं; वे मेरे नहीं और मैं उनका नहीं —ऐसा भेदविज्ञान करनेवाला सम्यग्दृष्टि, 'अन्तरात्मा' है।** आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भेदविज्ञान करनेवाला.... अर्थात् कि जैसा है, वैसी भिन्नता जाननेवाला। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि, 'अन्तरात्मा' है।** बस, तब इतना जाने वहाँ अन्तरात्मा हो गया? कोई व्रत पाले नहीं, उपवास किये नहीं। आहाहा! भाई! अभी तो तदुपरान्त पाँचवाँ गुणस्थान आवे, वह स्वरूप और शान्ति का आश्रय बढ़ जाये, उसे उसमें व्रत के विकल्प हों, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! तुझे कहाँ से आ गये व्रत के विकल्प? आहाहा! जिसकी शान्ति, सर्वार्थसिद्धि के देव समकिती, उससे जिसकी शान्ति अन्दर बढ़ जाये। आहाहा! उसे पाँचवाँ गुणस्थान कहते हैं और उसे बारह व्रत के आस्रव के उस जाति के विकल्प होते हैं। और श्रावक के छह कर्तव्य होते हैं न? दिन-प्रतिदिन। देवदर्शन, गुरुसेवा, दान, तप, संयम, इस जाति का ऐसा विकल्प आता है, उस भूमिका में (आता है), ऐसा बतलाया है। समझ में आया? वह कर्तव्यरूप से है, ऐसा व्यवहारनय के कथन में यह आता है। निश्चय से उसे मेरा कर्तव्य है, ऐसा माने... आहाहा! तो उसे भेदज्ञान नहीं है। यह तो भेदज्ञान करनेवाले सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा हैं। आहाहा!

वह जानता है कि.... धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव '**मैं देह से भिन्न हूँ; देहादि मेरे नहीं हैं; मेरा तो एक ज्ञान-दर्शन लक्षणरूप शाश्वत आत्मा ही है;....** लो, देखो! पर्याय का अंश भी नहीं लिया यहाँ। माननेवाली पर्याय है। परन्तु उसका लक्ष्य जो है, वह पूर्ण शाश्वत्

है। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसा धर्म कैसा? सोनगढ़वालों ने नया निकाला है? भगवान! नया नहीं। भगवान ने कहा हुआ यह मार्ग है। तूने सुना न हो, इसलिए नया हो गया? बिल्ली के बच्चे को सात दिन घुमावे और ४९ दिन हो, तब आँखें (खोले).... ओहोहो! यह जगत है? परन्तु तेरी आँखें नहीं थी, तब भी जगत था। तुझे आँखों में आया तब ऐसा लगा (कि) यह जगत है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जहाँ आँख खोली अन्दर में... ओहो! ऐसा आत्मा! ऐसा अनादि से है। तुझे जब दृष्टि में आया तब तुझे (खबर पड़ी), यह आत्मा! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अन्य सर्व संयोग लक्षणवाले (व्यावहारिकभाव) जो कोई भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं। आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको हितरूप है.... भाषा क्या है? **आत्मा के आश्रय से....** सर्व क्रियाकाण्ड करके और दया पालन की, वह संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा! **आत्मा के आश्रय से....** तो आत्मा कैसा है, यह जाना हो, उसके आश्रय से। आहाहा! **जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है,....** पर्याय कहनी है न यहाँ तो? **वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण....** वह संवर और निर्जरा - मोक्ष का कारण होकर **मुझको हितरूप है तथा बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो....** दो आश्रय लिये, देखा? इसकी बात आयेगी विशेष....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल ८, रविवार, दिनांक २२-१२-१९७४, श्लोक-५-६, प्रवचन-१२

अन्तिम दो लाईनें हैं। **इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे जानकर,....** अर्थात् क्या कहा? कि यह आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन है, उसके आश्रय से होनेवाला भाव, वह संवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण है। बहुत संक्षिप्त। चैतन्य ज्ञानानन्द शुद्ध ध्रुव चैतन्य। यह आया था। **आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको हितरूप है...** यह इसे निर्णय करना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? आत्मा के आश्रय से.... ११वीं गाथा का लिया है। जिसमें आत्मा का अवलम्बन हो, जिसमें भगवान पूर्णानन्द जिसकी पर्याय में समीप वर्तता हो अथवा जिसके आश्रय से वस्तु स्वरूप भगवान पूर्णानन्द ध्रुव, उसके आश्रय से प्रगट हुई ज्ञान और चारित्रदशा या सम्यक्, वह संवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण है।

बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो रागादिभाव होते हैं,... चाहे तो तीर्थंकर हो या उनकी वाणी हो या शास्त्र हो, उसका वाँचन आदि बाह्य पदार्थ के आश्रय से होते रागादि भाव, वह बन्ध का कारण है। यह शास्त्र को वाँचन कर, पढ़कर उसका यह आशय निकलना चाहिए। उसका तत्त्व और सार तो यह है। आहाहा! जो चैतन्यस्वरूप पूर्ण वस्तु स्वभाव, उसके आश्रय से प्रगट हुई दशा, वह मोक्ष का कारण है। और बाह्य आत्मा के अतिरिक्त शास्त्र, देव, गुरु वे तो ऊँचे निमित्त लिये हैं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वे तो पर हैं, उनके आश्रय से होनेवाला भाव, वह विकार है और देव-गुरु और शास्त्र के आश्रय से होनेवाला भी राग है। आहाहा!

वह राग **आस्त्रव-बन्धरूप हैं और संसार के कारण हैं....** आहाहा! समझ में आया? **मुझे अहितकर हैं;....** आहाहा! भगवान सर्वज्ञ, गुरु और शास्त्र के आश्रय से होनेवाला राग, वह मुझे अहितरूप है। यह अन्दर की वस्तु में से निर्णय आना चाहिए। आहाहा! पठन कम हो, उसके साथ कोई (सम्बन्ध नहीं)। चैतन्य का आश्रय और पर का आश्रय, दो बात। आहाहा! चैतन्य वस्तु जो अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है, इसके आश्रय से-उसके अवलम्बन से—यह सत्य वस्तु महाप्रभु के आश्रय से—उसके अवलम्बन से जो दशा वीतरागी पर्याय प्रगट हो। उसके आश्रय से राग पर्याय प्रगट नहीं

होती। आहाहा! और बाह्य पदार्थ चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो या सम्मेदशिखर हो या शत्रुंजय हो। आहाहा! 'एक बार वन्दे जो कोई....' आता है न सम्मेदशिखर में? नरक, पशु न होय। ऐसा एक भव नरक-पशु न होय (उसमें क्या है) ?

भगवान सर्वज्ञ हो या उनका समवसरण हो या उनकी वाणी हो, परन्तु वह बाह्य पदार्थ है। उसके आश्रय से होनेवाला भाव आस्रव है, बन्ध का कारण है। आहाहा! पूरा जैनदर्शन का दोहन यह है। फिर चाहे जो पढ़े। मगनभाई! आहाहा! भगवान आत्मा जिसकी पर्याय में समीपपने आवे, इसका अर्थ कि पर्याय वहाँ समीपपने जाये। आहाहा! उसे समीप में है न, ऐसा कहा। ....नियमसार में। जिसकी पर्याय में भगवान समीप में वर्तता है। आहाहा!

लाख बात की बात (यही) निश्चय उर लाओ।
छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ॥

आहाहा! यह बात न हो और दूसरी बाहर की करोड़ों, अरबों खर्च करे, यह जम्बूद्वीप और ढ़ाई द्वीप रंगे। रंगे क्या कहलाता है? उत्कीर्ण करे। यह लाख बात है, उसके आश्रय से तो राग है, हो भले। परन्तु वह आस्रव है, बन्धरूप है, क्योंकि अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा आत्मा तो '**अबद्धपुट्ठं**'। वह तो राग से बँधा हुआ नहीं, उसमें द्रव्य और राग कहीं आते थे? ऐसा जो वस्तु का स्वरूप, उसके आश्रय से धर्म होता है और पर पदार्थ के आश्रय से राग होता है। दूसरी भाषा से (कहें तो)। मगनभाई! परपदार्थ के आश्रय से अधर्म होता है। नवनीतभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : राग होता है या अधर्म होता है दोनों एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही कहलाते हैं। वह स्पष्ट बात कही। आहाहा! पूरा तत्त्व का स्वरूप ही यह है। उसे किसी दूसरे प्रकार से कहे कि परद्रव्य के आश्रय से होता भाव आत्मा को धर्म का कारण हो, (यह विपरीतता है)। जो संसार का कारण है, वह धर्म का कारण कहाँ से होगा? समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

देखा! संक्षिप्त में डाला है। **आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप....** वैराग्य अर्थात् चारित्र। **भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको**

हितरूप है तथा बाह्यपदार्थों के आश्रय से.... बाह्य में कौन रहा? आत्मा के अतिरिक्त सब बाह्य। आहाहा! स्त्री-कुटुम्ब के आश्रय से, इस धन्धे के आश्रय से भाव हो, वह कैसा होगा? संसार का कारण है। अहितरूप है। आहाहा! जगत की अनुकूलता करने के लिये मिथ्या प्रयास करता है। है अत्यन्त प्रतिकूल भटकने का रास्ता। आहाहा! पोपटभाई! बाह्य पदार्थ को प्रसन्न रखना या बाह्य पदार्थ मुझे प्रसन्नता दे, अनुकूलता (मिले), ऐसी जो सब.... क्या कहलाये व्याकरण?

मुमुक्षु : लालापेठा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लालापेठा। दूसरों के साथ बात करते हुए भी मानो दूसरे मुझसे प्रसन्न हों....

मुमुक्षु : लालोपतो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लालोपतो। लालुपत यह अलग भाषा।

मुमुक्षु : लाला चोपड़ी कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह लाला चोपड़ी तुम्हारे कहते हैं। अपने यहाँ लालापोत कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तू दुनिया को प्रसन्न रखने और दुनिया से प्रसन्न होने जितना भाग, उतना सब बन्ध का कारण है, दुःख का कारण है। और जितना भगवान को प्रसन्न रखने जाये अन्दर में.... आहाहा! उतना आत्मा को सुख का कारण है। श्रीमद् के एक पत्र में शुरुआत में आता है। जगत को प्रसन्न रखने को.... शुरुआत में, नहीं?

मुमुक्षु : लवथव करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लवथव, हों! अधिक। लवथव अर्थात् लववुं और थववुं। अर्थात् दूसरे को महत्ता बतलाना, करना और दूसरे से महत्ता लेना, वह लवथव है। लवथव कहते हैं लोग। समझ में आया? लवथव की व्याख्या ऐसी है कि दूसरे के साथ बात करते हुए उसे महत्ता देना और उससे अपने को महत्ता लेना। आहाहा! पोपटभाई! ऐसा है। आहाहा! श्रीमद् में एक पत्र आता है। दूसरे को प्रसन्न रखने के लिये अनन्त बार प्रयत्न किया। जगत मुझे ठीक रखे और उसे ठीक मैं रखूँ। आहाहा! यह झूठाभाई के प्रति है। झूठाभाई नहीं, अहमदाबाद? २०-२१ (वाँ पत्रांक)।

जगत को भला दिखाने के लिये अनन्त बार प्रयत्न किया, इससे भला हुआ नहीं। क्योंकि परिभ्रमण और परिभ्रमण के हेतु अभी प्रत्यक्ष रहे हैं। आहाहा! **एक भव यदि आत्मा का भला हो, ऐसा व्यतीत किया जायेगा, तो अनन्त भव का बदला मिल जायेगा, ऐसा मैं लघुत्वभाव से समझा हूँ....** एक भव आत्मा का भला हो, वैसा व्यतीत किया जाये। आहाहा! यह तो शुरुआत की बात है। आत्मा का भला हो। वह कब? कि स्वयं आनन्द का नाथ पूर्णानन्दस्वरूप, उसका आश्रय ले तो कल्याण अर्थात् भला हो। राजेन्द्र! आहाहा! समझ में आया?

बाह्यपदार्थों के आश्रय से.... आहाहा! परन्तु उसमें तो कहा है न—धवल में तो कि 'जिनबिम्ब देखकर निद्धत और निकाचित कर्म नाश होते हैं।' लो! यह तो मानो कि ओहोहो! वीतरागमूर्ति शान्त बैठे हैं। ऐसी वीतरागमूर्ति मैं हूँ, जिनबिम्ब मैं हूँ। आहाहा! जिसकी नजरें जिनबिम्ब पर पड़े, वह जिनबिम्ब यह। परन्तु धवल का वह कोटेशन दे। देखो! भगवान के दर्शन से जिनबिम्ब से भी निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है और मोक्ष होता है। आहाहा! भाई! यह जिनबिम्ब वह नहीं। आहाहा! अकषायस्वभाव का स्वरूप वह जिनबिम्ब आत्मा है। उसके आश्रय से हितरूप हो। आहाहा! बाकी तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखने से तुझे राग होगा। भाई! वह संसार का कारण है। आहाहा! यह वीतराग की वाणी देखो! मैं भी तेरी अपेक्षा से बाह्य हूँ। अन्दर में नहीं। आहाहा! ऐसे बाह्य पदार्थों के आश्रय से तुझे राग होगा। आहाहा! हमारे गुरु के आश्रय से, वीतरागी सन्तों के आश्रय से राग होगा। तीर्थंकर कहते हैं, हम छद्मस्थ हों और हमें आहार देने का भाव आवे, आहाहा! तो राग होगा, भाई!

यह (संवत्) १९७७ में चर्चा हुई थी, गोंडल। तुम्हारे रिश्तेदार पोपट जादवजी। उनके पुत्र वेरे उनकी बहन दी है न? रामजीभाई की। पोपट जादवजी। ....सामने। उसके साथ बात हुई थी कि उसमें ऐसा आया है न शास्त्र में कि रेवती के यहाँ आहार लेने गये.... भगवती (सूत्र) में पाठ है। भगवान को रोग हुआ। आहाहा! ....भगवान को राग हुआ। पीड़ा.... पीड़ा.... पीड़ा.... अरे! भगवान को रोग नहीं होता, भाई! भगवान को तो रोग नहीं होता परन्तु उनके शरीर को नहीं होता। समझ में आया? भगवान जिसमें तीर्थंकर का आत्मा (रहे), वे तो जन्म से उन्हें परम औदारिकशरीर

होता है। उनकी डिब्बी ही अलग होती है। केसर बोरियों में नहीं रखी जाती। उसे चाहिए काँच के और पीतल के डिब्बे। उसी प्रकार तीन लोक का नाथ तीर्थंकर जो होनेवाला है अभी तो, हों! वह जन्मे तब से उसका शरीर परम औदारिक होता है। आहाहा! यह कहते हैं कि हमको भी छद्मस्थ के समय आहार देने का तुझे भाव हो, वह शुभभाव है, हों! भाई! आहाहा! नवरंगभाई! ऐसा कौन कहे? वीतरागस्वभावी आत्मा ऐसा कहे। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो हित और अहित की दो बातें हैं। आहाहा! गजब बात!

बाह्यपदार्थों के आश्रय से.... देवजीभाई! यह मन्दिर बनाया तुमने तो क्या है? कहते हैं, उसके आश्रय से भाव शुभ हो। ऐसा कहते हैं। गजब भाई! वह अहितरूप है। आता है, वीतराग पूर्ण हो उसे ऐसा भाव आता है, परन्तु है तो अहितरूप। आहाहा! अपने में से हटकर पर का आश्रय ले, वहाँ तो आँगन में से ही निकल गया वह तो। आहाहा! ऐसी बात मूल समझे बिना चाहे जितने भाषण, व्याख्यान दे, उसमें कहीं मूल चीज़ वीतराग की आयी नहीं। समझ में आया? गले उतरना कठिन पड़े। मार्ग तो ऐसा है, भाई! **बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो रागादि....** पुण्य भाव आदि हो, वह **आस्रव-बन्धरूप हैं और संसार के कारण हैं....** आहाहा! भाई! भगवान का मार्ग अनेकान्त है। अनेकान्त की व्याख्या क्या? कि भगवान की पूजा से, दान से भी धर्म होता है और आत्मा के आश्रय से धर्म होता है। (ऐसा) अनेकान्त मार्ग है? अरे! आत्मा के आश्रय से होता है और पर के आश्रय से धर्म नहीं होता, यह अनेकान्त है। समझ में आया? यह तो भाई! मूल मार्ग है, बापू! आहाहा! चैतन्य हीरा महाप्रभु, उसका आश्रय छोड़कर बाहर में जाता है। आहाहा! उस वृत्ति को व्यभिचारी कहा है। निर्जरा अधिकार। २०३ गाथा। नहीं? आहाहा! भारी बात, भाई! व्यभिचारी। आहाहा! वह संयोगी भाव है, स्वाभाविक भाव नहीं।

इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे जानकर,.... इस प्रकार। समझ में आया? **इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को....** हित और अहित ऐसे तत्त्व। ऐसा कहा न? स्व के आश्रय से हितरूप भाव, पर के आश्रय से अहितरूप भाव। इस प्रकार तत्त्वों को

जानकर। आहाहा! यह पानी का छनना तो कहीं रह गया, नहीं? नवनीतभाई! (संवत्) २००५ का वर्ष हो गया न! यह तो २६ वर्ष हो गये। ...गये। आहाहा!

इस प्रकार जीवादि.... स्व के आश्रय से होनेवाली निर्जरा, पर के आश्रय से होनेवाले आस्रव और बन्ध, वे **जैसे हैं, वैसे जानकर,....** अन्दर ज्ञान करके। **उनकी सच्ची प्रतीति करके,....** अर्थात् जानकर प्रतीति ली है। १७-१८ में ऐसा है न? (समयसार) १७-१८ गाथा में। पहले ज्ञान करे। यह यह है, ऐसा जाने बिना प्रतीति किसकी? आहाहा! **जीवादि तत्त्वों को....** आ गया न सब? जीवतत्त्व का आश्रय करके होनेवाला संवर, निर्जरा, मोक्ष। बाह्य पदार्थ-अजीव या जीव दूसरे चाहे जो। उसके आश्रय से होनेवाला आस्रव और बन्ध, वह संसार का कारण है। आहाहा!

सच्ची प्रतीति करके, जो अपने ज्ञानानन्दस्वरूप.... यह अन्तरात्मा की व्याख्या चलती है, धर्मी ऐसा होता है। आहाहा! **अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा में...** ऐसा कहकर यह कहा कि आत्मा अर्थात् क्या? कि ज्ञानानन्दस्वरूप। आहाहा! ज्ञान अर्थात् समझण और आनन्द अतीन्द्रिय। यह ज्ञानानन्दस्वरूप **आत्मा में ही अन्तर्मुख होकर वर्तता है, वह 'अन्तरात्मा' है।** समझ में आया? यह तो सादी भाषा है। यह कहीं बहुत ऐसी नहीं है। आहाहा!

अन्तरात्मा के तीन भेद हैं— अब इसके वापस तीन भेद किये। धर्मात्मा के। **उत्तम अन्तरात्मा, मध्यम अन्तरात्मा, और जघन्य अन्तरात्मा।** स्व का आश्रय लेकर प्रगट हुई धर्मदशा अभी पूर्ण हुआ नहीं। ऐसे अन्तरात्मा के तीन प्रकार। उत्तम, मध्यम और जघन्य। **अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहों से रहित,...** अन्तिम बारहवें गुणस्थान की बात है। उत्तम है न? **अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहों से रहित,...** बाह्य का संयोग वस्त्रादि नहीं, अन्दर का संयोग रागादि नहीं। **शुद्धोपयोगी आत्मध्यानी....** शुद्ध उपयोगी वीतरागी परिणतिवाला **आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि, 'उत्तम अन्तरात्मा' हैं। ये महात्मा,....** उत्कृष्ट लेना है न? **सोलह कषायों के अभाव द्वारा क्षीणमोह पदवी (बारहवाँ गुणस्थान) प्राप्त कर स्थित हैं।** आहाहा! बारहवें गुणस्थान में उत्कृष्ट अन्तरात्मा लिये। अभी अन्तरात्मा है न वह? बारहवाँ—वीतरागदशा। उत्तम अन्तरात्मा।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती, व्रतरहित सम्यग्दृष्टि आत्मा.... सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला। व्रतरहित **सम्यग्दृष्टि, आत्मा 'जघन्य अन्तरात्मा' कहलाते है।** निचली श्रेणी का अन्तरात्मा कहलाता है। क्योंकि आत्मा का आश्रय लिया है, परन्तु अभी कषाय बाकी है। और यहाँ आश्रय लिया और पूर्ण कषायरहित हो गया—उत्कृष्ट उत्तम आत्मा.... आहाहा! **इन दोनों (उत्तम और जघन्य) के मध्य स्थित सर्व....** पाँचवें गुणस्थानवाले मध्यम अन्तरात्मा से वह ग्यारहवें गुणस्थानवाले (तक)। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से जघन्य अन्तरात्मा कहलाते हैं। **इन दोनों के मध्य स्थित सर्व 'मध्यम अन्तरात्मा' हैं,....** आहाहा! **अर्थात् पञ्चम से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती....** गुणस्थानवर्ती—गुणस्थान में वर्तनेवाले। आहाहा! जिसे आत्मा का आनन्द चौथे गुणस्थानवाले सर्वार्थसिद्धि के देव को अविरत सम्यग्दृष्टि हो गया और जिसे पाँचवाँ गुणस्थान अन्तर में प्रगट हुआ है। आहाहा! उसे आनन्द की धारा विशेष हो गयी है। शान्ति चौथे से सर्वार्थसिद्धि के एकावतारी देव, वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले, उनकी अपेक्षा भी जिसे अन्तर में आनन्द की मौज....आहाहा! अकषायभाव, दूसरे नम्बर का कषायभाव टलकर जिसे ऐसी शान्ति.... शान्ति.... शान्ति.... उपशमरस जिसे बढ़ गया है, चौथे की अपेक्षा, उसे मध्यम अन्तरात्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

परमात्मा... किसे कहते हैं अब? मुनि भी छठवें गुणस्थान में मध्यम अन्तरात्मा आये। सच्चे मुनि। आहाहा! जिन्होंने आत्मा का अवलम्बन लेकर दो कषाय का नाश किया है, वे मध्यम पंचम गुणस्थानवाले। जिन्होंने भगवान आत्मा का आश्रय लेकर, परम शुद्धोपयोगी होकर.... आहाहा! यह आता है प्रवचनसार में। पहली पाँच गाथाओं में। परम शुद्धोपयोगी। आहाहा! यह आचार्य, उपाध्याय और साधु। आहाहा! उसे मध्यम अन्तरात्मा कहते हैं। अरे! सातवें गुणस्थान से बारहवें अप्रमत्तदशा में रहे हुए। जिसका द्रव्यस्वभाव देखने से जो पर्याय का जिसमें निषेध होता है। पहले से छठे तक, सातवें तक.... पहले से छठे तक प्रमत्त, सातवें से चौदहवें तक अप्रमत्त।

'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो' जिसे अप्रमत्त और प्रमत्त दशा नहीं है, ऐसा

भगवान ज्ञायकस्वभाव, जिसमें केवलज्ञान की पर्याय नहीं। आहाहा! वस्तु जो दृष्टि-सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन जो धर्म की शुरुआत जघन्य अन्तरात्मा, उसका विषय जो है, वह तो वस्तु है। उस वस्तु में अप्रमत्त या प्रमत्त दशा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सच्ची प्रमत्त-अप्रमत्तदशा, हों! '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' ज्ञायकभाव, हों! भाव लिया है न? यह भाववान का भाव लिया है। ज्ञायकभाव, त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव। जो सम्यग्दर्शन का आश्रय है, विषय है, ध्येय है। वह चीज़ जो है, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा में प्रमत्त-अप्रमत्तदशायें नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? ओहो! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! लोग ऐसा कहते हैं कि तुम किसी को मानते नहीं। अरे... बापू! पंच परमेष्ठी को नहीं मानते? और तुमको शंका किसलिए पड़ती है? पंच परमेष्ठी को माने उसमें हो तो तुम उसमें आ जाते हो और न हो तो बाहर रह जाते हैं।

मुमुक्षु : उसमें हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे तो है कहलाये न? आहाहा! बापू! तिरस्कार के लिये नहीं। भाई! यह वस्तु का स्वरूप है। इस वस्तु के स्वरूप का यदि तुम मानते हो, ऐसा स्वरूप न हो तो वह मान्यता करना, वह स्वयं के लिये है, वह कहीं पर के लिये नहीं। आहाहा! जो सत्य के पक्ष में आकर बात हो, वह बात इसकी है। समझ में आया? सत्य के पक्ष में आया नहीं और मान बैठा है कि हम साधु हैं, श्रावक हैं। मानो बापू! लाभ नहीं होगा, भाई! यह भव के बोझ नहीं टलेंगे। समझ में आया? भव का बोझा। आहाहा! निगोद में एक अन्तर्मुहूर्त में एक श्वास में अठारह भव। गजब बात है न! आहाहा! निगोद के जीव एक श्वास में अठारह भव करे। आहाहा! ऐसा कहकर यह कहते हैं.....

यह महिलायें होती हैं न? बहुत प्रकार की साड़ियाँ रखे। क्या कहलाता है वह? क्या कहलाता है तुम्हारा वह? ट्रंक-ट्रंक। भूल जाते हैं। अलग-अलग प्रकार के वस्त्र पहने। देखा है? दिशा को जाये तब अलग, कहीं चार बजे रोने जाये तो अलग। ऐसा है न? गाँव में जाना हो तो अलग। कितनी प्रकार के रखती हैं बक्से में। नम्बर....

नम्बर.... नम्बर.... नम्बर.... नम्बर.... इसी प्रकार यह राजा बड़े कितने प्रकार के जूते रखते हैं। माधवसिंहजी को ३५ जोड़े निकले थे, मर गये तब। दूसरा कहना है हमारे। कि जिसमें जिसकी प्रीति है, वह बदलाया ही करता है। यह करूँ.... यह करूँ.... यह करूँ.... यह करूँ....

इसी प्रकार निगोद के जीव को भव का प्रेम है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में बदला करता है। समझ में आया? आदमी को ऐसे थोड़े बदले। आदमी ऐसे होते हैं। सवेरे के कपड़े अलग, शाम के अलग, सोने के अलग। राजा हो उसे सोने के अलग होते हैं, बाहर के अलग होते हैं। यह सब प्रकार होते हैं। उन्हें—महिलाओं को ऐसा होता है। बेल बूंटेदार से यहाँ जाया जाये, अमुक हो तो ऐसे जाया जाये, उसमें तो सादा हो। भिन्न-भिन्न.... आहाहा! इसका अर्थ यह है कि उसे उसके ऊपर प्रेम है। और प्रेम है, इसलिए उसे बदला-बदलाकर अच्छा कैसे दिखाई दूँ? आहाहा! इसी प्रकार भवभ्रमण में एक श्वास में अठारह भव (करता है)। आहाहा! बापू! बात नहीं। उसे भव का प्रेम है अव्यक्तरूप से। उसे ऐसा नहीं कि मैं भव बदलाता हूँ। परन्तु भव के भाव का मिथ्यात्व का प्रेम है न? उस मिथ्यात्व में अनन्त भव करने की ताकत है। एक श्वासोश्वास, हों! उसमें अठारह भव। क्या यह बात है! आहाहा! सर्वज्ञ भगवान परमात्मा ने देखा और कहा है यह।

कहते हैं कि इन सब भवों की ताकत मिथ्यात्व में है। जिसे मिथ्यात्व का रस है, वह भव किया ही करेगा। और जिसने वह रस तोड़ा है.... आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसा जो भगवान, भव और भव का भाव नहीं ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेगा, उसे भव नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब.... ऐसा किया, उसको समझाया, हमने ऐसा कराया, हमने लाखों खर्च कराये, ऐसे २६-२६ लाख के बँगले (मन्दिर) बनाये। इसलिए उसमें से कुछ धर्म होगा, इस बात में जरा भी दम नहीं है। ऐई! समझ में आया? हमने पाठशालायें बहुत निकाली। क्या कहलाता है? शिक्षण शिविर किये। ऐई! यह सब विकल्प है। वह विकल्प तो आस्रव है, अहित का कारण है। यह तो बात, बापू! आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है, भाई!

कहते हैं कि यह अन्तरात्मा पाँचवें से वह ग्यारहवें तक। आहाहा! मुनि को तो शुद्धोपयोगी ही कहा है। ऊपर शुद्धोपयोगी जो कहा, वह सोलह कषाय के अभाववाले को। उत्कृष्ट आत्मा लेना है न अन्तरात्मा। इसलिए। बाकी मुनि को प्रवचनसार की पाँच गाथा में परमशुद्धोपयोगी (कहा है)। आहाहा! यह पंच महाव्रत का पालनेवाला और नग्न, ऐसा शब्द नहीं लिया। वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! नग्नपना तो तिर्यंच को भी है। ऐसा आता है न? अष्टपाहुड़ में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है। तिर्यंचपना है उसे। भावपाहुड़ में बहुत आया है। भाई गये? प्रवीणभाई गये। नहीं? प्रवीणभाई बहुत प्रसन्न थे। भावपाहुड़ ले गये हैं वहाँ? आहाहा! उसमें जिनभावना बहुत आयी थी। आयी थी न भाई? जिनभावना बिना अर्थात् कि वस्तु वीतरागस्वरूप है, उसकी भावना बिना। आहाहा! भाई! भाव जिनस्वरूप की भावना बिना अनन्त बार द्रव्यलिंग लिये और पंच महाव्रत पालन किये। परन्तु वह तो सब बाह्य पदार्थ के आश्रय का भाव है। आहाहा! अरे! यह अन्तर कब समझे? यह दीक्षा लेते हैं ऊपराऊपर। बापू! दीक्षा किसे कहना भाई! तुझे खबर नहीं। अभी तो मिथ्यात्व में कितने उल्टे पड़े हैं, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि पंचम गुणस्थान से छठवें में आये। अन्तरात्मा है, मध्यम अन्तरात्मा है। आहाहा! अन्तर स्वरूप है, उसे यहाँ पकड़ा है। पूर्णानन्द के नाथ को जिसने दृष्टि में लिया है। जिसने वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूर्णानन्दस्वरूप को ज्ञेय बनाया है। आहाहा! और जो पूर्णानन्द के स्वरूप में शुद्धोपयोगी रमते हैं, उसे मध्यम अन्तरात्मा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा उसका स्वरूप ही है, अब उसमें करना क्या? और यह तो ऐसा कहे, नहीं। हम तो मानो। बापू! तुमको मानेंगे? बापू! तुमको मानेंगे तो तुम कौन हो और कहाँ हो, यह तुम्हें खबर नहीं? आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक को अन्तरात्मा कहा है।

अब परमात्मा। **जिन्होंने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का....** गजब भाषा की है। अनन्त ज्ञान दर्शनरूपी जो शक्तियाँ हैं, गुण हैं, स्वभाव भगवान आत्मा का वह स्वभाव है। आहाहा! उसका **पूर्णरूपेण विकास करके....** पूर्णरूप से विकास

करके। ज्ञानावरणीय का नाश किया, ऐसा न लेकर, इन शक्तियों का पूर्ण विकास करके। अस्ति से लिया है न। कहीं-कहीं नास्ति आवे भले, परन्तु वह कोई ज्ञानावरणीय का नाश होने से विकास होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आवे व्यवहार के ग्रन्थ में। व्यवहार के कथन बहुत होते हैं। इसलिए कहा न कि व्यवहारनय एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य की बात करेगा। एक भाव में दूसरे भाव को मिलायेगा। कारण कोई और कार्य कोई, ऐसा कहेगा। ऐसी मान्यता करेगा तो मिथ्यात्व है। आहाहा! तब व्यवहारनय भगवान ने नहीं कहा? परन्तु व्यवहारनय है इतना। परन्तु व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा वहाँ कहाँ आया? व्यवहारनय है, इतना इसे जानना चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो व्यवहारनय का विषय संसार नहीं? बन्ध नहीं? आस्रव नहीं? वस्तु है। इसलिए क्या है? अरे! उसकी निर्मल पर्याय भी व्यवहारनय का विषय है। वस्तु है, वह निश्चयनय का विषय है। आहाहा! आनन्द और शान्ति प्रगट हुई चौथे, पाँचवें, छठवें में, वह भी व्यवहार है। वह आत्मव्यवहार है। और रागादि दया, दान को अपने मानकर रहना, वह मनुष्य का सांसारिक व्यवहार है। मनुष्य व्यवहार कहा है। प्रवचनसार, गाथा ९४। आहाहा! भगवान भूलानी खडकी। हमारे है न आत्माराम की? इनके बाप-दादा.... भगवान भूला। इसी प्रकार यह भगवान भूला है। उसके रास्ते चढ़ गया। राग की और पर्याय के आश्रय की और उसकी.... उसकी.... उसकी.... आहाहा!

मुमुक्षु : .... आत्माराम हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्माराम भगवान भूला में रहता है न! यह तो परिवाररूप से है। आहाहा!

आतमराम.... वह राग की क्रिया और यह क्रिया.... यह क्रिया.... यह क्रिया.... वह मैं करता हूँ और वह मुझे लाभदायक है, यह भगवान भूलानी खडकिये। भूल की खडकिये चढ़ गया है। समझ में आया?

परमात्मा तो उसे कहते हैं कि पूर्णरूप से विकास कर सर्वज्ञ (पद) प्राप्त किया

है। आहाहा! है न? सर्वज्ञ पद। **वे 'परमात्मा' हैं। परमात्मा के दो प्रकार हैं**—उस अन्तरात्मा के तीन प्रकार थे। **सकल परमात्मा...** सकल-कल अर्थात् शरीर, शरीरसहित परमात्मा अरिहन्त परमात्मा। **निकल परमात्मा।** शरीररहित परमात्मा सिद्ध परमात्मा। **अरहन्तपरमात्मा, सकलपरमात्मा हैं और सिद्धपरमात्मा, निकलपरमात्मा हैं, वे केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से सहित हैं।** दोनों भी केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द जिसकी दशा में पूर्ण पवित्रता प्रगट हो गयी है, उसे परमात्मा कहा जाता है। कोई जगत का कर्ता है, जगत को तारने के लिये अवतार ले और वह परमात्मा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अरहन्त परमात्मा के चार अघातियाकर्म शेष हैं, उनका प्रतिक्षण क्षय होता जाता है। क्षय होता जाता है, हों! करे तो नहीं। **उनके बाहर में समवसरणादि दिव्यवैभव होता है;....** तीर्थंकर की.... बात है। **समवसरणादि दिव्यवैभव होता है; उनके बिना इच्छा के ही भव्यजीवों के कल्याणरूप दिव्यध्वनि छूटती है;....** इच्छा बिना ॐ ध्वनि भव्य जीवों के कल्याणरूप (खिरती है)। भाषा तो ऐसी कही जाये न! कोई कहे कि वाणी का आश्रय ले तो विकल्प होता है। यह बताकर यह बताते हैं अन्दर यह कि हमारा भी लक्ष्य छोड़कर तेरा लक्ष्य कर तो तेरा कल्याण होगा। ऐसी वाणी सुनने की। समझ में आया? यह बात बैठना वास्तव में.....

मुमुक्षु : यह तो जो बैठाना चाहे उसे बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर बैठे। यह तो वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ। आहाहा! वस्तु स्वयं ही पुकार करती है। उसमें पर के कहनेवाले चाहे जैसे हों, उसके साथ क्या सम्बन्ध है?

उनके बिना इच्छा के ही भव्यजीवों के कल्याणरूप दिव्यध्वनि.... देखा! **वे परम हितोपदेशक हैं;....** हित का उपदेश करनेवाले हैं। लो, वे केवली वापस हित का उपदेश करनेवाले हैं। निमित्तरूप से वाणी है न, इसलिए हित का उपदेश करनेवाले कहलाते हैं। आहाहा! वह भी परम हितोपदेशक। आत्मा का कल्याण कैसे हो? मोक्ष कैसे हो? ऐसे परम हित के उपदेशक हैं। आहाहा! संसारदशा का व्यय, मोक्षदशा का

उत्पाद (हो), ऐसा भगवान का उपदेश है।

परमौदारिकशरीर के संयोगसहित होने से,... परम औदारिकशरीर होता है, केवली को। तीर्थंकर को तो जन्म से होता है। परन्तु यह तो केवली की बात है न? आहाहा! **परमौदारिकशरीर के संयोगसहित होने से, वे सकल (कल अर्थात् शरीरसहित) परमात्मा कहलाते हैं।** आहाहा! भले शरीर हो, परन्तु है परमात्मा। भावमोक्ष है। उसे अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। ऐसे परम औदारिकशरीर (होता है), उन्हें रोग कहना.... अभी कुछ पढ़ा था कल। बहुत पीड़ा। ऐसा कि भगवान को बहुत पीड़ा हुई। सिंह अणगार को बुलाया, जाओ। लेने जाओ। ऐसा आता है भगवती में।

मुमुक्षु : परन्तु वीतराग को पीड़ा हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर में पीड़ा हो न। शरीर है न उन्हें? ग्यारह परीषह है न? शास्त्र में नहीं लिया? ग्यारह परीषह केवलज्ञानी को है। वह तो उपचार से कथन है। कर्म पड़े हैं चार अघाति इसलिए। आहाहा! अभी अरिहन्त की भी खबर नहीं होती और जिस शास्त्र में अरिहन्त के केवलज्ञान के समय रोग हो, पीड़ा हो, वे दवा लावे और दे, वह शास्त्र नहीं है, भाई! आहाहा! कठिन बहुत। समझ में आया? जयन्तीभाई! सुना है या नहीं सब? नहीं सुना तुमने? खूनी दस्त फिर भगवान को खूनी दस्त। उनके भक्तों को-इन्द्रों को (भी) न हो। उनके देव को हो! आहाहा! यह तो कोई बात! उन्हें खबर नहीं। नहीं तत्त्व की, आत्मा की खबर, नहीं उसे पुण्य-पाप की। नौ तत्त्व की भूल है। आहाहा! समझ में आया? यह आया था, दो दिन पहले। .... भगवान को ऐसा हुआ... ऐसा हुआ। समाचारपत्र है न स्थानकवासी का? जैन प्रकाश में-उसमें है। भगवान को पीड़ा हुई, भगवान को ऐसा हुआ। अरे! भाई! यह क्या किया तूने? यह शास्त्र की रचना, वह सन्तों की रचना नहीं है। भाई! वह आत्मज्ञानी की रचना नहीं है। आहाहा! इससे किसी का तिरस्कार करना है, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसे दूसरे प्रकार से मानने से मान्यता विपरीत हो जाती है। आहाहा! कहते हैं, उन्हें तो परम औदारिकशरीर (होता है)।

जो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित हैं,

शुद्धज्ञानमय हैं,.... यह सिद्ध की बात है। यह सिद्ध की। **औदारिकशरीर (कल) रहित हैं, वे निर्दोष और परमपूज्य सिद्धपरमेष्ठी 'निकलपरमात्मा' कहलाते हैं, वे अनन्त काल तक अनन्त सुख को भोगते हैं।** ऐसे सिद्ध को सिद्ध कहा जाता है। जिन्होंने अनन्त आनन्द प्रगट करके अनन्त-आनन्द सादि-अनन्त अनुभव करेंगे, अनुभव करते हैं। आहाहा! **आत्मा में परमानन्द की शक्ति भरी पड़ी है;....** वह आत्मधर्म में से डाला है। है न नीचे? आत्मधर्म में आया है न, उसमें से। क्या कहलाता है वह बहुत हस्त....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह नहीं। यह तो ....सिद्ध हैं। मात्र सिद्ध।

मुमुक्षु : सिद्ध हस्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध हस्त। हाँ, हाँ, यह सिद्ध हस्त। भाई ने एक पुस्तक बनायी है न नहीं यह? डॉक्टर.... उसमें लिखा है, हरिभाई ने दिया है। सिद्ध हस्त है यह। आत्मधर्म लिखने में लिखा है। एक शब्द आया था आज। ....वहाँ आया है न? वह नहीं? वहाँ का कोई है। अहिंसा परमो धर्म। है यहाँ की रुचिवाला। यहाँ की बात अधिक प्रकाशित करता है। हरिभाई का लेखन पत्र बड़ा है। उसमें क्या हुआ? सत्य बात रुचती हो तो उसे अच्छा लगे तो उसमें क्या है?

आत्मा में परमानन्द की शक्ति भरी पड़ी है;.... आहाहा! तू ऐसे झपट्टे मारता है बाहर में आनन्द के लिये अर्थात् कि मजा के लिये अर्थात् कि सुखी होने के लिये। मूर्खता है। क्योंकि परमानन्द की शक्ति से भरपूर परमात्मा स्वयं आत्मा इतना है। आहाहा! **आत्मा में परमानन्द की शक्ति...** अर्थात् गुण, हों! **भरी पड़ी है;....** जैसे शीशी दूध भरा हो, ऐसा न? यह दृष्टान्त आता है। ऐसा नहीं। ऐसा कहाँ है? जैसे दूध में मिठास पड़ी है, ऐसे। दूध शीशी में, बर्तन में पड़ा है, ऐसे नहीं। वैसे गुण कोई चीज़ है, उसमें पड़े हैं, ऐसा नहीं। वह परमानन्दरूपी शक्ति भगवान द्रव्य में पड़ी है। आहाहा! वह शक्ति भरी पड़ी है। आहाहा!

बाह्य इन्द्रिय विषयों में वास्तविक सुख नहीं है। इन्द्रिय के विषय शब्द-रूप-

रस-गन्ध-स्पर्श उसमें जरा भी मजा नहीं। वह तो जहर के प्याले दु:ख का पिया है इसने। समझ में आया? **ऐसी अन्तर्प्रतीति करके, धर्मी जीव, अन्तर्मुख होकर....** अन्तर्मुख होकर **आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का स्वाद लेता है।** आहाहा! **आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है।** आहाहा! उसे अन्तरात्मा और धर्मी कहते हैं। समझ में आया?

अब यह दृष्टान्त अपने बहुत बार देते हैं न? यह इन्होंने डाला है। **जैसे - छोटी पीपर के दाने-दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट की सामर्थ्य भरी है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरा हुआ है किन्तु उसका विश्वास करके....** आहाहा! वह पूर्ण ज्ञान और आनन्द से अस्तित्व है, उसका विश्वास करके प्रतीति में लेकर, ज्ञान में ज्ञेय बनाकर, फिर प्रतीति में लेकर अर्थात् विश्वास। ऐसे। **अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्र हो...** आहाहा! **तो उस ज्ञान-आनन्द का स्वाद अनुभव में आये। आत्मा से भिन्न बाह्यविषयों में कहीं आत्मा का आनन्द नहीं है।** आहाहा! **धर्मात्मा, निज आत्मा के अतिरिक्त बाहर में कहीं-स्वप्न में भी आनन्द नहीं मानता।** आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक - ६

तद्वाचिकां नाममालां दर्शयन्नाह -

निर्मल: केवल: शुद्धो विविक्त: प्रभुरव्यय:।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिन:॥ ६॥

निर्मल: कर्ममलरहित:। केवल: शरीरादीनां सम्बन्धरहित:। शुद्ध: द्रव्यभाव-कर्मणामभावात् परमविशुद्धिसमन्वित:। विविक्त: शरीरकर्मादिभिरसंस्पृष्ट:। प्रभुरिन्द्रादिनां स्वामी। अव्ययो लब्धानंतचतुष्टयस्वरूपादप्रच्युत:। परमेष्ठी-परमे इन्द्रादिवंद्ये पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी, स्थानशील:। परात्मा संसारिजीवेभ्य: उत्कृष्ट आत्मा। इति शब्द: प्रकारार्थे एवं प्रकारा ये शब्दास्ते परमात्मनो वाचका: परमात्मेत्यादिना तानेव दर्शयति। परमात्मा सकल प्राणिभ्य: उत्तम आत्मा। ईश्वर: इन्द्राद्यसम्भविना अन्तरङ्ग-बहिरङ्गेण परमैश्वर्येण सदैव सम्पन्न: जिन: सकल-कर्मोन्मेलक:॥ ६॥

परमात्मा की नामवाचक नामावली दर्शाते हुए कहते हैं —

शुद्ध, स्पर्श-मल बिन प्रभू, अव्यय अज परमात्म।
ईश्वर निज उत्कृष्ट वह, परमेष्ठी परमात्म॥ ६॥

अन्वयार्थ - (निर्मल:) निर्मल—मलरहित, (केवल) केवल—शरीरादि परद्रव्यों के सम्बन्ध से रहित, (शुद्ध:) शुद्ध—रागादि से अत्यन्त भिन्न हो गये होने से परमविशुद्धिवाले, (विविक्त) विविक्त—शरीर और कर्मादि के स्पर्श से रहित, (प्रभु:) प्रभु—इन्द्रादि के स्वामी, (अव्यय) अव्यय—अपने अनन्त चतुष्टयरूप स्वभाव से कभी च्युत नहीं होनेवाले, (परमेष्ठी) परमेष्ठी—इन्द्रादि से वन्द्य परमपद में स्थित, (परात्मा) परात्मा—संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा, (ईश्वर) ईश्वर—अन्य जीवों में असम्भव, ऐसी विभूति के धारक अर्थात् अन्तरङ्ग अनन्त चतुष्टय और बाह्य समवसरणादि विभूतियों से युक्त, (जिन:) जिन—ज्ञानावरणादि सम्पूर्ण कर्मशत्रुओं को जीतनेवाले, (इति परमात्मा) ये परमात्मा के नाम हैं।

टीका - निर्मल अर्थात् कर्ममलरहित; केवल अर्थात् शरीरादि के सम्बन्धरहित; शुद्ध अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म के अभाव के कारण से परमविशुद्धियुक्त; विविक्त

अर्थात् शरीर-कर्मादि से नहीं स्पर्शित; प्रभु अर्थात् इन्द्रादि के स्वामी; अव्यय अर्थात् प्राप्त अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप से च्युत (भ्रष्ट) नहीं होनेवाले; परमेष्ठी अर्थात् परम / इन्द्रादि से वन्द्य—ऐसा बड़ा पद, उसमें जो रहते हैं, उस स्थानशील परमेष्ठी; परात्मा अर्थात् संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा—इस प्रकार के जो शब्द हैं, वे परमात्मा के वाचक हैं।

'परमात्मा' इत्यादि से उन्हें ही दर्शाया है। परमात्मा अर्थात् सर्व प्राणियों में उत्तम आत्मा; ईश्वर अर्थात् इन्द्रादि को असम्भवित—ऐसे अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परम ऐश्वर्य से सदा सम्पन्न; जिन अर्थात् सर्व कर्मों का मूल में से नाश करनेवाले (इत्यादि परमात्मा के अनन्त नाम हैं)।

भावार्थ - निर्मल, केवल, शुद्ध, विविक्त, प्रभु, अव्यय, परमेष्ठी, परात्मा, ईश्वर, जिन इत्यादि नाम परमात्मा के वाचक हैं।

ये नाम, परमात्मा के स्वरूप को बतलाते हैं। उस स्वरूप को पहिचानकर, अपने आत्मा को भी वैसे स्वरूप से चिन्तवन करना, यह परमात्मा होने का उपाय है। जीव को अपने आत्मा में शक्तिरूप से स्थित गुणों का भान हो; इसलिए भिन्न-भिन्न नामों से परमात्मा की पहचान करायी गयी है।

आत्मा, चैतन्यादि अनन्त गुणों का पिण्ड है। ये गुण, भगवान को पूर्णरूप से विकसित हो गये हैं; इस कारण इन गुणों की अपेक्षा से वे अनेक नामों से पहिचाने जाते हैं।

परमात्मा को गुण अपेक्षा से जितने नाम लागू पड़ते हैं, वे सब नाम इस आत्मा को भी स्वभाव अपेक्षा से लागू पड़ते हैं क्योंकि दोनों आत्माएँ, शक्ति अपेक्षा से समान हैं; उनमें कोई भेद (अन्तर) नहीं हैं। जो परमात्मा के गुणों को यथार्थरूप से पहिचानता है, वह अपने आत्मा के स्वरूप को जाने बिना नहीं रहता।[१] जितने गुण परमात्मा में हैं, उतने ही गुण प्रत्येक आत्मा में हैं। निज त्रिकाली आत्मा के सन्मुख होकर, उनका परिपूर्ण विकास करके, यह आत्मा भी परमात्मा हो सकता है॥६॥

---

१. १. श्री प्रवचनसार, गाथा-८०

मगसिर शुक्ल ९, सोमवार, दिनांक २३-१२-१९७४, श्लोक-६, प्रवचन-१३

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः॥ ६॥

टीका - निर्मल अर्थात् कर्ममलरहित;.... ऐसा ही यह आत्मा निर्मल अर्थात् कर्मरहित है। भगवान ने प्रगट किया है। यह आत्मा वस्तुरूप से ऐसा ही है। आहाहा! समझ में आया? 'जो जाने अरिहन्त को....' आता है न? जो जाने परमात्मा को। अरिहन्त को जाने कहो या परमात्मा को (जाने कहो)। '**सो जाणदि अप्पाणं**' आत्मा ऐसा है, ऐसा अन्दर में निर्णय करे, अनुभव करे। आहाहा! ऐसा आत्मा, आत्मा करे या आत्मा है, ऐसी श्रद्धा करे, परन्तु आत्मा है कैसा? समझ में आया? वह निर्मल है। भगवान परमात्मा को पर्याय में निर्मलता हो गयी है। परन्तु वह निर्मलता आयी कहाँ से? अन्तर में से। वस्तु का स्वरूप तो निर्मल है, कर्म का सम्बन्ध द्रव्य ज्ञायकस्वभाव के साथ निमित्तरूप से (भी नहीं है)।

केवल अर्थात् शरीरादि के सम्बन्धरहित;.... परमात्मा को शरीर का सम्बन्ध नहीं है, इसी प्रकार आत्मा को शरीर के सम्बन्धरहित ही उसका स्वरूप है। शरीरादि की तो उसमें नास्ति है। इसलिए कि उसे—वस्तु को शरीर का सम्बन्ध है, ऐसा तो है नहीं। आहाहा! वस्तु को निरोग रखना, दवा का सीखना। .... ऐसी बातें!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन? खबर है न। पूज्यपादस्वामी.... परन्तु वह तो ऐसा कोई विकल्प आ गया, और कोई ऐसा वैद्यों की उग्रता दवा की बाहर में प्रसिद्ध बहुत हो और उसकी प्रसिद्धि में ऐसा जाननेवाला हो कोई मुनि को सहज ज्ञात हो गया हो, तो उसे बतलावे, वह कोई विशेष नहीं है। बड़े होते हैं न यह वैद्य? पूज्यपादस्वामी... परन्तु यह तो उस जाति का विकल्प और.... द्रव्य में ऐसा दिखाई दे कि यह तो इसके वैद्य की स्थिति से प्रसिद्धि निरोगता करानेवाले यह हैं। ऐसी प्रसिद्धि हुई हो, उसे स्वयं निरोगता होने की दशा बतावे और रोग का उपाय भी अन्दर आ जाये। आहाहा! यह पूज्यपादस्वामी

ने बनाया है। वैद्य शास्त्र बनाया है। परन्तु वह तो प्रपंच ऐसा था इसलिए। ऐसा न जाने और.... लागू कर दे सब जगह। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शरीरादि के सम्बन्धरहित ही आत्मा है। परमात्मा शरीर के सम्बन्ध रहित तो है परन्तु भगवान आत्मा; शरीर तैजस, कार्मण और औदारिक, वैक्रियिक और आहारक वह और भाषा तथा मन के सम्बन्धरहित वस्तु है। समझ में आया? ऐसा कहा है न कि आत्मा अबद्धस्पृष्ट है। इसका अर्थ हुआ अबद्धस्पृष्ट अर्थात् पर के सम्बन्धरहित है। बन्धरहित है अर्थात् सम्बन्धरहित है। आहाहा! चौदहवीं गाथा का आया था न। यह जो जाने, उसने जैनशासन जाना। आहाहा!

भगवान आत्मा राग और कर्म के बन्धरहित है, अबद्धस्पृष्ट है, ऐसा जिसने शुद्धोपयोग में जाना, वह शुद्ध उपयोग, वह जैनशासन है। समझ में आया? बीच में शुभभाव आवे, वह जैनशासन नहीं। वह व्यवहार जैनशासन अर्थात् उपचार है। आहाहा! इसे कठिन बात पड़े, बापू! यह तो जन्म-मरण के रहित की बातें हैं न। यह जन्म-मरणरहित है। वस्तु तो जन्म-मरण रहित है। वस्तु जन्मे और वस्तु मरे, ऐसा है उसमें? उत्पन्न होना और मरना अर्थात् व्यय होना। आहाहा! ऐसा शरीर और मन, वाणी और कर्म के सम्बन्धरहित परमात्मा है तो वह आत्मा ही ऐसा है। अभी। समझ में आया? ऐसी शक्ति अन्दर त्रिकाल धराता है। उन शक्तियों का वर्णन है। आहाहा! दुनिया के साथ वाद-विवाद से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं। लोगों को व्यवहार की बातें अच्छी लगती हैं। और सत्य है निश्चय की, वह उन्हें पकड़ में आती नहीं; इसलिए सूक्ष्म है.... सूक्ष्म है, ऐसा कहकर निकाल डालते हैं।

शरीरादि.... वाणी, मन... रहित है। **सम्बन्धरहित,....** है। अर्थात् कि बन्धरहित है, अर्थात् कि मुक्तस्वरूप है। आहाहा! **'जो पस्सदि अप्पाणं'** अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष और विकाररहित, ऐसा जो भगवान आत्मा उसे जो अन्दर में ज्ञान और श्रद्धा से देखे, माने, उसे यहाँ जैनशासन कहा है। आहाहा! जैनशासन तो यह है। यहाँ जैनशासन पर्याय की बात है, हों! द्रव्य जैनशासन.... पर्याय जैसा वीतरागस्वभाव है, सम्बन्ध बिना का स्वभाव है, अबद्धस्वभाव है अर्थात् कि अबद्ध तो नास्ति से कहा,

परन्तु अस्ति से कहें तो मुक्तस्वरूप है। आहाहा! ऐसी मुक्तस्वरूप वस्तु है, उसका अनुभव करके उसकी प्रतीति करना, उस दशा को जैनशासन कहते हैं। बारह अंग में यह है। पोपटभाई! आहाहा!

यह परमात्मशक्ति का सत्त्व है। बहिरात्मा और अन्तरात्मा तो पर्याय की अपेक्षा से है। और यह प्रगट होता है, वह पर्याय की अपेक्षा से बात चलती है। समझ में आया? परन्तु वह पर्याय में इसरूप हुआ, वह कहाँ से हुआ? आहाहा! उसे यह विश्वास की दृष्टि में पूरा आत्मा ऐसा आया। इससे उसकी पर्याय में मुक्तस्वभाव की दृष्टि होने से, दृष्टि से तो मुक्त है। दृष्टि का विषय मुक्त है। परन्तु मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय, जितना अबद्धस्पृष्ट को जानने से, अनुभव करने से (टला), उतनी पर्याय में मुक्ति आयी। आहाहा! मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा। यहाँ सम्बन्धरहित भाषा है न! आहाहा! सम्बन्ध कहो या बन्ध कहो। चौदहवीं में ऐसा लिया **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** अबद्ध अर्थात् बद्ध नहीं अर्थात् मुक्तस्वरूप है। आहाहा! उसे कोई राग और शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं। राजेन्द्रजी! ऐसी बात है यह। वहाँ दवाखाना में गप्पें मारने जाना और हो जाये। यह मानो हम होशियार हैं। ऐसा होगा? आहाहा!

बापू! तेरी होशियारी तो ज्ञान और आनन्द की होशियारी तुझमें पड़ी है। अरे! अबद्धस्पृष्ट ऐसी मुक्त शक्ति तुझमें पड़ी है। आहाहा! उस शक्ति को सम्हाले, वह होशियार कहलाता है। नवरंगभाई! आहाहा! ऐसी बात। मूल वस्तु को छोड़कर दूसरी सब बातें करे, अणुव्रत और महाव्रत पाले तो वह भी चारित्र कहलाता है। अरे! परन्तु कहाँ आये, बापू! पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह आस्रव है। आस्रव के सम्बन्धरहित भगवान है। आहाहा! समझ में आया? यह तो जिसे हित करना हो, उसकी बातें हैं, भाई! बातें करनी हो और कहीं शास्त्र की व्यवहार की बातों के पक्ष में खड़े रहकर बातें करनी हो, वह नहीं बैठे। आहाहा!

कहते हैं, यह शरीर आदि के सम्बन्धरहित भगवान है। परमेश्वर ऐसी शक्तिवाला तत्त्व ही वह मैं हूँ। **शुद्ध अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म के अभाव के कारण से परमविशुद्धियुक्त;....** देखा! यह शुद्ध के अर्थ में विशुद्धि ली है। बाकी विशुद्धि तो

कषाय की मन्दता को भी होती है, परन्तु यहाँ तो परमविशुद्धि ली है, इसलिए परमात्मा उसे कहते हैं, अत्यन्त आनन्द की दशा जिसे पूर्ण प्रगट हुई, उसे परमात्मा कहते हैं। आहाहा! कोई जगत का कर्ता है, उसने सृष्टि को सर्जित की है, इसलिए वह परमेश्वर है, ऐसा परमेश्वर का स्वरूप नहीं है।

शुद्ध अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म.... पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के भाव के **अभाव के कारण....** परमेश्वर को उनका अभाव हुआ है। इस कारण से **परम विशुद्धिवाले....** हैं। आहाहा! तो यह भगवान आत्मा भी वह है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु से पुण्य और पाप और जड़ कर्म के भाव बिना की यह चीज़ है। जिसमें इस वस्तु का नास्ति भाव है। राग और कर्म का स्वयं का जो अस्तित्व है.... ऐसी महाप्रभु सत्ता, उसके अस्तित्व में राग और कर्म के अस्तित्व का नास्ति भाव है। समझ में आया? मूल चीज़ को जाने बिना और मूल चीज़ को (माने बिना)।

.....(जो इसमें) नहीं, उसका स्पर्श इसे कैसे हो? भगवान आत्मा शरीर, वाणी, कर्म को स्पर्शा नहीं है। परमात्मा को पर्याय में नहीं है, इसके वस्तु स्वभाव में नहीं है। समझ में आया? क्योंकि यह वस्तु ऐसी है। फिर अलिंगग्रहण के छह बोल में कहा है न? कि वस्तु है, वह आत्मा स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। वह वस्तु ऐसी है। वस्तु त्रिकाल ऐसी है कि वह स्व स्वभाव से ज्ञात हो। क्योंकि उसका स्वरूप है, उसकी पर्याय में ज्ञात होता है, ऐसा। परन्तु उसके स्वरूप में विकल्प को और शरीर को स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! उससे यह ज्ञात हो, भाई! यह वस्तु का स्वरूप नहीं। भगवान ने कहा है, वह ऐसा है (और) वह तो वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? विविक्त की व्याख्या की। विविक्त पहले में आया था। शुरुआत के पद में विविक्त (आया था)। विविक्त का अर्थ ही यह है।

आता है न नव वाड में? स्त्री, पुरुष, नपुंसकरहित विविक्त स्थान। नव वाड ब्रह्मचर्य में आता है। उसी प्रकार यह भगवान स्वयं वह परद्रव्य कर्म और शरीर को स्पर्शा नहीं, ऐसा विविक्त है। आहाहा! फिर उसे व्यवहार से होता है, निश्चय और व्यवहार का कर्ता आत्मा, ऐसा नहीं लागू पड़ता। पोपटभाई! वह.... यह सब ऐसा सुनने

का। आहाहा! ....बहिन कहती थीं.... गड़बड़.... यहाँ बात आयी थी। भाग्यशाली। वापस सब सरीखा आ गया है। अरे! यह बात करने की और समझने की है, बापू! बाकी सब धन्धे और पानी.... उस पर को स्पर्शा नहीं और करे किस प्रकार? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! महेन्द्रभाई! यह हीरा को और माणिक को जीव स्पर्शता नहीं। उठावे और परीक्षा करके दे, ...है। आहाहा! देवजीभाई! यह लोग देखो न, भाग्यशाली लोग कहाँ के कहाँ आ गये। आहाहा!

अरे! यह तो परमात्मा के द्वार खोलने की बातें हैं। बन्ध है कि मैं रागवाला हूँ, यह वाला हूँ, वहाँ वह द्वार बन्द है। आहाहा! विविक्त हूँ। परमात्मा विविक्त है। जो जानता अरिहन्त को द्रव्य, गुण और पर्याय को। अरिहन्त की पर्याय विविक्त है, ऐसा जो जाने, वह आत्मा विविक्त है ऐसा जानकर उस आत्मा को अनुभव करे और जाने। आहाहा! परन्तु सब व्यवहार के कथन चरणानुयोग में बहुत आवे। व्रत पालना, यह व्रत ऐसे करना.... ऐसे करना.... ऐसे करना। आहाहा! इसलिए इसे ऐसा हो गया कि यह भी एक आत्मा का आचरण है। अणुव्रत और महाव्रत... यह श्रावक के छह कर्तव्य आते हैं न? गुरुसेवा,....

मुमुक्षु : देवपूजा, गुरुपास्ति स्वाध्याय.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। यह मानो कि उसका स्वरूप होगा यह! वह राग को स्पर्शा ही नहीं। होता है, तथापि उसके अभावस्वरूप है, उसके अभावस्वभावस्वरूप यह आत्मा है। आहाहा!

विविक्त अर्थात् शरीर-कर्मादि.... आदि अर्थात् भाषा आदि। **नहीं स्पर्शित;....** ओहोहो! परमात्मा उसे स्पर्शते नहीं। वैसे भगवान आत्मा वह भी राग को और कर्म को स्पर्शा ही नहीं। **'अबद्धपुट्ठं'**। ओहोहो! दो शब्द है न? **'अबद्धपुट्ठं'**। फिर और चार दूसरे—अनन्य, अविशेष (आदि)। स्पर्शा नहीं। ऐसा कहा—वहाँ क्या नहीं कहा? आहाहा! यह चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति ज्ञानस्वभाव का स्वरूप ही अकेला ज्ञानस्वरूप वह राग को और शरीर को कैसे स्पर्शे? ज्ञान कैसे स्पर्शे? उसे परज्ञेयरूप से परज्ञेयरूप से जानना, वह भी पर है; इसलिए परज्ञेयरूप से ज्ञात होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

वह पर है, वह स्व का जहाँ स्पर्शा बिना की चीज़ हूँ, ऐसा भान हुआ, तब पर का ज्ञान पर के कारण नहीं, परन्तु अपने स्वभाव के कारण पर का ज्ञान हुआ। उस ज्ञान की पर्याय को स्पर्शता है। आहाहा! भगवान पूर्ण पर्याय को स्पर्शता है। समझ में आया? यह आत्मा पूर्ण पर्याय को स्पर्शे, तब तो परमात्मा व्यक्त हो जाये, पर्याय में। आहाहा!

विविक्त.... नहीं आता विविक्त शय्यासन? आता है न नव वाड़ ब्रह्मचर्य में।.... जहाँ पर स्त्री, पशु, नपुंसक न हो, वहाँ ब्रह्मचारी को रहना। यह पर्याय की बात है। यह कहते हैं कि द्रव्यस्वभाव भगवान परमात्मा केवलज्ञानी अरिहन्तदेव को पर के स्पर्श बिना की दशा हो गयी है। वह दशा हुई कहाँ से? अन्तर में वस्तु भगवान आत्मा शरीर और वाणी के स्पर्श बिना की चीज़ ही वह है। आहाहा! गजब! दृष्टि को उठाकर, राग के सम्बन्धवाली दृष्टि को उठाकर, राग के सम्बन्ध और स्पर्श बिना के स्वभाव की दृष्टि करना। इसका अर्थ हुआ कि परसन्मुख की जो दृष्टि थी, उसे स्वसन्मुख करना। क्योंकि वह स्वयं राग के और शरीर के स्पर्श बिना का है। आहाहा! समझ में आया? दिल्लीवाले हैं भाई? तुम्हारे पास बैठे हैं, वे।

मुमुक्षु : मोरबी के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोरबी? ठीक। मैंने कहा, वह दिल्लीवाले कल आये थे.... वह हिन्दी समझे न, इसलिए।

उसमें आता है न? 'बड़ा बड़ाई बोले नहीं, बड़ा न बोले बोल, हीरा मुख से न कहे लाख हमारो मोल।' आहाहा! क्योंकि यह वस्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ शरीर और राग को, मन को स्पर्शा नहीं। आहाहा! ऐसी विकल्प और वाणी.... यह विकल्प करना, वह उसमें नहीं है। आहाहा! वह ऐसा बोले नहीं कि मैं विकल्प बिना का हूँ, स्पर्श बिना का हूँ। ऐसी बात है। आहाहा! ऐसा जो वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने कहा और ऐसा ही है। वह प्रभु है।

इन्द्रादि के स्वामी;.... प्रभु की व्याख्या की है। है न इसमें? **प्रभु....** वास्तव में इन्द्रादि के स्वामी, उसकी प्रभुता यह व्यवहार से कहा। बाकी तो सभी शक्तियों की

प्रभुता पर्याय में प्रगट हो गयी है। क्योंकि उसमें प्रभुत्व नाम का गुण है। ४७ (शक्तियों) में आता है न? सातवाँ गुण है। प्रभुत्व नाम की शक्ति है, प्रभुत्व नाम का गुण कहो, सत् का सत्त्व ही प्रभु से भरपूर है। आहाहा! अर्थात् कि वह परमेश्वर है। प्रगट दशा परमेश्वर की हुई, उसे इन्द्र आदि नमते हैं, ऐसा कहा। यहाँ तो कहते हैं कि प्रगट दशा हुई भले जिसकी, परन्तु यहाँ तो वस्तु व्यक्तरूप से, द्रव्यरूप से प्रगट है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे यहाँ प्रभु कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा.... ऐसा एक बार यहाँ से बोल कोई ले गया है कहीं। वहाँ तो भगवान आत्मा कहते हैं। अरे! भगवान आत्मा होगा? अरे... भगवान! यहाँ कोई सुनकर ले गया हिन्दुस्तान में। ....वहाँ तो भगवान आत्मा कहते हैं। बापू! भगवान आत्मा नहीं, तब क्या पामर है? आहाहा! सिद्ध की पर्याय की पूर्णता, ऐसी अनन्त पर्याय की पूर्णता तो उसके गुण में पड़ी है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर। आहाहा! त्रिलोकनाथ की वाणी में यह आया है। और ऐसा है, वह आया है। जो इस प्रकार नहीं माने, वह आत्मा मानता नहीं, शास्त्र मानता नहीं, सच्चे देव-गुरु को भी वह मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, कान्तिभाई! वहाँ कहीं सुनने को मिला नहीं लींबडी में या कहीं। आहाहा!

प्रभु अर्थात् इन्द्रादि के स्वामी;.... अथवा जिनवर कहा है न वहाँ? गणधरों के भी वर—प्रधान है। यह जिनवरेन्द्र ऐसा कहा है, द्रव्यसंग्रह। जिनवर—जिन समकिती; उसके वर-प्रधान गणधर; उनके प्रधान जिनवर। जिनवरवृषभ। जिनवरेन्द्र कहो, जिनवरवृषभ कहो। जिनवरेन्द्र-जिनवरेन्द्र। आहाहा! सम्यग्दृष्टि से लेकर जिन कहलाते हैं, गणधर आदि को उनका जिनवर कहा जात है और भगवान अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरेन्द्र-जिनवरेन्द्र। आहाहा! अरे! इसे पामर की पर्यायबुद्धि में ऐसा प्रभु है, यह बात इसे अन्तर में बैठती नहीं। क्योंकि प्रगटरूप से है, वह तो अंश दशा है और अन्दर है, वह तो पूर्ण वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

इन्द्रादि के स्वामी;.... है। इन्द्रादि में फिर गणधर आदि के भी स्वामी प्रभु हैं न परमात्मा! उसमें यह आत्मा सर्वज्ञ पर्याय प्रगटे, उसका यह स्वामी है, ऐसा इसमें गुण

है। प्रभुत्व नाम का गुण है। आहाहा! **अव्यय....** है। छठी गाथा का पहला पद का अन्तिम शब्द। अव्यय है। अर्थात्? प्राप्त हुई दशा से वह नाश हो, ऐसा नहीं है। है? **प्राप्त अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप से च्युत (भ्रष्ट) नहीं होनेवाले;....** आहाहा! प्राप्त। अव्यय है न? व्यय अर्थात् नाश नहीं ऐसा। **प्राप्त अनन्त चतुष्टयमय....** अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, यह पर्याय की बात है। ऐसा अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप। अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप। अनन्त चतुष्टयवाला, ऐसा भी नहीं। परमेश्वर पर्याय में अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप है। इसलिए वे अव्यय हैं। ऐसा भगवान आत्मा अनन्त चतुष्टय स्वभाव में से हटता नहीं, ऐसा वह प्रभु है। ऐसा अव्यय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात। कहो, दिलीप! बराबर आया है न ठीक सुनने में। ऐसी बातें निकले। कहाँ गये वृद्ध? कहो, समझ में आया? आहाहा!

भगवान अनन्त चतुष्टय सम्पन्न है। हीन दशा में वह दशा आती नहीं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा को पूर्ण हो गयी, वह वापस पड़ती नहीं, नाश होती नहीं; इसी प्रकार भगवान आत्मा जिसका स्वभाव, उसकी शक्ति को क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। उसके स्वभाव की अनन्तता को क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। उसके स्वभाव के सामर्थ्य को अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है—भाव, इसकी उसे जरूरत है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा यह भगवान अव्यय है।

परमेष्ठी.... है। **परम अर्थात् इन्द्रादि से वन्द्य—ऐसा बड़ा पद,...** परमेष्ठी कहना है न? **उसमें जो रहते हैं,...** परमपद की पर्याय जो है पूर्ण, उसमें वह रहा हुआ है। इसलिए वह इन्द्रादि से भी वन्द्य है। आहाहा! **ऐसा बड़ा पद, उसमें जो रहते हैं,....** पूर्ण बड़ा पद जो इन्द्रादि से भी वन्द्य दशा, ऐसी दशा में वह रहे हुए हैं। यह भगवान भी ऐसी दशावाला है, कहते हैं। आहाहा! उसका स्वभाव ही परमेष्ठी है। परम परमात्मस्वभाव की इष्टता-नाम कभी छोड़ता नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बात भी सुनी नहीं और यह दया पालो और व्रत पालो और अपवास करो.... व्यवहारमार्ग है या नहीं? व्यवहारमार्ग है या नहीं? भगवान दो नय का उपदेश करते हैं या नहीं? ऐसा कहकर.... आहाहा! भगवान का मार्ग एक ही प्रकार का है? अर्थात् क्या?

वीतरागता पूर्ण न प्रगट हो, तब उसे निश्चय के साथ ऐसा कोई विकल्प का व्यवहार होता है। उसका नाम व्यवहार है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु व्यवहार है, उसका जोर देकर व्यवहार करनेयोग्य है और व्यवहार होवे तो निश्चय प्राप्त होता है, ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

परम अर्थात् इन्द्रादि से वन्द्य—ऐसा बड़ा पद, उसमें जो रहते हैं, उस स्थानशील.... देखा! उसमें रहते हैं अर्थात् उस स्थान में पूर्ण पर्याय में रहना, ऐसा जो उसका स्वभाव है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव में स्थिर रहा हुआ है। कभी अपूर्ण पर्याय में वह आया ही नहीं। समझ में आया? स्थानशील। देखा! जैसे सिद्ध भगवान का व्यवहार स्थानशील और वह है। परन्तु निश्चय स्थानशील अपनी पर्याय में निर्मलता में रहना, वह उसका मूल स्थानशील है। आहाहा! लोक के अग्र में भगवान रहते हैं, यह सब व्यवहार की बातें हैं। वे स्वयं अपनी पूर्ण पर्याय में रहना, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा का पूर्ण शक्तियों में बसकर रहना, वही उसका स्वभाव है। अपूर्णरूप से आना, रागरूप होना, वह तो उसमें—स्वभाव में नहीं है। आहाहा! अरे! इसकी वास्तविक स्थिति क्या है? इस तत्त्व का वास्तविक पूर्ण स्वरूप क्या है? उसकी अन्तर में अनुभव में प्रतीति बिना सब बातें समझने जैसी है। आहाहा! उसकी बात की बात नहीं, दूसरी माँडकर करना कि, यह व्यवहार कहा है शास्त्र में। वह सब है वह है, सुन न! व्यवहार कहा, वह सब विषकुम्भ है। विषकुम्भ है। भगवान आत्मा अमृत का घड़ा, वह विषकुम्भ को स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **स्थानशील परमेष्ठी;....**

परात्मा अर्थात् संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा.... संसार की पर्याय से भिन्न होकर पर्याय में उत्कृष्ट आत्मा हुए, वे उत्कृष्ट पर आत्मा—परात्मा कहलाते हैं। वैसे ही भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में न आकर परात्मा-महाआत्मा है, कहते हैं। आहाहा! ऐ.... प्रवीणभाई! इसमें प्रवीण होना पड़ेगा। आहाहा! **इस प्रकार के जो शब्द हैं, वे परमात्मा के वाचक हैं।** वाच्य है, वह वस्तुस्वरूप। वाचक उसके शब्द। वे शब्द उसके वाच्य को स्पर्श नहीं करते और वाच्य जो है, वह शब्दों को करता नहीं। लॉजिक

से तो बात है यह। अरे रे! लोगों को ऐसा होता है। परन्तु यह शास्त्र में क्या कहते हैं? यह सोनगढ़वालों ने ऐसा नया निकाला, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। अरे! प्रभु! तू ऐसा रहने दे, बापू! तुझे न बैठे इसलिए.... यह तो परमात्मा के घर की बात है। तेरा घर ही ऐसा है। समझ में आया? तेरे घर में माल इतना पड़ा है। आहाहा! यह बताना है, बापू! तुझे पर्याय के अंश में महत्ता दिख जाती है, वह भ्रम है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग पर्याय है, उसकी तुझे महिमा दिख जाये, ऐसी वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह परात्मा है। आहाहा! एक समय की पर्याय का सामर्थ्य-शक्तियाँ भगवान पर-भिन्न है। आहाहा! परमात्मा को पर्याय में पर भिन्न हो गया। यहाँ वस्तु में वह पर पर्याय से परात्मा भिन्न है। आहाहा! ऐसी वस्तु की स्थिति ही है, वहाँ उसे मर्यादा में ला डालना, वह वस्तु नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ये सब शब्द परमात्मा के वाच्य हैं और शब्द सब वाचक है।

'परमात्मा' इत्यादि से उन्हें ही दर्शाया है। परमात्मा इत्यादि जो यह सब नाम लिये न। **परमात्मा अर्थात् सर्व प्राणियों में उत्तम आत्मा; ईश्वर अर्थात् इन्द्रादि को असम्भवित—ऐसे अन्तरङ्ग-....** वैभव। और तीर्थंकर को डाला है। **बहिरङ्ग परम ऐश्वर्य से सदा सम्पन्न;....** ऐश्वर्य। **जिन अर्थात् सर्व कर्मों का मूल में से नाश करनेवाले....** आहाहा! यह अपेक्षित कथन है। नाश करता नहीं आत्मा। समझ में आया? ३४ गाथा में नहीं आया? समयसार। राग का परमार्थ से नाशकर्ता भी आत्मा नहीं। आहाहा! स्वभाव में स्थिर होता है (तो) राग उत्पन्न नहीं होता, उसे आत्मा राग का नाश करनेवाला है, ऐसा उपचार से कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? समझाना हो, तब संक्षिप्त शब्दों में ऐसी शैली आती है। वहाँ कहा कि आत्मा राग का नाशकर्ता है, ऐसा कहना, वह भी बराबर नहीं। आहाहा! और यहाँ कहना कि **सर्व कर्मों का मूल में से नाश करनेवाले हैं।** आहाहा!

राग का नाशकर्ता कहना, वह भी उपचार से कथन है। आहाहा! राग का, हों! क्योंकि वस्तुस्थिति अन्तर में रहने से, स्थिर होने से उसे राग की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए उसे राग का नाश करता है, ऐसा उपचार दिया गया है। आहाहा! यह व्यवहार

के कथन हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा! यहाँ थोड़ी-थोड़ी छोटी चीज़ में लोभित हो जाता है, खिंच जाता है, उसे इतनी बड़ी कैसे बैठे ? समझ में आया ? दुनिया महिमा करे, महत्ता दे, अभिनन्दन पत्र दे तो इसे प्रसन्नता हो जाती है कि आहाहा! इन्हें मेरी कद्र करना आयी। उसे इतना आत्मा कैसे बैठे ? भाई! समझ में आया ? ऐसी वस्तु की स्थिति है। आहाहा! ऐसा उसे ज्ञान में और श्रद्धा में ऐसी महिमा इसे बैठनी चाहिए। समझ में आया ? आहाहा! **(इत्यादि परमात्मा के अनन्त नाम हैं)।**

भावार्थ - निर्मल, केवल, शुद्ध, विविक्त, प्रभु, अव्यय, परमेष्ठी, परात्मा, ईश्वर, जिन इत्यादि नाम परमात्मा के वाचक हैं। टीका में डाला है न ? '**परमात्मेश्वरो जिनः**' है न मूल पाठ में ? '**परमात्मेश्वरो जिनः**' ईश्वर स्वयं है। आहाहा! समझ में आया ? भगवान परमेश्वर पर्याय में ईश्वर है। यह (आत्मा) वस्तु स्वरूप से ईश्वर है। आहाहा! करनेयोग्य हो तो यह दृष्टि और यह ज्ञान और पश्चात् स्थिरता। बस! यह है। ऐई! आहाहा! यात्रा कर आये, इसलिए न्याल हो गये हम। सम्मेदशिखर की यात्रा कर आये। ऐई! अभी गया नहीं था ? कहा था तेरे दादा ने कि यह सम्मेदशिखर की यात्रा करने जाता है। यात्रा करने गये थे न अभी ? तुम्हारा दिलीप और.... आहाहा! यह तो कहते हैं कि वह यात्रा का भाव होता है। परन्तु उसे महत्ता (महत्त्व) देने जाये तो तेरी महत्ता बदल जायेगी। आहाहा! ऐसी वीतराग की वाणी और उसका वाच्य भगवान ऐसा! वाणी वाचक है। अरे! ऐसा आत्मा सुना नहीं। पामर होकर इसने प्रभु को जाना नहीं। पामरता में आत्मा की प्रभुता को कुचल डाला। आहाहा!

कहते हैं, **ये नाम, परमात्मा के स्वरूप को बतलाते हैं। उस स्वरूप को पहिचानकर, अपने आत्मा को भी वैसे स्वरूप से चिन्तवन करना, यह परमात्मा होने का उपाय है।** अन्दर-अन्दर ऐसा चिन्तवन करना अर्थात् एकाग्र होना, हों! चिन्तवन अर्थात् विकल्प से चिन्तवन करना, ऐसा नहीं। ऐसा पूर्ण स्वभाव, उसे ज्ञान में-लक्ष्य में लेकर निर्णय करे। भले विकल्प से पहले करे। वह निर्णय सच्चा नहीं है वापस। आहाहा! अन्तर के स्वरूप को स्पर्श कर जो निर्णय करे, वह सच्चा निर्णय है। आहाहा! **उस स्वरूप को पहिचानकर, अपने आत्मा को भी....** है न ? **वैसे स्वरूप से चिन्तवन (एकाग्रता) करना, यह परमात्मा होने का उपाय है।**

आत्मा में शक्तिरूप से स्थित गुणों का.... आत्मा में स्वभाव सामर्थ्यरूप रहे हुए गुणों का **जीव को भान हो; इसलिए भिन्न-भिन्न गुणवाचक नामों से परमात्मा की पहचान करायी गयी है।** समझ में आया? **आत्मा में शक्तिरूप से स्थित गुणों का....** उसमें रहे हैं। शक्ति का अस्तित्व है। आहाहा! वह सत् का सत्त्व का अस्तित्व है। वह आत्मा सत्‌रूप, उसके गुण, उनका सत्त्व, उसके भावस्वभावस्वरूप, उस शक्ति से सम्पन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा को आत्मारूप से जाने, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। और साथ में स्वरूपाचरण भी होता ही है। आहाहा! उसकी दृष्टि करके ऐसा ज्ञान किया, इतना तो वहाँ स्थिर होता है या नहीं? समझ में आया? वे कहते हैं न? चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं होता। एक व्यक्ति कहे कि सिद्ध में चारित्र नहीं होता। कैलाशचन्दजी ने ऐसा लिखा है। पण्डिताईवालों को पण्डिताई का अभिमान छोड़ना मुश्किल पड़ता है।....लिखा, सिद्ध को चारित्र नहीं होता। अरे! सिद्ध को संयम नहीं होता। छह काय और मन और इन्द्रियाँ और.... यह नहीं होते। चारित्र तो इनका गुण है। शक्तिरूप पूरा चारित्रगुण है। कहा न? आहाहा! वह शक्तिरूप चारित्ररूप रहे हुए गुण, ऐसे अनन्त गुण उसमें है। उसकी प्रगट दशा हुई तो पर्याय में चारित्र पूर्ण आया। आहाहा! समझ में आया? **भिन्न-भिन्न गुणवाचक नामों से परमात्मा की पहचान करायी गयी है।**

आत्मा, चैतन्यादि अनन्त गुणों का पिण्ड है। भगवान आत्मा ज्ञाता ज्ञान, दर्शन ऐसा चैतन्य। ऐसी अनन्त शक्तियों का वह पिण्ड है। इन अनन्त शक्तियों का वह लड्डू है-पिण्ड। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह आठ वर्ष के राजकुमार जब आत्मा का अनुभव करके दीक्षित होते होंगे.... आहाहा! धन्य दशा! धन्य काल! धन्य अनुभव! आहाहा! माता! हमें जो अनुभव हुआ भगवान आत्मा का, उसे हम पूर्ण करने सावधान होकर वन में जायेंगे, माँ! आहाहा! हमारा भगवान पूर्ण शक्ति से सम्पन्न पूर्ण भरपूर है। ऐसा हमें अनुभव हुआ है, प्रतीति हुई है। उसका नमूना भी स्वरूपाचरण की स्थिरता में आया है। आहाहा! ऐसे स्वरूप को साधे, वे साधु कहलाते हैं। समझ में आया? आहाहा! आठ वर्ष के बालक। एक

छोटी.... क्या कहलाये? पिच्छी और एक कमण्डल। आहाहा! हमारा नाथ पूर्ण वस्तु से भरपूर प्रभु है। उसकी पर्याय में यह अपूर्णता कैसे रहे? उसे हम प्रभुता के गुण को अब हम पर्याय में छलकाये। आहाहा! इसका नाम साधुपना है। भाई! साधुपना कहीं वस्त्र छोड़े और नग्न (हो गये, वह नहीं)। आहाहा!

ऐसी शक्ति से भरपूर परमात्मा हमारी पर्याय में न आवे, दृष्टि और ज्ञान में आया, कहते हैं, परन्तु स्थिरता की पर्याय में न आवे, उसे साधने के लिये, माता! आहाहा! जननी! आहाहा! माता! रोना हो, उतना रो ले। परन्तु कोलकरार करते हैं, नयी माता नहीं बनायेंगे, माँ! आहाहा! यह महिमा भासित हुई और उसे साधने की यह सब दशा है। ऐसी वस्तु हमें प्रतीति में, अनुभव में, ज्ञान में ज्ञात हो गयी है। वह पर्याय में न आवे पूर्णता, तब तक हमें चैन नहीं रहे। चैन नहीं रहे अर्थात् दु:ख होगा, ऐसा नहीं। तब तक हमारा प्रयत्न पूर्ण करने के प्रयास में हैं। आहाहा! वह हमारा आचरण है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे सन्त जब नजर में पड़ते हों.... लोगों का भी भाग्य, ऐसे दिखाई दे, हों! राजकुमार हो, स्फटिकमणि जैसे सुन्दर शरीर हों परन्तु शरीर को और मुझे सम्बन्ध ही नहीं है न! समझ में आया? हमने भगवान आत्मा को सम्बन्धरहित देखा है। माता! उसे पर्याय में पूर्ण सम्बन्ध.... आहाहा! ऐसा आत्मा है। आत्मा के ज्ञान की खबर न हो, आत्मज्ञान न हो। और आत्मा की ऐसी वस्तु है, ऐसी अन्तर ज्ञेय होकर प्रतीति न हो, वहाँ आगे क्या साधन हो? भाई! समझ में आया? बात तो यहाँ से शुरु होती है।

कहते हैं कि परमात्मा को गुण अपेक्षा से.... **अनन्त गुणों का पिण्ड है। ये गुण, भगवान को पूर्णरूप से विकसित हो गये हैं;....** प्रगट हुए हैं, **इस कारण इन गुणों की अपेक्षा से वे अनेक नामों से पहिचाने जाते हैं। परमात्मा को गुण अपेक्षा से जितने नाम लागू पड़ते हैं, वे सब नाम इस आत्मा को भी स्वभाव अपेक्षा से लागू पड़ते हैं...** अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता, अनन्त आनन्दता, स्वच्छता, प्रभुता, ये सब नाम आत्मा को लागू पड़ते हैं। **क्योंकि दोनों आत्माएँ, शक्ति अपेक्षा से समान हैं;....** जैसे सर्वज्ञ परमेश्वर पर्याय में पूर्ण हुए, ऐसा ही यह भगवान आत्मा गुण से पूर्ण है। परन्तु

यह प्रतीति और श्रद्धा करे तब। नहीं तो ऐसे अनन्त गुण हैं, वे ख्याल में आये बिना प्रतीति किस प्रकार करे? समझ में आया? आहाहा! स्वसन्मुख होकर जब उसकी शा में यह आत्मा.... यह अनन्त गुण का एकरूप ऐसा आत्मा, (ऐसी) उसकी पर्याय में श्रद्धा में भासित हो, तब वह अनन्त गुणवाला है—ऐसा निश्चित कहलाये। परन्तु वह ऐसी विद्यमान वस्तु को.... 'है', उसे 'हैरूप' से भासित न हो, तब तक उसे 'है' कहाँ है? विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल १०, मंगलवार, दिनांक २४-१२-१९७४, श्लोक-६-७, प्रवचन-१४

भावार्थ। छठी गाथा का अन्तिम। **परमात्मा को गुण अपेक्षा से....** बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा की व्याख्या है न? उसमें परमात्मा.....

अरिहन्त और सिद्ध वह परमात्मदशा / अवस्था है। उसे जितने नाम लागू पड़ते हैं, वे सब नाम इस आत्मा को भी स्वभाव-अपेक्षा से लागू पड़ते हैं। क्या कहा यह? परमेश्वर सिद्ध भगवान, अरिहन्त परमात्मा को गुण की अपेक्षा से अर्थात् वर्तमान गुण पर्याय में प्रगट (हुए वह)। गुण अर्थात् उसके गुण प्रगट हुए पर्याय में ऐसा। उसकी पर्याय—गुण की पर्याय की अपेक्षा से जितने नाम उसे लागू पड़े, उतने नाम इस आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा से लागू पड़ते हैं। दोनों में क्या अन्तर पड़ा?

भगवान परमेश्वर तीर्थंकरदेव.... एह हजार (आठ) नाम दिये हैं न इन्द्रों ने केवलज्ञान हो (तब)? कहते हैं कि वे परमेश्वर परमात्मा अरिहन्त, उनकी निर्मल गुण की पर्याय की अपेक्षा से, गुण की पूर्ण प्रगट अपेक्षा से जितने नाम उन्हें लागू पड़े, उतने नाम आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा से लागू पड़ते हैं।

मुमुक्षु : पर्याय की अपेक्षा से।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय अपेक्षा, यह शक्ति अपेक्षा।

.....जिसे प्रगट हुई, ऐसी जो दशा पूर्ण, उसे जितने नाम कहो, वे सब लागू पड़ते हैं, वे आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा से सब लागू पड़ते हैं। उसकी शक्ति की अपेक्षा से, गुण की अपेक्षा से, सत् के सत्त्व की अपेक्षा से प्रगट पर्याय के जितने नाम लागू पड़ें, उतने उसे गुण को-शक्ति को लागू पड़ते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

क्योंकि दोनों आत्माएँ, शक्ति अपेक्षा से समान हैं;.... स्वभाव अपेक्षा से कहा था न? फिर उसका स्पष्टीकरण कर दिया। स्वभाव अर्थात् क्या? कि शक्ति। वस्तु है, उसकी जो शक्ति है, उसका सत्त्व है, उसका जो गुण है, उसका स्वभाव। स्व-भाव। स्वभावी का स्वभाव। वह जितनी शक्तियाँ और स्वभाव है, उन सबको पर्याय अपेक्षा से आत्मा को लागू पड़े। सिद्ध की पर्याय की अपेक्षा से, अरिहन्त की पर्याय की अपेक्षा से

जितनी लागू पड़े, उतनी इस भगवान आत्मा को स्वभाव और शक्ति की अपेक्षा से लागू पड़ता है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि दोनों आत्माएँ, शक्ति अपेक्षा से समान हैं;.... क्यों लागू पड़ता है? कि शक्ति की अपेक्षा से दोनों आत्मा—प्रगट हुए और यह (संसारी)—दोनों शक्ति से तो समान हैं। उन्हें प्रगट हुई है, यहाँ प्रगट होने की सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

जो परमात्मा के गुणों को यथार्थरूप से पहिचानता है,... यह डाला। जो जानता.... है न? जो अरिहन्त के गुणों को अर्थात् उनकी पर्याय को,.... अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों। उन्हें जो बराबर पहिचानता है, **वह अपने आत्मा के स्वरूप को जाने बिना नहीं रहता।** देखा! आहाहा! अरे! मैं भी आत्मा उनकी जाति का, उनकी नात का (हूँ)। उनकी जाति की पंक्ति में रहा हुआ। उन्हें पर्याय अपेक्षा से जितना कहा जाये, उतना मैं भी वैसा हूँ, उस आत्मा को जाने। आहाहा! अपने ज्ञान के स्वरूप को जाने बिना रहे नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है न। अरिहन्त का है न, पहले जाने अरिहन्त। उसमें भी तर्क उठे कि परद्रव्य के गुण-पर्याय जाने, इसलिए आत्मा ज्ञात हो, यह तो निमित्त की वार्ता हुई। यह तो इस अपेक्षा.... निहालभाई ने डाला है। अन्यत्र सब इनकार करो कि निमित्त से नहीं होता और यहाँ अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने से आत्मा पहिचाना जाता है, यह तो निमित्त की बात है। समझ में आया? कौन सवेरे कोई कहता था न? निहालभाई का है। उसमें यह है, वह यहाँ सब निकलता है प्रवचनसार में।

जो अरिहन्त की दशा के प्रगट पर्याय को जाने तो उनके गुण-शक्ति और उनका आत्मा इन तीनों को जाने। और उसे जानने पर मैं भी वैसा ही आत्मा उनकी जाति का हूँ। तो उसे यह पर का जानने का लक्ष्य छोड़कर.... छोड़कर। बात तो ऐसी है कि—

जो जानता अर्हंत को द्रव्य गुण पर्ययपने।
वह जीव जाने आत्म को, उस मोह क्षय पावे अरे।

(प्रवचनसार, गाथा ८०)

इसका अर्थ है कि ऐसा ही यहाँ आत्मा लिया (कि) जिसने परमात्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना, उसे आत्मा ज्ञात हुए बिना रहनेवाला नहीं है, ऐसा आत्मा लिया

है। समझ में आया? हे न? **स्वरूप को जाने बिना नहीं रहता।** आहाहा! उसे पूर्ण पर्याय में पूर्णता है। मेरे स्वभाव में परिपूर्णता है और स्वभाववानरूप से परिपूर्ण है। और उसे परिपूर्ण पर्याय है। तो वह परिपूर्ण पर्याय मुझे नहीं तो प्रगटे कैसे? कि पूर्ण द्रव्य और पूर्ण स्वभाव के आश्रय से प्रगटे। इसलिए उसका आश्रय ले। आहाहा! यह ज्ञान की क्रिया और दर्शन का विषय, उसकी महिमा जगत को नहीं आती। बाह्य त्याग किया और यह किया और वह किया। आहाहा! वह आत्मा को जाने बिना नहीं रहता। ऐसा कहा, देखा! पाठ ऐसा है न? **वह जीव जाने आत्म को,.... 'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** पाठ है न ऐसा? **'सो जाणदि अप्पाणं'** ऐसा लिया है न? **'सो जाणदि अप्पाणं'** तब (कोई) कहे, ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान ग्यारह अंग और नौ पूर्व में नहीं आया?

मुमुक्षु : ....अपने आत्मा को तो जाना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें ऐसा ही यह प्रगट है, वैसा ही मैं शक्ति में हूँ, ऐसी इसने द्रव्यस्वभाव की स्पर्शना नहीं की। समझ में आया? आहाहा!

निमित्त को उपादान कहता है न कि तू तो रोकनेवाला है। ऐई! चन्दुभाई! किसमें? उपादान-निमित्त (दोहा में)। .... उसमें से वापस यह निकाला, देखो! ... रोकता है या नहीं? परवस्तु यहाँ रोकती है या नहीं? उपादान का बहुत सब लिखा है। दो-तीन श्लोक डाले। ऐसा तो यह कहा कि निमित्त का लक्ष्य करेगा, आश्रय करेगा, उसे राग होगा और उपादान का आश्रय करेगा, उसे वीतरागता प्रगट होगी। समझ में आया? ऐसा बतलाने को ऐसा कहा है। तब कहे, देखो! देह पिंजरा जीव को रोकता है। आया या नहीं? उसमें लिखा है या नहीं लिखा? निमित्त रोकता है उसे। निमित्त की बलवत्ता है या नहीं? जिसमें से तुम अकेला उपादान-उपादान कहते हो। ऐई! उसमें निमित्त का निकलता है या नहीं? किस अपेक्षा से, भाई!

भाई ने—निहालचन्दभाई ने डाला है। तुम अन्यत्र सब कहते हो कि पर को जानने का हो तो स्वयं के कारण होता है, उसके कारण नहीं होता। यहाँ तो ऐसा कहा है। **'जो जाणदि अरहंतं',** यह तो निमित्त से कथन किया है। समझ में आया? इससे यहाँ कहा न? जो जाने और जाने बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसा ही आत्मा मैं हूँ परिपूर्ण

शक्ति स्वभाव सत्त्व से, ऐसा जाने बिना रहे नहीं, उसने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, ऐसा निमित्तरूप से कहने में यह बात है। आहाहा! मूल स्वतन्त्रता की जिसे खबर नहीं न। पर्याय... पर्याय का उत्पाद स्वतन्त्र है। ऐसा तो कहा, नहीं? उसके कारण हो, यह आया कहाँ उसमें? समझ में आया?

जितने गुण परमात्मा में हैं, उतने ही गुण प्रत्येक आत्मा में हैं। प्रत्येक आत्मा में तो अभव्य और सब आ गये। अभव्य में इतने ही गुण हैं। समझ में आया? पाठ में आ गया है पहले। यह बात तो हमारे वहाँ.... कहा न? (संवत्) १९८५ में हुई। मणिलालजी के साथ। वे मोहनलालजी ऐसा कहे कि.... मोहनलालजी थे, पहिचानते थे? .... चातुर्मास था राजकोट। (संवत्) १९८० में। मोहनलाल.... है कहाँ वे? दूसरे ने बात की। समझ में आया इसमें? कि उसे केवलज्ञान है। केवलज्ञानावरणीय है। भाई! यह तो दूसरे ने बात की। नवरंगभाई! उसे कब हो? कहते थे न? वर्णीजी ऐसा कहते कि शुद्ध तो सभी आत्मा हैं। शुद्ध तो है परन्तु अशुद्धता टालना किस प्रकार? ऐसा नहीं है। शुद्ध है, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान में प्रतीति आवे, तब शुद्ध उसके लिये है। ऐई! नवरंगभाई! आहाहा! समझ में आया?

आत्मा शुद्ध है। है। यह सुनकर माने ऐसा है? कहा। ... ऐसा आया है? यह परिपूर्ण वस्तु अनन्त गुण सम्पन्न है, ऐसी जो प्रतीति उसे ज्ञान की पर्याय को उस अस्तित्व का भास हुआ, तब उसके लिये शक्ति है। भाई! यह तो ऐसा अन्तर है कि थोड़े अन्तर में बहुत अन्तर पड़ जाता है। समझ में आया? ऐसा कि शक्ति से शुद्ध तो है। अब अपने अशुद्धता टालना किस प्रकार? इसलिए शुद्ध है, वह तो सब जानते हैं। अरे... बापू! ऐसा नहीं, भाई!

यह प्रभु शुद्ध है, वह तो परद्रव्य के लक्ष्य को छोड़कर...यह आता है न? (समयसार) छठवीं गाथा में। स्व की उपासना करने से.... आहाहा! गजब टीका है! स्वसन्मुख ढला हुआ। उसकी सेवा की अर्थात् कि उसने अन्दर श्रद्धा में सब स्वीकार किया। ओहोहो! ऐसी जो श्रद्धा की पर्याय शुद्ध में, उसकी प्रतीति आयी, उसे वह शुद्ध है। समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो भाषा सादी है। आहाहा!

ऐसे अरिहन्त की दशा पूर्ण प्रगट हुई, ऐसा मैं हूँ। कौन माने? कौन जाने? कि यह शक्ति का तत्त्व जो पूरा है, उसका जिसने सन्मुख होकर स्वीकार किया है कि यह है। समझ में आया? उसे **'मोहो खलु जादि तस्स लयं'।** उसका मोह नाश हो ही जाता है। दर्शनमोह का नाश हो जाता है, और उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! कैसी शैली है यह!

जितने गुण परमात्मा में हैं, उतने ही गुण प्रत्येक आत्मा में हैं। परन्तु वे हैं, किसे? समझ में आया? है, उसका जिसे अन्तर में ज्ञान की पर्याय में वह है, उसका ज्ञेय होकर, ज्ञान की पर्याय में वह है, उसका ज्ञेय होकर ज्ञान हुआ, उसे है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! 'है' में इतना जोर है, कहते हैं। सम्यग्दर्शन-श्रद्धा, उसमें इतना जोर है। उस श्रद्धा में यह वस्तु ख्याल में आयी है। ज्ञान की पर्याय में (अनुभव हो गया है)। श्रद्धा को तो कुछ ख्याल नहीं आता इसमें। ज्ञान की पर्याय की अनुभूति में यह वस्तु पूर्ण शक्तिवाली है, ऐसा उसे प्रगट शुद्ध पर्याय में पूर्ण शुद्ध की प्रतीति हो गयी है। है, उसकी प्रतीति हुई है। आहाहा! समझ में आया?

उतने ही गुण प्रत्येक आत्मा में हैं। निज त्रिकाली आत्मा के सन्मुख होकर,... देखो! यह है, इस आत्मा के सन्मुख होकर 'यह है' ऐसा स्वीकार हुआ। **उनका परिपूर्ण विकास करके,....** वह पूर्ण वस्तु शक्ति से पूर्ण है, ऐसा पर्याय में ज्ञान में भासित हुआ, तब उसकी प्रतीति हुई कि यह तो पूर्ण स्वरूप है। समझ में आया? १७-१८ में यह आता है न? गाथा १७-१८। जो चीज़ जानी.... टोडरमलजी। भावभासन हुआ, ऐसी भाषा प्रयोग की है। उसका हेतु यह है। समझ में आया? लो, कहाँ का कहाँ आया, कहाँ का कहाँ आया! उसे भावभासन हुआ है। भावभासन अर्थात्? उन-उन शक्तियों का भाव ऐसा है, ऐसा ज्ञान में इसे आया है। आहाहा! समझ में आया?

निज त्रिकाली आत्मा के सन्मुख होकर,.... अर्थात् कि ऐसा जो था राग की सन्मुखता में परसन्मुख, तब उसका अनादर था। होने पर भी—शक्ति, सत्त्व, स्वभावरूप होने पर भी—यह नहीं था। समझ में आया? क्योंकि वस्तु जो है, उसके ज्ञान में 'यह है' यह आया नहीं था। उसके सन्मुख हो, तब इसका अर्थ यह हुआ कि उसका स्वीकार किया। समझ में आया? उस **त्रिकाली आत्मा के सन्मुख होकर, उनका परिपूर्ण विकास**

करके,.... वह तो फिर पर्याय विकास हुई। परन्तु यह तो सन्मुख होकर उसका कैसे इसे ख्याल आया? कि सन्मुख हुआ। सत् वस्तु की (ओर) ऐसे मुख इसका हुआ, ऐसा कहते हैं। वह वस्तु यह है। आहाहा! जिसे ज्ञान की पर्याय में ऐसा ज्ञेय ज्ञात होता है।

बहिन बराबर टाईम से आये हैं। ....भाग्यशाली हैं। ऐसी व्याख्या किसी समय बाहर आवे, हों! आहाहा! सवेरे भी जो था न, वह व्याख्या पहली-वहली ऐसी आयी है। बाहर क्रियाकाण्ड में फँस गये बेचारे, कुछ खबर नहीं होती.... बापू! दृष्टि में दृष्टिवान पूरा नजर में, श्रद्धा में न आवे, तब तक उसका सब व्यर्थ है। यह व्रत, नियम और त्याग सब बिना एक के शून्य हैं। उनकी कीमत नहीं है।

अर्थात् कि ऐसा आत्मा परिपूर्ण है, उसकी श्रद्धा क्या और उस श्रद्धा में भाव का भासन हुआ, वह कोई महा कीमती चीज़ है। चन्दुभाई! आहाहा! यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं है। यह तो वस्तु है, उसके भाव की बात है। 'यह है' उसका भावभासन न हो, तब तक इसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान नहीं हो सकता। आहाहा! और इस भावभासन के लिये तो अन्तर सन्मुख होना चाहिए, कहते हैं। आहाहा! इन्होंने यह शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? इसका आश्रय लेना चाहिए।

महान वस्तु यह है। जिसके एक-एक गुण का पार नहीं, एक-एक गुण की शक्ति के सामर्थ्य का पार नहीं। ऐसी अनन्त शक्ति का अस्तित्व इस शक्तिवान में है। समझ में आया? ऐसी प्रतीति होने पर उसे यह पूर्ण है, ऐसा श्रद्धा-ज्ञान में आ गया। आहाहा! अब उसकी ओर झुककर उसका पूर्णरूप से विकास करके.... आहाहा! **यह आत्मा भी परमात्मा हो सकता है।** आहा! जैनदर्शन की दूसरे की अपेक्षा विशेषता यह है कि एक-एक आत्मा परमात्मारूप और परमात्मा हो सके ऐसा आत्मा है। समझ में आया? यह वस्तु का स्वरूप यह है। समझ में आया? यह रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, यह कहीं जैनदर्शन की विशेषता नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें अन्य में भी होती हैं। यह डाला नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में डाला है। ऐसा कि ऐसा है, वैसा है, अमुक है। ऐसा तो अन्य में भी है। अन्य में है, वह यह है, वैसा अन्य में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह वस्तु की.... पूर्ण शक्तिवान, उसकी जो श्रद्धा और ज्ञान, पूर्ण शक्तिवान

(अर्थात्) भगवान अनन्त लक्ष्मी का वान—उसका रूप है। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा यह शक्तिवान है। जैसे भगवान। भग अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि जिसकी लक्ष्मी, उसका वह वान। उसका वान उसे है। उसका उसे रूप है। समझ में आया ? आहाहा! लोग नहीं कहते कि यह अमुक कैसे वान है ? नवरंगभाई! कहते हैं न वहाँ ? कि गेहूँ वर्ण है या गोरा वर्ण है या काला.... क्या कहते हैं काले को ? भीनेवाने। भीनेवाने। काला वाने नहीं, भीनेवाने। ऐसे आत्मा कैसा है ? कि वह भगवान है। भग-लक्ष्मी के वानवाला है। वह इसका वान है। आहाहा! समझ में आया ?

श्वेताम्बर में भी केवलज्ञान एक समय में और दूसरे समय में केवलदर्शन। शक्ति पूर्ण है तो पर्याय में पूर्ण प्रगटे तो उसे भंग और खण्ड नहीं होता। समझ में आया इसमें ? जो वस्तु है, उसमें ज्ञान-दर्शन की शक्ति पूर्ण है, ऐसी जिसे प्रतीति बैठे, उसे तो केवलज्ञान और केवलदर्शन एक समय में साथ में होता है। (क्योंकि) अन्दर शक्ति साथ में है न ? तो एक समय में उसके दोनों उपयोग एक समय में साथ में होते हैं। आहाहा! ऐ... चेतनजी! यह बड़ा विवाद। एक समय में केवलज्ञान, दूसरे समय में केवलदर्शन। यह बात न बैठी तो वे कहे, यह तो अन्यमति के लिये कथन है, ऐसा कहकर (निकाल दिया)। क्योंकि यह बात बैठी नहीं। ऐसे वस्तु टूट जाती है।

वस्तु जो है, वह ज्ञान और दर्शन साथ में पूर्ण है। ज्ञान पूर्ण है और दर्शन से अधूरा है, ऐसा है ? और वह एक साथ शक्ति है या पहली यह और बाद में यह, ऐसा है ? आहाहा! जिसे यह ज्ञान और दर्शन एक साथ शक्ति है, उसे विकास में जब लाये, तब एकसाथ दोनों पर्याय है। आहाहा! उसे ऐसा कहना कि पहले समय में ज्ञान का व्यापार और दूसरे समय में दर्शन का (हो)। (तो) वस्तु जानी नहीं, शक्ति मानी नहीं। पर्याय की प्रगटता उसे होती नहीं। नवनीतभाई! ऐसा मार्ग है। लोग को अभी २५०० वर्ष है, इसलिए संगठन करो, संगठन करो, समन्वय करो। बापू! किसी के साथ विरोध नहीं। यह आत्मा है। वह भी पूर्ण शक्तिवान है। भूल हो तो पर्याय में है। द्रव्य-गुण में भूल नहीं। आहाहा! व्यक्ति, वह भगवान है। परन्तु वह गुणरूप भगवान है। ऐसी जिसे अपनी श्रद्धा हुई है, उसे सब भगवान गुणरूप से पूर्ण हैं, वे साधर्मी हैं, इस अपेक्षा से। परन्तु पर्याय की अपेक्षा से नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

उनका परिपूर्ण विकास करके, यह आत्मा भी परमात्मा हो सकता है। देखो! यह विशेष बात। एक-एक तत्त्व और जो तत्त्व है, वह अपने में परिपूर्ण है। तो उसकी शक्तियाँ भी परिपूर्ण है। वस्तु परिपूर्ण है तो उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं, वे भी परिपूर्ण हैं। वह परिपूर्ण है अनन्त शक्तिवाला रूप, ऐसा जिसे ज्ञान में भास होकर प्रतीति हुई, उसका उपयोग वर्तमान छद्मस्थ में भले ज्ञानोपयोग के समय दर्शन (उपयोग) न हो। क्योंकि बीच में वह आड़ है न राग की। परन्तु पूर्ण शक्ति की जिसे प्रगट दशा हुई, उसे पहले समय में केवलज्ञान और दूसरे समय में केवलदर्शन, तीसरे समय में केवलज्ञान और चौथे समय में केवलदर्शन ऐसा है उसमें, यह वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। गुण को अन्दर साथ में माना हो तो वह पर्याय भी एक साथ दो इकट्ठी हो। इसलिए वास्तव में तो उसने द्रव्य को और गुण को जाना नहीं। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति है, हों! यह किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं है। यह तो अन्तर कैसे पड़ गया? (यह कहा)। मूल चीज़ की जो वस्तु है, एक साथ अनन्त गुण हैं, ऐसी यदि उसे ख्याल में और प्रतीति में आवे तो ऐसा खण्ड-भंग उसके कार्य में न कहे। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि पूर्ण विकास करके आत्मा भी परमात्मा एक समय में पूर्ण हो सकता है। आहाहा!

श्लोक - ७

इदानीं बहिरात्मनो देहस्यात्मत्वेनाध्यवसाये कारणमुपदर्शयन्नाह -

***बहिरात्मेन्द्रिय-द्वारै-रात्मज्ञान-पराङ्मुखः।**
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवश्यति॥ ७॥

---

* **बहित्थे फुरियमणो इंद्रियदारेण णियसरूवचओ।**
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ॥

अर्थात्, **मूढ़दृष्टि अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टि है, वह बाह्यपदार्थ - धन, धान्य, कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थों में स्फुरित (-तत्पर) मनवाला है तथा इन्द्रियों के द्वार से अपने स्वरूप से च्युत है और इन्द्रियों को ही आत्मा जानता है, ऐसा होता हुआ अपने देह को ही आत्मा जानता है-निश्चय करता है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।**

(- श्री मोक्षप्राभृत, गाथा-८, कुन्दकुन्दाचार्यः)

इन्द्रियद्वारैरन्द्रियमुखैः कृत्वा स्फुरितो बहिरर्थग्रहणे व्यापृतः सन् बहिरात्मा मूढात्मा। आत्मज्ञानपराङ्मुखो जीवस्वरूप-ज्ञानाद्बहिर्भूतो भवति। तथाभूतश्च सन्नसौ किं करोति? स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति आत्मीय शरीरमेवाहमिति प्रतिपद्यते॥७॥

अब, बहिरात्मा को देह में आत्मबुद्धिरूप मिथ्यामान्यता किस कारण से होती है, वह बतलाते हुए कहते हैं —

आत्मज्ञान से हो विमुख, इन्द्रिय से बहिरात्म।
आत्मा को तनमय समझ, तन ही गिने निजात्म॥ ७॥

अन्वयार्थ - (बहिरात्मा) बहिरात्मा, (इन्द्रियद्वारैः) इन्द्रिय द्वारों से (स्फुरित) बाह्यपदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से, (आत्मज्ञान पराङ्गमुख) आत्मज्ञान से पराङ्गमुख-वञ्चित होता है; इससे वह (आत्मनः देहं) अपने शरीर को, (आत्मत्वेन अध्यवस्यति) मिथ्या अभिप्रायपूर्वक, आत्मारूप समझता है।

टीका - इन्द्रियोंरूप द्वारों से अर्थात् इन्द्रियोंरूप मुख से बाहर के पदार्थों के ग्रहण में रुका हुआ होने से, वह बहिरात्मा-मूढ़ात्मा है। वह आत्मज्ञान से पराङ्गमुख अर्थात् जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है। वैसा होता हुआ वह (बहिरात्मा) क्या करता है? अपनी देह को आत्मारूप मानता है अर्थात् अपना शरीर, वही 'मैं हूँ' — ऐसी मिथ्या मान्यता करता है।

भावार्थ - बहिरात्मा, बाह्यइन्द्रियों द्वारा जिन मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है, उन्हें मोहवश अपना मानता है। उसको अन्तर के आत्मतत्त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं; इस कारण वह अपने शरीर को ही, आत्मा समझता है अर्थात् शरीर, मन, वाणी की क्रिया जो जड़ की क्रिया है, उन्हें मैं कर सकता हूँ और मैं स्वयं उनका स्वामी हूँ—ऐसा मानता है।

जीव, त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। उसको बहिरात्मा अज्ञानवश नहीं जानता और बाह्य-इन्द्रियगोचर पदार्थ, जो मात्र ज्ञेयरूप हैं, उनमें इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके, अपने को सुखी-दुःखी, धनवान-निर्धन, सुरूप-कुरूप, राजा-रंक इत्यादि होना मानता है।

विशेष स्पष्टीकरण -

मिथ्याअभिप्रायवश अज्ञानी मानता है कि 'शरीर उत्पन्न होने से मेरा जन्म

हुआ; शरीर का नाश होने से मैं मर जाऊँगा; शरीर की उष्ण अवस्था होने पर, मुझे बुखार आया; शरीर की भूख-प्यास आदिरूप अवस्था होने पर, मुझे भूख-प्यास लगी; शरीर के कटने से मैं कट गया' — इस प्रकार वह अजीव की अवस्था को, अपनी (आत्मा की) अवस्था मानता है।

'........अपने को आपरूप जानकर, पर का अंश भी अपने में नहीं मिलाना और अपना अंश भी पर में नहीं मिलाना — ऐसा सच्चा श्रद्धान नहीं करता। जैसे - अन्य मिथ्यादृष्टि, निर्धार बिना पर्यायबुद्धि से जानपने में व वर्णादि में अहंबुद्धि धारण करते हैं; उसी प्रकार यह भी आत्माश्रित ज्ञानादि में और शरीराश्रित उपदेश-उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है।..... तथा पर्याय में जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियाएँ होती हैं, उन्हें दोनों द्रव्यों के मिलाप से उत्पन्न हुई मानता है किन्तु यह जीव की क्रिया है, उसका पुद्गल, निमित्त है; यह पुद्गल की क्रिया है, उसका जीव, निमित्त है — ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासित नहीं होता।[१]'

'जिसकी मति, अज्ञान से मोहित है और जो मोह, राग, द्वेष आदि बहुत भावों से सहित है, वह जीव ऐसा कहता है (मानता है) कि ये शरीरादि बद्ध और धनादि अबद्ध पुद्गलद्रव्य मेरे हैं।[२]' तथा

शरीरादि बाह्यपदार्थों में एकताबुद्धि करने से अज्ञानी को भ्रम होता है कि रस, रूप, गन्ध, स्पर्श और शब्द का जो ज्ञान होता है, वह इन्द्रियों से होता है तथा घट-पटादि का जो ज्ञान होता है, वह बाह्यपदार्थों से होता है किन्तु उसे ज्ञात नहीं है कि जीव को जो ज्ञान होता है, वह अपनी ज्ञानगुणरूप उपादानशक्ति से होता है। इन्द्रियाँ और घट-पटादि पदार्थ तो जड़ हैं, उनसे ज्ञान नहीं होता; ज्ञान होने में वे तो निमित्तमात्र हैं।

इस प्रकार बहिरात्मा अपने ज्ञानात्मकस्वभाव को भूलकर, शरीरादि परपदार्थों से अपना अस्तित्व मानता है अर्थात् वह शरीरादि परपदार्थों में ही आत्मबुद्धि करता है।।७।।

---

१. श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय ७, पृष्ठ-२२५

२. श्री समयसार, गाथा २३

श्लोक-७ पर प्रवचन

अब, बहिरात्मा को देह में आत्मबुद्धिरूप.... अब स्वयं पाठ में विस्तार करते हैं। अर्थ में तो किया है। बहिरात्मा अर्थात् कि **देह में आत्मबुद्धिरूप मिथ्या मान्यता...** स्थूल... यह ऐसा आत्मद्रव्य है, उसकी प्रतीति और अनुभव और उसकी श्रद्धा जहाँ नहीं, उसे राग और प्रगट अल्पज्ञता, इतने अंश में ही आत्मा है। अर्थात् यह अल्पज्ञता और राग, वह वस्तु के पूर्ण स्वभाव में नहीं है। इसलिए वह इतने माननेवाले को बहिरात्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **बहिरात्मा को देह में...** उस राग को भी वह सब स्थिति है। आहाहा! एक समय का प्रगट अंश, परन्तु वह व्यवहार है। समझ में आया? उसे जहाँ आत्मा मानता है, वह वस्तु के द्रव्य और गुण के परिपूर्ण में उस अल्पज्ञ का विकास है, वह उसमें नहीं। समझ में आया? इसलिए वह अल्पज्ञ और राग के ऊपर रुचिवाला होने से उस आत्मा में ऐसा अल्पज्ञपना और राग नहीं है, वह बहिर् है, उसे माननेवाला, उसे बहिरात्मा कहते हैं। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा! वह **आत्मबुद्धिरूप मिथ्यामान्यता किस कारण से होती है, वह बतलाते हुए कहते हैं —**

बहिरात्मेन्द्रिय-द्वारै-रात्मज्ञान-पराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवश्यति॥ ७॥

अन्वयार्थ - बहिरात्मा, इन्द्रिय द्वारों से बाह्य पदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से,.... क्योंकि उसे अतीन्द्रिय जो वस्तु है, उसका तो ज्ञान नहीं; इसलिए उसका इन्द्रिय की ओर के लक्ष्यवाला, इन्द्रिय की ओर के लक्ष्यवाला ज्ञान... है? **इन्द्रिय द्वारों से बाह्यपदार्थों को....** इन्द्रिय ज्ञान द्वारा तो बाह्य पदार्थ जानने में आवे या इन्द्रिय द्वारा अणीन्द्रिय आत्मा जानने में आवे? आहाहा! यह पर्याय में लक्ष्य किया है न? पर्याय में जो क्षयोपशमभाव है, वह भावेन्द्रिय है।

इन्द्रिय द्वारों से बाह्य पदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से,.... आहाहा! अर्थात्? कि ज्ञान का जो वर्तमान क्षयोपशम अंश है, वह भावेन्द्रिय है और वह भावेन्द्रिय द्वारा परवस्तु को लक्ष्य में लेता है। उस भावेन्द्रिय द्वारा स्व का लक्ष्य नहीं आ

सकता। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रिय द्वार से शब्द है न? भावेन्द्रिय द्वार से द्रव्य निमित्त में गया—द्रव्येन्द्रिय में और उससे बाह्य पदार्थ जानने में आते हैं। आहाहा! उसमें बाह्य पदार्थों को जानने में। ग्रहण करना अर्थात् जानना। पकड़ता कहाँ है वहाँ? आहाहा!

इन्द्रिय द्वारों से.... 'स्फुरितः' इन्द्रिय द्वार से उसे पर की स्फुरता जानने में आयी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **आत्मज्ञान से पराङ्गमुख...** ऐसा जो इन्द्रिय द्वार से जहाँ जानने का प्रयत्न है, उसे आत्मज्ञान पराङ्मुख है। आत्मा का जो ज्ञान उससे उल्टा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने समाधिशतक में भी.... समाधिशतक के सब श्लोक हैं उसमें, हों! शब्दकोश में। अलग-अलग कोई-कोई कहे हैं।

यहाँ कहते हैं कि उसे यहाँ आत्मा को.... यहाँ ग्रन्थ का नाम समाधिशतक है न? समाधितन्त्र है न? यह नाम किसलिए रखा? समाधितन्त्र। शतक। शतक तो यह श्लोक की (संख्या) के कारण से। तन्त्र। आत्मा अपनी चीज़ को अवलम्बकर हो, उसमें इन्द्रिय द्वार वहाँ काम नहीं करते। समझ में आया? और इन्द्रिय द्वारा जहाँ काम लेता है, तो उसमें से बाह्य पदार्थ ज्ञात होते हैं, स्व तो रह जाता है। आहाहा!

बाह्य पदार्थों को... जानने में। ग्रहण शब्द से जानना, हों! वापस कहेंगे, वहाँ कैसे.... ? जानने में। जानना **करने में प्रवृत्त होने से,.... इन्द्रिय द्वारों से... 'स्फुरित' बाह्यपदार्थों को ही ग्रहण करने में प्रवृत्त होने से, आत्मज्ञान से पराङ्गमुख...** आहाहा! जो आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ऐसे जाये और जाने, वह बात रह गयी। आहाहा! समझ में आया? **आत्मज्ञान से पराङ्गमुख...** आत्मज्ञान.... क्या कहा? इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ का ज्ञान और आत्मज्ञान से पराङ्मुख। समझ में आया? घर में एक ही (पुस्तक) होगी, नहीं? तुम्हारे एक भी नहीं? तुमने ली नहीं तब? तुम्हारे दादा ने ली नहीं होगी।

मुमुक्षु : दादा है नहीं, वे गये हैं वडोदरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! यहाँ रहते हैं तो (पुस्तक) नहीं ली होगी।

मुमुक्षु : उनके पास है।!

पूज्य गुरुदेवश्री : है? वहाँ रखी होगी। समझ में आया? प्रकाशित हुई है, थोड़ी

प्रकाशित हुई है। पन्द्रह सौ प्रकाशित हुई है। परन्तु अभी अब पन्द्रह सौ लोगों को.... लोग बढ़ गये। आहाहा!

इन्द्रिय द्वारों से.... ऐसा शब्द है न मूल पाठ में? बाह्य लक्ष्यवाला इन्द्रिय द्वारा जानने में रुकता है। और इन्द्रिय द्वारा तो बाह्य पदार्थ ज्ञात होते हैं। समझ में आया? और इससे उस आत्मा का ज्ञान जो चाहिए, ऐसा होकर (-स्वरूप सन्मुख होकर होना) चाहिए, उस आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। आहाहा! गजब बात है न! आस्रव को इन्द्रिय द्वारा जाने, कहते हैं। ऐई! आस्रव को, वाणी को इन्द्रिय द्वारा जाने।

मुमुक्षु : भगवान को इन्द्रिय द्वारा जाने....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को.... इसीलिए कहा न? **'जो इंदिये जिणित्ता'** ३१ (गाथा, समयसार)। अर्थात् कि भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और भगवान की वाणी, उनका शरीर और भगवान, वे सब इन्द्रिय हैं। क्योंकि यह इन्द्रिय द्वारा वे ज्ञात होते हैं। इसलिए सब इन्द्रिय है। आहाहा! बात.... भगवान तो अणीन्द्रियस्वरूप है। परन्तु उसे जाननेवाला इन्द्रिय द्वारा जाने, इसलिए उसका विषय वह इन्द्रिय हो गयी। उसके द्वारा बाह्य पदार्थ जाने। आहाहा! तो फिर कहा कि **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयेत्तेहिं'** यह भी इन्द्रिय द्वारा है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानना। इसलिए उससे आत्मा का ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

आत्मज्ञान से पराङ्गमुख.... है। इन्द्रिय द्वारा वह सन्मुख है, उसके सन्मुख है। इन्द्रिय द्वारा तो बाह्य पदार्थ जानने में आवे। भगवान हो या गुरु हो या शास्त्र हो या सम्मेदशिखर हो या शत्रुंजय हो; इन्द्रिय द्वारा जानने में आवे, तब अणीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, वह आत्मज्ञान से पराङ्मुख हो गया। ऐसी बातें हैं, प्रवीणभाई! बहुत सूक्ष्म बातें। ओहोहो! इसका माहात्म्य क्या करना! इसे अपनी चीज़ क्या है, उसे जानने का ज्ञान किया हो... ऐसा जो आत्मज्ञान, आत्मज्ञान कहा न? आत्मज्ञान। वह इन्द्रिय ज्ञान से होनेवाला बाह्य ज्ञान। आहाहा!

कहते हैं, **आत्मज्ञान से पराङ्गमुख-वञ्चित होता है;....** इन्द्रिय से ज्ञान करनेवाला बाह्य पदार्थ को जानते हुए स्वपदार्थ के ज्ञान से वंचित रहता है। .... फिर आया या नहीं

इसमें ? भगवान की वाणी और भगवान इन्द्रिय का विषय है, आया नहीं ? भाषा संक्षिप्त करने जाये तो लोगों भड़कते हैं। यह क्या कहते हैं ? इन्द्रिय द्वारा भावेन्द्रिय का जो क्षयोपशम है, उसके द्वारा द्रव्येन्द्रिय को निमित्त बनाकर, निमित्त होता है बीच में और बाह्य पदार्थ। समझे ? आहाहा ! समझ में आया ? ऐई ! नवरंगभाई ! आहाहा ! यह आत्मज्ञान पराङ्मुख हो गया। आहाहा !

इन्द्रिय द्वारा सुने, इन्द्रिय द्वारा भगवान को देखे, इन्द्रिय द्वारा समवसरण को देखे, वह तो बाह्य पदार्थ का जानना हुआ। समझ में आया ? बाह्य पदार्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने तो इन्द्रिय द्वारा जाने, ऐसा हुआ। ऐई ! और वह आत्मा को जाने, ऐसा वापस आया। बाह्य इन्द्रिय द्वारा जाने, वह आत्मा को जाने। आत्मा को जाने। आहाहा ! समझ में आया ? यह सब निमित्त के कथन हैं। ऐसे अन्तर में आत्मज्ञान करे तो फिर यह बाह्य निमित्त था वह ज्ञान, उसका ज्ञान, हों ! उस ओर का ज्ञान। परलक्ष्यी ज्ञान है। उसे छोड़कर जब स्व का आश्रय करे, तब परलक्ष्यी ज्ञान को निमित्त कहा जाता है। आहाहा ! तो निमित्त ने कुछ किया नहीं वापस उसका। यह सब विवाद। आहाहा !

यह चश्मा और आँख न हो जड़ तो आत्मा को ज्ञान की पर्याय होगी ? खिले कहाँ से ? ज्ञात कहाँ से हो ? अरे ! भाई ! तुझे तो अभी परलक्ष्यी ज्ञान की स्वतन्त्रता की भी खबर नहीं। भगवान की वाणी और भगवान दिखे और शास्त्र सुने, इससे वह ज्ञान हुआ। परलक्ष्यी ज्ञान भी स्वतन्त्र अपने से हुआ है। इन्द्रिय द्वारा हुआ है। समझ में आया ? आहाहा ! दिगम्बर आचार्यों के गहन शास्त्र, गम्भीर शास्त्र गहरे-गहरे ले जाते हैं। आहाहा !

कोई ऐसा कहे कि तू भगवान की वाणी सुन, भगवान के दर्शन कर, तुझे आत्मा ज्ञात होगा। वह मिथ्या बात हुई। ऐई ! यह छह कर्तव्य हैं न श्रावक के ? यह समकिती के हैं। छह बोल। देवपूजा, गुरुसेवा.... है न ? सेवा, संयम, तप, दान। आहाहा ! वह विकल्प है, वह पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ है, अपना स्वभाव नहीं। समझ में आया ? और उसके लक्ष्य से इन्द्रिय द्वारा जो हुआ, उस ज्ञानवाले को परपदार्थ का (ज्ञान) हुआ। भगवान रह गया। स्वपदार्थ जो त्रिलोकनाथ चैतन्य परमात्मा.... आहाहा ! अरे ! यह

परलक्ष्यी जो बहिर्ज्ञान इन्द्रिय द्वारा ज्ञान (होता है), उस द्वारा आत्मज्ञान नहीं होता। और इन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान हुआ, वह वाणी से भी हुआ नहीं। उस समय के उस प्रकार के इन्द्रिय द्वार का क्षयोपशम का अंश है, इसलिए हुआ है। आहाहा! समझ में आया? तो उसके द्वारा आत्मज्ञान हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं, वह तो आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। ऐई! क्योंकि ऐसे (स्व) सन्मुख नहीं, इसलिए ऐसे (पर) सन्मुख है। ऐसे सन्मुख है वह आत्मज्ञान से विमुख है। आहाहा! वह **वञ्चित होता है;....** पराङ्मुख की व्याख्या की।

इन्द्रिय द्वारा परपदार्थ का ज्ञान करनेवाला आत्मपदार्थ के ज्ञान से वह वंचित रहता है। आहाहा! पराङ्मुख का यह अर्थ किया। समझ में आया? श्रवण (हो), उसमें कान का निमित्त है। क्षयोपशम और उसमें एक विकल्प है। और क्षयोपशम का अंश है। परन्तु उस क्षयोपशम के अंश में तो बाह्य पदार्थ का ख्याल आने पर, बाह्य पदार्थ के जानने में रुकने से, आत्मज्ञान से वंचित रहता है। है? आहाहा! क्या शैली! क्या बात! बात बहुत (सूक्ष्म)। पूज्यपादस्वामी ने बहुत ही अनुभव में से उन्होंने स्व और पर की विभाजन करके बात की है। समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! भाग्यशाली इकट्ठे हुए हैं। ऐसी बातें, बापू! आहाहा! सुनने की अपेक्षा से तो भाग्यशाली हैं। अन्तर में भाग्यशाली हो तो.... यह तो परसन्मुख में जाने की जो इन्द्रिय द्वार की क्रिया (होती है) वहाँ तो आत्मज्ञान, द्रव्य का ज्ञान, आत्मवस्तु का ज्ञान, उससे पराङ्मुख है। ओहोहो! अब यह भगवान के दर्शन करे अरिहन्त के या प्रतिमा के या मन्दिर के.... वह इन्द्रिय द्वारा वहाँ रुका, वह आत्मा से, आत्मा के ज्ञान से, आत्मद्रव्य के—स्वद्रव्य के ज्ञान से, परद्रव्य के इन्द्रिय द्वारा ज्ञान (के कारण से), स्व द्वारा होनेवाले ज्ञान से वंचित रह गया। आहाहा! ऐई! समझ में आया?

इससे वह... 'आत्मनः देह' अपने शरीर को,.... 'आत्मत्वेन अध्यवस्यति' क्योंकि इन्द्रिय द्वारा परपदार्थ को जानने का भाव, उसमें उसे यही वस्तु मैं हूँ, यह ज्ञान हुआ न पर का? वह सब वास्तव में तो यह शरीर ही है, वह पर। वह अचेतन ज्ञान है। वह अचेतन ऐसे देह को ही उसमें आत्मा माना। आहाहा! **अपने शरीर को मिथ्या**

अभिप्रायपूर्वक, आत्मारूप समझता है। आहाहा! गजब बात है! यह तो शान्ति से समझनेयोग्य बात है।

जिसे इन्द्रिय द्वारा.... इन्द्रिय द्वारा तो परपदार्थ है वहाँ। भगवान आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। अलिंगग्रहण में, अलिंगग्रहण में आता है। आत्मा इन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो या इन्द्रिय द्वारा जाने, वह आत्मा ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! यहाँ तो वहाँ गया। क्या कहा? आत्मा इन्द्रिय से जानता नहीं और इन्द्रिय से ज्ञात होता नहीं। दो शब्द है न? अलिंगग्रहण का पहला बोल। अब यहाँ ऐसा कहना है कि इन्द्रिय से ज्ञात नहीं होता। तो इसका अर्थ यह हुआ कि इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ ज्ञात हो, उसमें स्वआत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! बाह्य पदार्थ ज्ञात हो, वह चैतन्य के अभावस्वभावरूप भाव हुआ। इसलिए उसे शरीर ही कह दिया, पर। समझ में आया?

पर को जानने इन्द्रिय द्वारा जाना, वह चैतन्यस्वरूप ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! इसलिए वह वास्तव में तो अचेतनस्वरूप है। वह चैतन्य का ज्ञान नहीं, इसलिए उसके अतिरिक्त के सभी पदार्थ यह चेतन नहीं है। समझ में आया? अर्थात् यह सब अचेतन हो गया। उपयोग भी अचेतन हुआ। आहाहा! इन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो, वह आत्मा (ऐसा मानता है), उसने शरीर को और पर को ही अपना माना है। अथवा इन्द्रिय द्वारा होनेवाला जो ज्ञान, वह ज्ञान मेरा है, वह तो अचेतन को ही मानता है। आहाहा! समझ में आया?

अपने '**आत्मनः देहं**' '**आत्मनः देहं**' यह आत्मा-देह, उसे न (भिन्न) मानता हुआ यह आत्मा, (वह) देह। समझ में आया? यह सोनगढ़ में चले। मुम्बई में ऐसा करने जाये तो भागे। क्या लगायी है यह? बापू! वस्तु तो भगवान, उसके पक्ष में पिंखता तो ऐसा निकले। इन्द्रिय के पक्ष से, पर के पक्ष से जो जाना, वह आत्मा का ज्ञान नहीं, वह तो अजीव का ज्ञान हुआ। आहाहा! वह जीव उसमें नहीं। उसका इसे ज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा! यह अर्थ किया। इसकी टीका करेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मगसिर शुक्ल ११, बुधवार, दिनांक २५-१२-१९७४, श्लोक-७, प्रवचन-१५

बहिरात्मा क्या मानता है और उसे बहिरात्मा क्यों कहना? यह व्याख्या चलती है।

टीका - इन्द्रियोंरूप द्वारों से अर्थात् इन्द्रियोंरूप मुख से.... इसकी.... है। इन्द्रियों के मुख से अर्थात् उन द्वारों से। आहाहा! **बाहर के पदार्थों के ग्रहण में रुका हुआ होने से,...** ग्रहण अर्थात् जानना। समझ में आया? गुजराती है। अभी हिन्दी नहीं चलता। यह गुजराती है न। सवेरे हिन्दी चलता है। यह तो गुजराती पाठ है न। यह समझ में न आये ऐसा है। अभी गुजराती है। पुस्तक गुजराती है। और सवेरे हिन्दी है। थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखना। गुजराती में है और गुजराती में आवे तो हिन्दी में ऐसा नहीं आता। रूकना पड़ता है।

यह आत्मा उसे कहते हैं कि जो बाह्य इन्द्रिय द्वारा.... एक तो भावेन्द्रिय जो है, वह क्षयोपशम की एक पर्याय है—ज्ञान की एक पर्याय है। उसे निमित्त द्रव्येन्द्रिय है। और उसे जानने की चीज़ वह निमित्त है। इसलिए यहाँ तो भावेन्द्रिय द्वारा और उसके द्रव्येन्द्रिय के मुख से अर्थात् उसकी ओर से जो बाह्य पदार्थ का ग्रहण-रूका हुआ हो। वहाँ बाहर के जानने में वह ज्ञान रूका है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि जो पर्याय के ऊपर जिसकी बुद्धि है, पर्याय के ऊपर, वह भावेन्द्रिय द्वारा, द्रव्येन्द्रिय उसमें भले निमित्त हो, परन्तु द्रव्येन्द्रिय की पर्याय और भावेन्द्रिय की पर्याय के बीच भी अत्यन्त अभाव है। तथापि वह इन्द्रिय द्वारा ऐसा जो जाता है जानने, तब उसे बाह्य पदार्थ का ज्ञान होता है। तो बाह्य पदार्थ के ज्ञान में वह रूका है। **वह बहिरात्मा-मूढ़ात्मा है।** जो यह आत्मा अपने ज्ञान की पर्याय से अन्तर्मुख होकर जानना चाहिए.... समझ में आया? उसके बदले यह बाह्य इन्द्रियों का (उघाड़रूप) पर्याय जो भावेन्द्रिय है, वह वास्तव में आत्मा नहीं है। भावेन्द्रिय की पर्याय वह वास्तव में आत्मा नहीं है। क्योंकि उसे तो ऐसा कहा है कि उसे जीते वह जितेन्द्रिय कहा जाता है। उनसे जाने तो जितेन्द्रिय कहलाता है, ऐसा नहीं कहा। ३१वीं गाथा। इसलिए वह भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और उससे ज्ञात होते पदार्थ, इन तीनों को वास्तव में तो इन्द्रिय

कहा है। तीन को इन्द्रिय कहा। ३१ गाथा (समयसार)। आहाहा! अर्थात् कि इन्द्रिय का जो ज्ञान, इन्द्रिय द्वारा जो होनेवाला ज्ञान, वह इन्द्रिय (ज्ञान है)। द्रव्येन्द्रिय तो जड़ की पर्याय, भावेन्द्रिय चैतन्य क्षयोपशम का विकास, दो के बीच भी अत्यन्त अभाव है। और उससे जो जानने की चीज़ है वर्तमान पर्याय बाह्य, वह द्रव्य.... तो (दोनों के) बीच में भी, जानने की पर्याय को और ज्ञात हो, ऐसी चीज़ को अत्यन्त अभाव है। मूलचन्दभाई! यह सब इसमें गहरा उतरना पड़ेगा। आहाहा! उसे जानने में रूका हुआ ज्ञान.... आहाहा! वह आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। आहाहा! भाषा तो देखो! आचार्य ने कैसी शैली रखी है! आहाहा!

भगवान आत्मा अपनी ज्ञान की पर्याय द्वारा जिसकी वह पर्याय है, उसे जानना चाहिए। ज्ञान उसका लक्षण है। तो लक्षण द्वारा लक्ष्य को जानना चाहिए। समझ में आया? यह चैतन्यस्वरूप हूँ, यह ज्ञान द्वारा जानना चाहिए। ऐसा न जानकर उस पर्याय के मुख से बाह्य चीज़, बाह्य पदार्थ को जो जानता है, चैतन्य का उसमें अभाव है। वास्तव में तो वर्तमान भावेन्द्रिय की पर्याय में भी चैतन्यस्वभाव का अभाव है। द्रव्येन्द्रिय की पर्याय में चैतन्यस्वभाव का अभाव है। और सामने जाननेयोग्य जो पदार्थ है, उसकी पर्याय में या उसके द्रव्य-गुण में इस चैतन्य का तो अभाव है। आहाहा! तथापि उसे यह मानकर कि यह मेरा है, यह ज्ञान मुझे हुआ मुझमें और वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? वह बहिरात्मा है।

यह चैतन्य जो वस्तु है देह से भिन्न, राग से भिन्न, यह वस्तु जो आत्मा है— आत्मपदार्थ, उसकी मौजूदगी, उसका अस्तित्व, उसकी सत्ता का अस्तित्व, वास्तव में तो शरीर के अस्तित्व से भी उसका अस्तित्व भिन्न है। वह जड़ है, वह मिट्टी। यह इन्द्रिया मिट्टी जड़ अजीव है। उसकी पर्याय से भी इसका भिन्नपना है। और वास्तव में तो राग होता है कोई दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का, उस राग से भी इसका अस्तित्व भिन्न है। और एक समय की जो भावेन्द्रिय का क्षयोपशम है (उससे भी इसका अस्तित्व भिन्न है)। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! तत्त्व की ऐसी बातें हैं। दुनिया को कुछ पड़ी नहीं। मेरा क्या होगा? यह सब करते हैं और यह करना, उसमें उलझकर मर जाता है। आहाहा!

ऐसा तत्त्व जो है, उसे राग से, पर के जानने के लक्ष्य से अथवा पर से (हटकर).... आहाहा! अन्तर्लक्ष्य करके जो अपने को जानना चाहिए, इसका नाम सम्यग्ज्ञान, सम्यक् प्रतीति और सम्यक् आचरण कहा जाता है। आहाहा! वह सम्यक् प्रतीति, ज्ञान और आचरण को छोड़कर.... आहाहा! जो ज्ञान की दशा का वर्तमान विकास है, उसमें कहीं पूरा आत्मा नहीं है। पूरा तत्त्व तो एक समय की दशा से-हालत से भिन्न तत्त्व है। आहाहा! वह पर्यायबुद्धिवाले को यहाँ शरीरबुद्धिवाला कहते हैं। समझ में आया? कि जिसमें चैतन्य वस्तु भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप नित्यानन्द ध्रुव, उस ध्रुव का जिसमें लक्ष्य रहा नहीं और उसकी वर्तमान दशा के मुख से बाहर में देखने से बाह्य पदार्थ को जाने, उसे जाने, उसे माने कि यह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि जो अस्तित्व उसका अपना पूरा है—महाप्रभु चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पुंज प्रभु आत्मा, कहाँ देखना? किसे देखना? किसे पड़ी है अन्दर? आहाहा! अनन्त काल से क्यों भटकता है, यह बहिरात्मा की व्याख्या करते हैं।

भगवान आत्मा चैतन्यदल है। वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्तित्व चीज़ है। तो वह अस्तित्व अर्थात् मौजूदगीवाली चीज़, वह तो आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसे अस्तित्व को उसके सन्मुख देखे बिना.... बहिर्मुख कहा था न यहाँ? इन्द्रिय द्वार को मुख्य कहा। उन्होंने डाला है, टीका में ही डाला है। **इन्द्रियोंरूप द्वारों से अर्थात् इन्द्रियोंरूप मुख से...** उसे इन्द्रियमुख हो गया..... भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के रस से भरपूर वह तत्त्व आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा को अस्तिरूप से उसे देखने को न जाकर, उसकी अस्तित्वता का स्वीकार न करके वर्तमान विकास का अंश है, उस अंश द्वारा द्रव्येन्द्रिय को निमित्त बनाकर.... आहाहा! और पर को जाने, वह तो बाह्य पदार्थ को जानता है। उसमें चैतन्य नहीं आया। बस! भारी कठिन काम, भाई! ऐसी किसे निवृत्ति है? यह सब पाँच-पचास लाख पैसे (रुपये) मिले। ऐई... सेठ! पोपटभाई! यह करोड़, दो करोड़ मिले। क्या है?

मुमुक्षु : धूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है। आहाहा! किसे मिले? भाई! तुझे खबर नहीं। पैसा, वह जड़ चीज़ है। लक्ष्मी, पैसा वह जड़-अजीवतत्त्व है। वह अजीवतत्त्व अजीव में रहा हुआ है। वह अजीवतत्त्व जीव में आया और जीव में रहा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! तथापि उस अजीवतत्त्व को देखने जाता है इन्द्रिय द्वारा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जानने जाये, इतनी बात यहाँ है न। ऐसे इन्द्रियों द्वारा पर के ऊपर लक्ष्य करके यह पदार्थ है.... यह पदार्थ है.... ऐसे जानने जाता है। ऐसे बहिर्मुख भाव को अज्ञानी अपना मानता है। वह मूढ़ है, वह मिथ्यादृष्टि है, वह झूठी असत्यदृष्टि का सेवन करनेवाला है, वह झूठे को सेवन करनेवाला है। वह सच्चे को सेवन नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

....भगवान आत्मा सच्चिदानन्द—सत् चिद् आनन्दकन्द है। यह आत्मा.... कहाँ किसे पड़ी है? यह कहाँ है? कौन है? ऐई! नौतमभाई! यह पैसे पैदा हों पाँच-पचास लाख, दस लाख, धूल लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़। हो गया। हम बढ़ गये। दूसरे की अपेक्षा बढ़े। बाहुबल से (बढ़े) पिता के पास नहीं था और हमने स्वयं ने कमाया है। क्या कमाया? धूल? वह तो परचीज़ है। यह कमाने का तो नहीं परन्तु परचीज़ को देखने जाती जो ज्ञान की दशा.... आहाहा! वह परपदार्थ को जानती है। उसमें भगवान आत्मा रह गया। यह कहते हैं, देखो! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो अनन्त काल की भूल कैसे रही है और यह भूल मिटे बिना इसके जन्म-मरण मिटें, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह यह भूल रही कि जो महाप्रभु अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान के अस्तित्वपने विराजमान वस्तु आत्मा है। उसका अन्तर का जो स्वभाव है ज्ञान-आनन्द, उस ज्ञान द्वारा उसे नहीं जाना। उसके अस्तित्व को नहीं जाना और उस ज्ञान की वर्तमान पर्याय द्वारा जो दूसरा अस्तित्व, उससे भिन्न है, (उसे जानने में रूका)। ऐसा कहा न? देखो न! **बाहर के पदार्थों के ग्रहण में रुका हुआ होने से,....** उससे भिन्न पदार्थ को जानने में रुका। आहाहा! ऐई! कान्तिभाई! यह तो अवलदोम की बातें हैं। भाई! जगत के साथ मिलान नहीं खाता। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि जो वस्तु है—सत् अस्ति तत्त्व अनादि है। उसकी कोई उत्पत्ति नहीं,

उसका कोई नाश नहीं। सत् है, उसकी उत्पत्ति क्या? और सत् है, उसका अभाव / नाश क्या? आहाहा! ऐसा जो सत् स्वरूप भगवान, उसकी दशा से—जिसकी वह पर्याय है और वह लक्षण है ज्ञान, उस ज्ञान के लक्षण द्वारा लक्ष्य अर्थात् प्रभु आत्मा को जानना चाहिए। तो वह आत्मज्ञान हुआ। इस ज्ञान की पर्याय द्वारा बाह्य पदार्थ में जानने में रुका हुआ आत्मज्ञान से वंचित है। आहाहा! वह **आत्मज्ञान से पराङ्गमुख....** है। ऐसी भाषा है न?

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्यघन है, उसके ज्ञान से पर द्वारा (होते) ज्ञान में रुका हुआ आत्मा के ज्ञान से ठगा गया है, वंचित है। आहाहा! ऐई! गिरधरभाई! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! वे कहे दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो.... क्या करे? सुन न अब। वे तो सब विकल्प हैं। समझ में आया? आहाहा! यह राग और आत्मस्वभाव के बीच तो अत्यन्त अभाव है। यह तो आता है न? यह राग जो होता है—दया, का, दान का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का, भगवान का स्मरण करते हैं, वह सब राग है। वृत्ति का उत्थान है। वृत्ति उठती है वह राग है। उस राग में और कर्म के उदय में, जड़ का जो उदय है, उसकी पर्याय में और इस राग की पर्याय के बीच अत्यन्त अभाव है। तथापि इसके सद्भाव को जानने में रुक गया हुआ। आहाहा! ऐई! और उस राग को तथा भगवान आत्मा का जो ज्ञान होता है, स्वरूप चैतन्य का ज्ञान होता है, अनुभव होता है, ऐसी दशा को और राग को, दो के बीच भी अत्यन्त अभाव है। आहाहा! समझ में आया? उसे, अन्तर अभावस्वभावरूप मेरा भाव है, उसे जानने नहीं आकर.... आहाहा! वह ज्ञान की दशा बाह्य पदार्थ को उसके मुख द्वारा जानने में रुकी हुई.... आहाहा! उसे यहाँ बहिरात्मा मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा! चाहे तो नौ पूर्व का पढ़ा हुआ हो, ग्यारह अंग के जानपनेवाला हो। आहाहा! परन्तु उस पदार्थ द्वारा तो बाह्य पदार्थ जाना। समझ में आया? जब इसे चैतन्य कहते हैं, तो इस प्रकार परपदार्थ का जानना, वह सब अचेतन और शरीर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **आत्मज्ञान से पराङ्गमुख अर्थात् जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है।** आहाहा! कैसी शैली रखी है! जो वर्तमान ज्ञान के विकास के क्षयोपशम के अंश द्वारा

अर्थात् इन्द्रिय द्वारा। भावेन्द्रिय है न? पर को देखने में रुका हुआ, पर को पकड़ने में नहीं, भाई! .... यहाँ से लिया। मात्र ज्ञान पर को जानने में रुका हुआ। इतना कहा। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो तत्त्व की बातें हैं, बापू! इसमें अनन्त काल से यह जाना नहीं। बाकी सब चतुराई की और मर गया सब कर-करके। आहाहा! अरबोंपति अनन्त बार हुआ मनुष्य होकर। क्या किया? पाखण्ड सेवन किया— मिथ्यात्वभाव सेवन किया। आहाहा!

यहाँ तो बाहर को जानने में रुका हुआ पर्यायवाले को बहिरात्मा कहते हैं। गजब बात है। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ जो अन्दर है, भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मीवान, वह तेरा स्वरूप है। ऐसे ज्ञान और आनन्द के स्वरूप को देखने की पर्याय से देखा नहीं और वह पर्याय—देखने की पर्याय पर को देखने में रुक गयी। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मज्ञान से वंचित हो गया। आहाहा! यह भगवान अपने ज्ञान से पराङ्मुख हो गया। आहाहा! बापू! यह तो परमसत्य की बातें हैं। अर्थात् यह जरा ग्राह्य होना कठिन है। इसने अनन्त काल में यह किया नहीं। इसने सत्य सुना नहीं। सत्य सुना नहीं। ऐसा आता है न? भाई! श्रीमद् में आता है। ....इसका अर्थ कि यह वस्तु है... आहाहा! पूर्ण वस्तु है, उसकी शक्ति और स्वभाव तो पूर्ण है। वस्तु है न आत्मतत्त्व! आहाहा! वह परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर प्रभु, उसे ज्ञान द्वारा इसे देखना-जानना चाहिए, ऐसा छोड़कर, आत्मज्ञान से पराङ्मुख होकर.... आहाहा! अकेले शास्त्र को जानने गया इन्द्रिय द्वारा, वह बाह्य पदार्थ को जाना। आहाहा! सुजानमलजी! यह तो बातें ऐसी हैं, बापू! जन्म-मरण से छूटने की पद्धति कोई अलौकिक है। और जन्म-मरण करने की पद्धति का भाव कोई साधारण नहीं है, अज्ञान बड़ा है।

कहते हैं, **वैसा होता हुआ....** भाषा ऐसी है न? क्या कहते हैं? कि इन्द्रियोंरूपी यह जड़ और अन्दर भावेन्द्रिय.... इस मुख से बाहर के पदार्थों को शरीर को, वाणी को, कर्म को, इस स्त्री को, कुटुम्ब को, पैसे को, इज्जत को, धूल और धमाका.... पोपटभाई! उन्हें जानने में रुका हुआ, कहते हैं। नवनीतभाई! आहाहा! इसका अर्थ हुआ कि उसे जानने में रुका हुआ अर्थात् वह मैं हूँ, ऐसा इसे हो गया। क्योंकि वह जो अस्तित्व है,

महाप्रभु, महा चैतन्य गंज आत्मा आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, उसके अस्तित्व को अस्तिरूप से स्वीकारने में नहीं आया, तब कहीं हूँ, ऐसे स्वीकार बिना यह किस प्रकार रहेगा ? समझ में आया ? ऐई ! टोलिया ! समझ में आया या नहीं यह ? गजब भाई ! ऐसी बात कहाँ से निकाली ? कहते हैं। कोई तो कहे, यह नयी निकाली है। अरे ! भगवान ! तुझे खबर नहीं, बापू ! यह तो भगवान की अनादि की बात है। आहाहा !

ओहोहो ! गाथा की शुरुआत करते हुए इन्द्रिय द्वारा.... आहाहा ! अतीन्द्रिय स्वरूप भगवान आत्मा। स्वयं तो अतीन्द्रिय स्वरूप है। इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा वह है नहीं। यह इन्द्रिय यह जड़ मिट्टी या भावेन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसे भगवान का ज्ञान न करके.... भगवान अर्थात् आत्मा, हों ! वापस दूसरे भगवान उनके घर रहे। वे भगवान कुछ देते नहीं और लेते नहीं। आहाहा !

अपना स्वभाव पूर्ण है, एकरूप है, सत्त्व है, महापूर्ण स्वभाव से अस्तिरूप से-सत्तारूप से-मौजूदगीरूप से रहा है। आहाहा ! ऐसे महा अस्तित्व के सत्ता को न जानकर यह आत्मज्ञान से विमुख होकर पराङ्मुख (हुआ)। देखा ! भाषा देखो ! आहाहा ! चन्दुभाई गये, नहीं ? गये। समझ में आया ? यह आत्मज्ञान जो आत्मा वस्तु है। किसका ज्ञान ? उस दशा में उसका ज्ञान। उसकी पर्याय में—अवस्था में उसका ज्ञान। उसका ज्ञान न होकर, उसमें नहीं है, ऐसी जो बाह्य चीज़ें, उनमें इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ को जानने से वहाँ ज्ञान रुका है। वह रुका, वह बहिरात्मा है, कहते हैं। आहाहा ! इसने शरीर को और बाह्य पदार्थ को मेरा माना। आहाहा ! समझ में आया ? जिसे देखने की गरज हुई, उसे अपना माना। स्वयं को देखने की गरज हो तो अपने को माने। आहाहा ! अरे ! मार्ग, यह मार्ग !

वह बहिर्भूत.... **जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है।** वह पर को जानने का भाव ही बहिर्मुख है। ऐसे चैतन्य भगवान... मूल की बातें बिना फिर व्रत करो, तप करो और अमुक (करो)। आज उपादान-(निमित्त) का बहुत बड़ा लेख आया है। बड़ा लेख आज आया है। जैनशासन में। कल आया था। समय मिले तब हो न। ऐसी गड़बड़ की है, यहाँ के विरुद्ध की। किसी आर्यिका ने लिखा है, दोनों से काम होता है। उपादान से

और निमित्त से। कोई कहे कि अकेले उपादान से होता है। अरे! सुन न! उपादान क्या, उसकी पर्याय से होता है। उसकी वर्तमान पर्याय द्रव्य से नहीं होती। आहाहा! अरे! क्या हो? जगत लुटाया है और लुटता है उत्साह से। उत्साह से लुटता है। निमित्त दूसरी चीज़ है। निमित्त दूसरी चीज़ है, परन्तु उसकी पर्याय का अस्तित्व और इसकी पर्याय का अस्तित्व—दो के बीच तो अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव जिसमें है, वह चीज़ यहाँ काम करे? बहुत कठिन बात है। पण्डित पढ़-पढ़कर पढ़े, काशी के पठन किये परन्तु आत्मा को पढ़ा नहीं वह। समझ में आया?

अरे! जन्म-मरण के दुःख, बापू! चौरासी के अवतार.... आहाहा! यहाँ करोड़पति हो और जहाँ आँख बन्द हो जाये, ढेढगरोली के गर्भ में। आहाहा! पोपटभाई! यहाँ अरबोंपति हो। अरबोंपति अभी मर गया न? शान्तिलाल खुशाल। गोवा-गोवा। दशाश्रीमाली बनिया, नहीं? दो अरब चालीस करोड़। दो सौ चालीस करोड़। धूल का-जड़ का ढ़ेर। वह जड़ की पर्याय और आत्मा की दशा में अत्यन्त अभाव है।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि जिसका अत्यन्त अभाव है, उसे जानने में रुका हुआ ज्ञान। ऐसा कहना है। ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? जिनके बीच अत्यन्त अभाव है। यह दो अँगुलियाँ है या नहीं? देखो! इसमें इसका अभाव है, इसका इसमें अभाव है। नहीं तो दो स्वतन्त्र नहीं रह सकेगी। स्वयं अपने से रही है और इस अंगुली से रही नहीं है। यदि इससे रही हो तो अँगुली टूटने से यह भी टूट जानी चाहिए।

इसी प्रकार आत्मा अपने स्वभाव के अस्तित्व से रहा हुआ है। वह पर के अस्तित्व से और राग के अस्तित्व से रहा है, ऐसा वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह सब स्त्री, पुत्र, परिवार, निर्वाह करनेवाले लड़के। पोपटभाई! तुम्हारे छह-छह लड़के। खम्मा-खम्मा करके। वह.... तब कोई नहीं आया था। आहाहा! अरे! दुनिया! जिसे देखना है, उसे देखता नहीं। जो चीज़ तुझमें है, उसे तू देखता नहीं और जो तुझमें नहीं, उसे देखने में रुका हुआ है। भाषा प्रयोग की, देखो न! आहाहा! वह बहिरात्मा है। समझ में आया? बहिर् वस्तु को वह जानने में रुका हुआ, उसे बहिरात्मा कहते हैं। मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मूढ़ है। आहाहा! यह सब एल.एल.बी. के

पूंछड़े लगाये हों न। एम.ए. के और यह वकील सब बड़े.... आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! एक बार शान्ति से सुन, भगवान! तेरी चीज़ के अन्दर अस्तिवाला पदार्थ और जिसमें वह चीज़ नहीं और उस चीज़ में तू नहीं। बराबर है? यह शरीर मिट्टी है, यह तो मिट्टी-धूल है। इसमें कहाँ आत्मा है? और आत्मा में शरीर है? आत्मा चैतन्यमूर्ति और यह तो जड़रूप है। ऐसे स्त्री, पुत्र, परिवार, देश में यह आत्मा है वहाँ? और आत्मा हैं वे? और उनके कारण आत्मा रहा हुआ है? आहाहा! ऐसा जो आत्मा। यहाँ तो पहली भाषा में ऐसा डाला है। आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। यह क्या कहते हैं? पर को जानने के ज्ञान में रुका हुआ आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। आहाहा! यह समाधिशतक चलता है, भाई! समाधिशतक है। पूज्यपादस्वामी का है। ....आये हैं सब विनती करने। यह श्रद्धावाले हैं। जिज्ञासु हैं। इनके पण्डित.... तुम। मार्ग यह है, बापू! इसमें पण्डित क्या करे? पढ़-पढ़कर पण्डित (हो गये)। पण्ड्या पण्ड्या छिलका खण्ड्या। आहाहा!

भगवान चिदानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, जिसकी पूर्ण शक्तियाँ एक-एक, ऐसा पूर्ण रूप जिसका, उसके ज्ञान से पराङ्मुख होकर.... आहाहा! जो इसमें नहीं उसके ज्ञान में जानने में रुका हुआ। आहाहा! उसे बहिरात्मा (कहते हैं)। अन्तरात्मा है, वह पड़ा रहा उसे। वह बहिरात्मा मूढ़ अज्ञानी चार गति में भटकनेवाला। चाहे तो राजा हो, चाहे तो महन्त हो और चाहे तो काशी में पढ़ा हुआ बड़ा पण्डित हो। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सन्त-दिगम्बर मुनियों की क्या बात! आहाहा! एक-एक शब्द में कितनी गम्भीरता! कितना रहस्य भरा है!! बात करते हैं साधारण ऐसी मानो। बहिरात्मा इन्द्रिय द्वारा परपदार्थ को जानता है, इतना। वह आत्मज्ञान से पराङ्मुख है। यह तो मन्त्र है, भगवान! यह तो सन्तों के मन्त्र हैं। समझ में आया? आहाहा!

वह ज्ञान से बहिर्भूत... **जीवस्वरूप के ज्ञान से बहिर्भूत है।** वह पराङ्मुख कहा था। उसमें वंचित कहा था, भाई! अर्थ में। पराङ्मुख (का अर्थ) वंचित किया, यहाँ बहिर्भूत कहा। अर्थात् कि यह इन्द्रिय द्वारा.... अरे! तीन लोक के नाथ को जानने में रुके, वह ज्ञान भी बहिर्मुख—बाहर है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन बातें। यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा कुछ नहीं है। अन्तर का विषय जहाँ....

आहाहा! अरे! उसे सुनने को मिले नहीं। और यह जगत की चीज़ें उल्टी, इसे सब सुनने का और जानपने का और चतुर का पुत्र होकर बैठे। नरोतमभाई! धन्धे की बातें करने बैठे तो कैसा होशियार!

एक बार कहा नहीं था? कोलाबा-कोलाबा। कोलाबा है न वह? मुम्बई। आहाहा! धड़ाधड़। यह (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। ६४ के वर्ष में दुकान से-पालेज से माल लेने गये। ६४ वाँ वर्ष, तब १८ वर्ष की उम्र थी। वहाँ कोलाबा देखने गये। मैंने कहा, चलो न, क्या करते हैं यह सब सटोरिया? एक मारवाड़ी कहे कि लिया.... दिया.... लिया.... दिया.... ऐसा करे। वहाँ कोलाबा आता है न वह क्या कहलाता है? वहाँ अमेरिका का भाव आता है। गये थे ६४ के वर्ष में। यह क्या करता है? दो... और लो... मस्तिष्क फट गया। बड़ा मूर्ख परन्तु, हों! ऐई! ऐसा होगा? तुम्हारे लड़के.... दूध पिया नहीं था? उसने वहाँ दूध पिया था। फिर नयी जमीन ली थी न पाँच सौ वार की? पाँच सौ रुपये का एक वार। पन्द्रह सौ वार क्या कहा? पन्द्रह सौ वार ली थी। यहाँ बँगला बनाना है। पाँच करोड़ रुपये। यहाँ डालना होगा कुछ लाख-दो लाख। महाराज! चरण करो। क्या है यह कहा? अर्थात् यह बँगला अच्छा हो तो मैं सुखी होऊँ!

बापू! तेरा तत्त्व रखना है ठीक या बाहर का रखना है ठीक? आहाहा! बाहर का ठीक रखने का मिथ्या प्रयास करता है, वह मूढ़ बहिरात्मा है। अन्दर का ठीक रखना, वहाँ टल जाता है, वंचित हो जाता है, ठगा जाता है। नौतमभाई! ऐसी बातें हैं। यह तो कहे कि दया पालना, दान देना, भूखे को आहार देना, प्यासे को पानी देना, रोगी को औषध देना, स्थान न हो तो उसे ओटला बँधाकर या धर्मशाला बनाकर करना, कपड़े देना। अरे! भगवान! सुन तो सही। यह बाह्य पदार्थ लेने-देने का तो तेरा अधिकार नहीं है। आहाहा! वह तो स्वतन्त्र तत्त्व है।

परन्तु यहाँ तो इतना कहते हैं, प्रभु! आहाहा! बाह्य पदार्थ को ज्ञान उस ओर ढलकर उसे देखने में रुके, तब भगवान आत्मा को देखने का बन्द हो गया। आहाहा! ऐई! कान्तिभाई! ऐसा क्या होगा? पकड़ में आये ऐसा होगा? समझ में आये ऐसा होगा? अरे! भगवान! सब केवलज्ञान पाकर अनन्त मोक्ष गये। आहाहा! भाई! तुझे तेरी

चीज़ ज्ञात न हो, ऐसा कैसे हो ? क्योंकि उसमें एक प्रमेयत्व नाम का गुण है। ज्ञेय होने का गुण है। ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात होता है। उसे जानना छोड़कर पर प्रमेय जो है, (उसे जानने में रुका)। आहाहा! समझ में आया ? अपने में एक प्रमेयत्वगुण और शक्ति है या नहीं ? उस ज्ञान द्वारा स्व को प्रमेय करना चाहिए अर्थात् आत्मज्ञान (करना चाहिए), उसे छोड़कर उसी ज्ञान द्वारा बाह्य का जानपना किया, वह बहिर्भूत तत्त्व है। आहाहा! बाहर का जानना, वह बहिर्भूत तत्त्व है। अन्तर्भूत तत्त्व नहीं।

मुमुक्षु : जानना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो जानने की लगायी है।

भगवान! कठिन पड़े ऐसा है, हों! सुना न हो और ५०-५०-, ६० वर्ष निकाले हों मूढ़पने में और उसे ऐसी बात आवे तो (ऐसा लगे), यह क्या है ? यह तो पागल लगते हैं ? बात तो सच्ची है।

'जगतडा कहे छे रे, भगतडा काला छे, जगतडा कहे छे अरे भगतडा घेला छे,

पण घेला न जाणशो रे, वस्तु में ऐ पहेला छे।'

समझ में आया ? आहाहा! ऐई! पोपटभाई! पानी उतर जाये ऐसा है यह तो सब। बात सच्ची। आहाहा!

यह चैतन्य वस्तु है न ? आत्मतत्त्व। उसे जानने से वंचित हुआ, उसके जानने से पराङ्मुख। ऐसे पराङ्मुख अर्थात् आत्मा को जानना चाहिए, उसे छोड़कर पराङ्मुख। उससे उल्टी चीज़ें जो बाहर की हैं। आहाहा! उसमें जानने को ज्ञान की पर्याय रुकी और जिसे जानने में रुकी, उसके अस्तित्व को अपना है, ऐसा उसने माना। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

वैसा होता हुआ वह (बहिरात्मा) क्या करता है ? अपनी देह को आत्मारूप मानता है.... इसका अर्थ यह कि चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु ध्रुव अनादि-अनन्त शाश्वत् वस्तु, उसका ज्ञान भूलकर, उसकी ओर का झुकाव छोड़कर, उसका ज्ञान करना चाहिए कि मैं कौन हूँ, इसका ज्ञान न करके.... आहाहा! पर के जानपने में रुका, वह बहिर्भूत, देह को ही आत्मा मानता है। अर्थात् कि यह चैतन्य जिसमें नहीं....

आहाहा! यह चैतन्य त्रिलोकनाथ सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण इदं आत्मा, वह जिसमें नहीं, उसे अपना मानता है। उसका अर्थ कि देह को ही आत्मा मानता है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, (यह) तो विश्राम का वाक्य है। आहाहा!

अर्थात् अपना शरीर, वही 'मैं हूँ'.... इसका अर्थ फिर यह अस्तित्व जो जानपना होता है पर का, वह सब वह मैं हूँ। आहाहा! **ऐसी मिथ्या मान्यता करता है।** ऐसी झूठी श्रद्धा, असत्य श्रद्धा, झूठपन को वह सेवन करता है। सत्य का सेवन उसने छोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया? यह तो टीका हुई।

भावार्थ - बहिरात्मा, बाह्य इन्द्रियों द्वारा जिन मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है,... इन्द्रिय द्वार में तो मूर्तिक ज्ञात होते हैं न? इन्द्रियों द्वारा अर्थात् यहाँ उसे ही देह कह दिया। **बाह्य मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है,....** आहाहा! आँख द्वारा ऐसा जाने कि यह मूर्तिक पदार्थ है, वह ज्ञात होता है। कहीं आँख और कान द्वारा आत्मा ज्ञात होता है? आहाहा! इन्द्रियातीत, मनातीत, विकल्पातीत प्रभु आत्मा अन्दर है। आहाहा! उसे देखने-जानने का कभी इसने प्रयत्न नहीं किया। और बाह्य के पदार्थ में देखने रुक गया। आहाहा! यह सब देखो न, नहीं बड़े घूमने निकलते हैं न? भाई! क्या कहा वह? देशाटन। तुम्हारा मनोज नहीं आया था यहाँ सूरत से? कि देशाटन करने जाता हूँ। २५-३० लाख रुपये हैं। उसे तो उसके पिता को सात पेढी में कहीं नहीं थे। परन्तु ऐई...! तुझे निवृत्ति मिली नहीं सुनने की? कहा। और यह भटकने का? परन्तु पैसा भर दिया होगा कहीं। नब्बे व्यक्ति सूरत से निकले हैं। क्या कहलाता है वह? ....कहा। भटकने के देश-देशान्तर। देश-देशान्तर देखते हैं।

मुमुक्षु : धन्धे के लिये जाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धन्धे की बात नहीं। यह तो देखने (गया)। धन्धा तो वहाँ चलता है। सूरत में दुकान बहुत बड़ी है। दो लड़के। बुद्धि समझने जैसी है। लाख, लाख, दो-दो लाख, तीन लाख आमदनी है। ऐई! तुम्हारी बात नहीं, हों! तुम्हारे लड़के को दो-तीन लाख में पार नहीं आवे। उसे पाँच करोड़ रुपये.... आमदनी अधिक होती होगी, पाप की। आहाहा!

कहते हैं, **बाह्य इन्द्रियों द्वारा जिन मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है,....** ग्रहण करने का अर्थ जानता है। पकड़े कहाँ? पकड़े क्या, जड़ पकड़ाय आत्मा में? शरीर पकड़ाता है जड़? उस सम्बन्धी का ज्ञान जानता है। इस शरीर का जानना, पैसे का, स्त्री का, पुत्र का, परिवार का। जो चीज़ पर है, जिस चीज़ में स्वयं नहीं और जो चीज़ स्वयं है, उसमें वह चीज़ नहीं। लॉजिक से तो बात चलती है, भाई! और सादी भाषा है। भाव भले ऊँचे हों। परन्तु भाषा में कोई महत्ता नहीं है। बहुत सूक्ष्म यह संस्कृत और व्याकरण और अमुक और अमुक। आहाहा! भगवान! तू तो सरल सीधा है। परन्तु अब उसे छोड़ दिया, खबर नहीं होती। आहाहा!

बाह्य मूर्तिक पदार्थों का ग्रहण करता है, उन्हें मोहवश अपना मानता है। जो ज्ञान में चीज़ ज्ञात हुई न, वह मेरा है, ऐसा मानता है। आहाहा! सौ मनुष्य हों न ऐसे। उसमें एक लकड़ा हो और ९९ दूसरे के लाईन से खड़े हों। ऐसे वास्तव में तो वह देखता है, जानता है। उसमें 'यह मेरा' यह कहाँ से आया?

मुमुक्षु : उसके घर में जन्मा है इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ घर इसका था? यह सौ की ऐसे लाईन खड़ी हो तो उसमें से.... वास्तव में तो जैसे दूसरों को-९९ को जानता है, वैसे इसे भी बाह्यरूप से जानता है। परन्तु ऐसा जानते हुए उसे यह मेरा लड़का। यह कैसे? बापू? कहाँ से आया? ऐसा कहाँ से निकाला? जानपने में तो सौ को ज्ञेयरूप से जानता था। आत्मा का स्वभाव जानने का है, ज्ञेयरूप से जानता था। उसमें और यह मेरा, यह कहाँ से आया? मिथ्या भ्रम अज्ञानी का मूढ़ता के भाव में यह मेरा है, ऐसा इसने माना है। ऐ.... पोपटभाई! इसका लड़का तो यह ले आया है। यह सब अक्षरों की मशीन, हसमुख। हसमुख गया था न इटली। वहाँ से मशीन लाया। हिन्दुस्तान में पहली-पहली। इस मशीन से अक्षर हुए थे। यह लाया था। इनका बड़ा लड़का। छह लड़के हैं न, बीस हजार का खर्च हुआ था। पन्द्रह हजार का.... २९ हजार की मशीन, ६९ हजार में यहाँ पड़ी है। इनका लड़का.... अपने लिये लाया....

मुमुक्षु : अभी तो इनकार करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय बाह्य पदार्थ को जानने का ज्ञान। यह है, ऐसा। आयेगा, सोनगढ़ आयेगा। परन्तु उसके बाहर के ज्ञान में रुकने से स्व का ज्ञान तो वंचित हो गया। आहाहा! गजब बात है, बापू! यह तो एक दृष्टान्त। दूसरे सबको ऐसा है न! आहाहा!

उन्हें मोहवश अपना मानता है। उसको अन्तर के आत्मतत्त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं;.... आहाहा! यह बहिर् और अन्तर वस्तु क्या है, उसकी इसे कुछ खबर नहीं। **इस कारण वह अपने शरीर को ही, आत्मा समझता है....** इसलिए बाह्य चीज़ को ही अपनी मानता है। **शरीर, मन, वाणी की क्रिया...** देखो! अब थोड़ा लम्बा किया। यह शरीर की क्रिया से ऐसे... ऐसे.... हो, वह मेरी। क्योंकि इसके ज्ञान में वह आया है। स्वयं है, उसके जानने का ज्ञान नहीं और यह चलने की क्रिया हो, खाने की क्रिया हो, बोलने की क्रिया हो, वह सब मेरी। जड़ की क्रिया मेरी। आहाहा! नामा लिखने में होशियार हो। वह तो जड़ की क्रिया है। कलम जड़ है, अक्षर जड़ है, वह अक्षर के वणांक पड़े हैं, वे जड़ के हैं।

यहाँ तो इतना कहना है कि उस बाह्य पदार्थ का जहाँ देखने का झुकाव है, उसे यह जानने में आने पर यह जो मुझे जानने में आयी, वह चीज़ मेरी न हो तो जानने में कैसे आवे? आहाहा! वह मेरी चीज़ है, ऐसा इसने माना। मैंने अक्षर लिखे, नामा मोती के दाने जैसा नहीं कहते सब? होशियार व्यक्ति हो न? कहे कि मोती के दाने जैसे अक्षर लिखे। गोलमरोड़। गोलमरोड़। सुन न अब। गोलमरोड़ तो जड़ की क्रिया है। उसे जानने में रुका हुआ वहाँ माने कि यह मेरे हैं। मेरे अक्षर हैं। यह कागज में नहीं (होता)? सबके अक्षर अलग-अलग प्रकार के होते हैं। नाम न लिखा हो तो उन अक्षरों द्वारा पहिचाना जाता है। यह अक्षर इसके हैं, यह अक्षर इनके हैं। लड़के के अक्षर हो, स्त्री के अक्षर हों, पति के अक्षर हों, उसमें पति होशियार हो, धणा-धणी ढ भी हो। परन्तु वह तो जड़ शब्द हैं। उन्हें जानते हुए स्वयं मूर्त को अपना मानता है।

अरे! वास्तव में तो बाह्य पदार्थ को जानने का ज्ञान ही मूर्त है। मूर्त का निमित्त है, उसका ज्ञान वह मूर्त है। आहाहा! प्रवचनसार में आता है न? समझ में आया?

कहो, ऐसी बात है। बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! तुझे न जँचे तो वह विपरीत है, ऐसा नहीं मानना। मार्ग का स्वरूप ही ऐसा है। तेरी परीक्षा जब देनी हो तो इस प्रकार से परीक्षा दी जायेगी। समझ में आया? आहाहा!

आत्मतत्त्व का.... अन्दर के आत्मतत्त्व का। यह बाह्य का जानने में ऐसा रुका है। आहाहा! उसमें अभी तो होता है न? तुम्हारे कारखाने बहुत बढ़े। पच्चीस हजार हुए, वहाँ कारखाना करते हैं, कहे। बहुत सुना है। वडोदरा में कारखाना, मुम्बई में कारखाना, तुम्हारे हुए है कहीं अहमदाबाद में नहीं? कोई कहता था, हें, मुम्बई में! अहमदाबाद आये है न लड़के। देखने आये थे। यहाँ कारखाना किया है। पैसे हुए हों तो डालना कहाँ? पचास हजार यहाँ डालो, लाख-दो लाख यहाँ डालो। मनुभाई! इसे कुछ कारखाना है या नहीं?

मुमुक्षु : चश्मे की फ्रेम।

पूज्य गुरुदेवश्री : चश्मे की फ्रेम का कारखाना है, लो। ऐसा तो बहुत सुनते हैं मुम्बई में। यह हमारे भूपेन्द्र। इसका कारखाना है न यह? ....भूपेन्द्र... आये तब ले गया था। किशोर ले गया था वहाँ। यह रंग की धमाल.... धमाल.... थी। भूपेन्द्र डाईंग। किशोर देखने ले गया था। अरे! यह सब धूल है। पैसा बहुत पैदा हो मने कि हम कुछ कमाते हैं और अपने कुछ बढ़े हैं। पर के जानने में रुके हुए ज्ञान में बढ़ा, वह मूढ़ है। पर मेरा माना, वहाँ रुका, वह मूढ़ है—ऐसा कहते हैं। अरे! वर छोड़कर बारात जोड़ दी। उस बारात को बारात नहीं कहा जाता। वह तो मनुष्यों का झुण्ड कहलाता है। वर हो तो लोगों के झुण्ड को बारात कहा जाता है। उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान यदि हो तो पर का ज्ञान व्यवहार से है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु जहाँ आत्मा का ज्ञान नहीं और अकेला पर का ज्ञान है, वह वर बिना की बारात जोड़ी है। उसे बारात नहीं कहा जाता। वह लोगों का झुण्ड इकट्ठा हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु ऐसी है, भाई! इसे गुलाँट खाये बिना तत्त्व हाथ आवे, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है। जो दशा बाह्य में झुकी हुई है। ऐसा होता है अन्दर.... उस दशा को अन्दर झुकाये बिना इसे तत्त्वज्ञान नहीं होता। आहाहा! यह तो दूसरे प्रकार से बात की है। ऐसे झुका हुआ है

स्वसन्मुख से विमुख हो गया है और पर से सन्मुखता है, उससे मुख (फिराकर) स्वसन्मुख करना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान और धर्म की दशा कहा जाता है। समझ में आया? उसे अपने .... समझता है।

अर्थात् शरीर,.... यह जड़-मिट्टी-धूल **मन,....** यहाँ मन विचारने में एक मन है। **और वाणी....** यह जड़। आवाज उठती है, वह जड़ की है। वह आत्मा की नहीं, आत्मा में नहीं, आत्मा से नहीं। आहाहा! वह **वाणी की क्रिया....** क्रिया अर्थात् बदलना, परिणति होना। भाषा है न। **जो जड़ की क्रिया है, उन्हें मैं कर सकता हूँ....** उसे स्वयं कर सकता है, ऐसा माननेवाला। **उनका स्वामी हूँ—ऐसा मानता है।** आहाहा! वह जानने में रुके हुए ज्ञान को.... आहाहा! यह वाणी जड़ है, यह तो आवाज धूल है। आहाहा! इसमें (टेप में) उतरती है, वह जड़ उतरता है या चैतन्य है? यह उतरता नहीं। यह तो निमित्त है और यह भिन्न होता है। आहाहा! इस वाणी की, मन की क्रिया जड़ की क्रिया, उसे स्वयं कर सकता है और उसका स्वयं स्वामी है, ऐसा मानता है, वह आत्मतत्त्व के भान से भूल गया है। अपनी जाति को भूलकर पर जाति की क्रिया को अपनी मानकर भटक रहा है। कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जीव, त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। भगवान तो चैतन्यस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म, प्रज्ञाब्रह्म। प्रज्ञा और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। वह ज्ञान और आनन्द का कन्द आत्मा है। वह बाहर की चीज़ को जानते हुए उसे हर्ष आता है, वह बाहर में उसने आनन्द माना है। वह आनन्द रह गया अन्दर। समझ में आया? कहते हैं, **त्रिकाली....** यहाँ तो ऐसा लेना है न। एक समय की पर्यायवाला नहीं लेना। यहाँ तो पूरा लेना है। त्रिकाली ज्ञानस्वरूप है। वस्तु त्रिकाल है, नित्य है, अविनाशी प्रभु आत्मा है। आत्मा नया नहीं होता, आत्मा नाश नहीं पाता। और अविनाशी भगवान आत्मा है, वह त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। उसका स्वरूप ज्ञान है, ऐसा कहना है। त्रिकाली है परन्तु उसका स्वरूप ज्ञान है। जानना.... जानना.... जानना.... प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप है। आहाहा!

उसको बहिरात्मा अज्ञानवश नहीं जानता.... देखा! आहाहा! त्रिकाली शाश्वत् ज्ञानस्वरूप है, उसे जानता नहीं। उसके परिचय में उसमें आता नहीं अन्दर वस्तु में।

आहाहा! **अज्ञानवश नहीं जानता और बाह्य- इन्द्रियगोचर पदार्थ,....** इन्द्रियगम्य जाननेयोग्य पदार्थ यह मिट्टी, जड़, धूल, शरीर, वाणी, पैसा, इज्जत सब। आहाहा! **जो मात्र ज्ञेयरूप हैं,....** वे मात्र परज्ञेयरूप हैं। **उनमें इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके,...** यह मुझे ठीक है, यह मुझे अठीक है। जाननेयोग्य वह तो है। ज्ञेय है। ज्ञान में जानने (योग्य ज्ञेय है)। उसके दो भाग कैसे किये ? वह पदार्थ तो जाननेयोग्य है। यह ज्ञान जाने अपने में रहकर। उसके बदले जाननेयोग्य पदार्थ के दो भाग किये तूने कि यह इष्ट है और अनिष्ट है, यह बुद्धि मिथ्यात्व और पाखण्ड है। यह तेरे तत्त्व की तुझे खबर नहीं। विशेष कहेंगे......

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Vitragvani

www.vitragvani.com